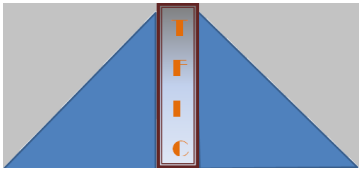

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक ग्रन्थमाला—३

महावीर प्रसाद द्विवेदी
और
उनका युग

लेखक—

डॉ० उदयभानु सिंह एम० ए०, पीएच० डी०

प्रकाशक—

लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रकाशक
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

मूल्य—दस रुपया १०)

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्व-विद्यालय की रजत—जयन्ती के अवसर पर बिसवाँ-शुगर-फैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी-विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला' में संग्रथित हो रहे हैं। हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय।

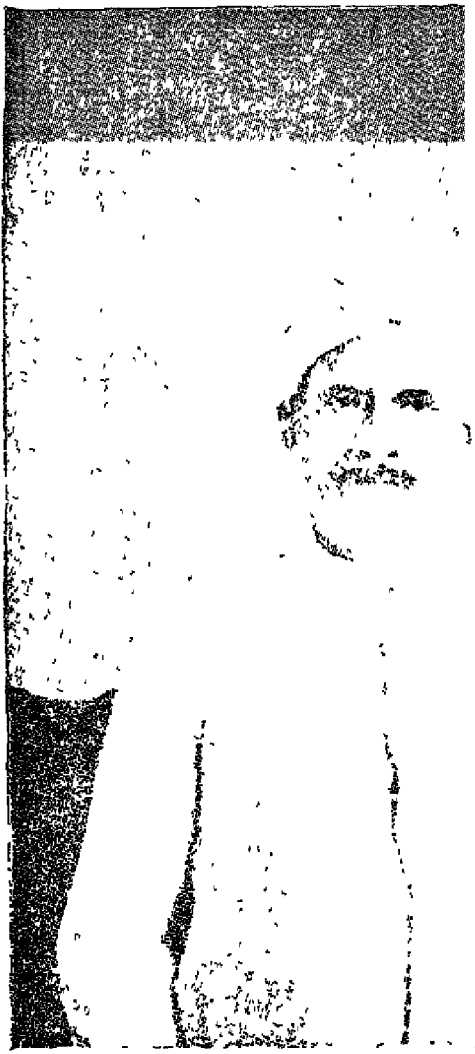

स्वर्गीय सेठ भोलाराम सेकसरिया

उपोद्घात

आधुनिक हिन्दी भाषा के निर्माण में सबसे प्रथम महत्वशाली कार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया था। उनके समय तक खड़ी बोली हिन्दी गद्य की भाषा बन चुकी थी परन्तु पद्य में उसका प्रयोग बहुत अल्प था। भारतेन्दु ने अपनी अधिकांश पद्य-रचनाएँ ब्रजभाषा में ही की थीं। उनकी कुछ रचनाएँ नागरी लिपि में लिखी हुई सरल रेखता अथवा उर्दू-शैली में भी हैं। गद्य में उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी का ही प्रयोग किया है। भारतेन्दु काल में, भारतेन्दु के प्रोत्साहन से और भी अनेक लेखक हुए जिन्होंने आधुनिक हिन्दी भाषा का निर्माण किया, जैसे पं० प्रताप नारायण मिश्र, पं० बदरी नारायण 'प्रेमघन', पं० बालकृष्ण भट्ट, बा० बालमुकुन्दगुप्त, ला० श्रीनिवास दास, ठा० जगमोहन सिंह, बा० तोताराम आदि। इन साहित्य-निर्माताओं ने भी पद्य में ब्रजभाषा का तथा गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग किया। इनकी भाषा में पृथक पृथक रूप से निजी गुण थे।। पं० प्रताप नारायण मिश्र की भाषा में मनोरंजकता, जनबोलियों की सरलता, और व्यंग्यात्मकता थी। 'प्रेमघन' जी, आलंकारिकता, अर्थगाम्भीर्य और समास-पदावली के साथ लिखते थे। पं० बालकृष्ण भट्ट की भाषा सरल घरेलू शब्दों और व्यंग्यात्मक चुटकियों से युक्त होती थी। उस समय गद्य की अनेक प्रयोगात्मक शैलियाँ थीं। उस समय के साहित्यिक जीवन की प्रेरक और मार्गविधायिनी शक्ति भारतेन्दु के रूप में प्रकट हुई थी। भारतेन्दु का जीवनकाल बहुत अल्प रहा और उनका काम अधूरा ही रह गया। गद्य का प्रसार तो भारतेन्दु के प्रयास से हुआ परन्तु भाषा की उस समय, निश्चित, व्याकरण-सम्मत, और पुष्टशैली न बन पाई थी। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हिन्दी-शैली पर अव्यवस्थित रूप में ही पड़ रहा था।

हिन्दी भाषा और साहित्य की उक्त पृष्ठभूमि में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् १९०३ में) साहित्य-क्षेत्र में आए और उन्होंने इंडियन प्रेस से सरस्वती का सम्पादन अपने हाथ में लिया। उनका साहित्य-क्षेत्र में आना, हिन्दी खड़ीबोली के इतिहास में एक युगान्तर उपस्थित करनेवाली घटनाहुई थी। उनका आगमन मानो हिन्दी साहित्य-कानन में बसन्त का आगमन था। उस समय साहित्यिक जीवन में एक नवीन स्फूर्ति आ गई। उन्होंने लेखक और भाषा-शिक्षक दोनों रूपों में साहित्य की सेवा की। इतना ही नहीं सम्पादक हिन्दी भाषा-प्रचारक गद्य

और पद्य भाषा के परिष्कारक, निबन्धकार, आलोचक कवि शिक्षक अनेक रूपों में उनकी प्रतिभा का प्रसार हुआ। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली को पद्य-क्षेत्र में भी आगे बढ़ाया। वे स्वयं बड़े कवि न थे और न बड़े उपन्यासकार और न नाटककार ही। अनुभूति की व्यापकता और गहनता, कल्पना की सूझ तथा विचारों की गम्भीरता की भी द्योतक उनकी रचनाएँ नहीं हैं।। फिर भी द्विवेदी जी की कृतियों में प्रेरक शक्ति है, जीवन का सम्पर्क है और सुधारक तथा प्रचारक की सच्ची लगन है। ये ही विशेषताएँ उनकी रचनाओं को गौरव और महत्व देती हैं।

हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में द्विवेदी जी का इतना प्रभाव पड़ा कि उनकी साहित्य-सेवा का काल (१९०१ ई० से १९२० ई० तक) 'द्विवेदीयुग' के नाम से प्रख्यात हो गया। यह समय उस हिन्दी भाषा के विकास और उत्कर्षोन्मुखता का समय था जो आज भारत की राष्ट्र-भाषा है। भाषा और काव्य को एक नये पथ की ओर प्रगति के साथ चलाने वाले सारथी-रूप में द्विवेदी जी का कार्य महान है। वे वस्तुतः युगान्तरकारी सूत्रधार हैं। राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त, ठा० गोपालशरण सिंह, पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, 'सनेही', पूर्ण, शंकर, सत्यनारायण कविरत्न आदि कवि और अनेक गद्यकार, सभी ने द्विवेदी जी से विषय, छन्द-प्रयोग और भाषागत प्रेरणा तथा शिक्षा ली थी। सरस्वती की फाइलों को देखने से पता चलता है कि इस महारथी ने विवेचनात्मक, आलोचनात्मक, परिचयात्मक, आवेशात्मक, विनोद, व्यंग, अनेक प्रकार की गद्यशैलियों का अपने गद्य में प्रयोग किया। अपने लेखों द्वारा विविध गद्यशैलियों के उदाहरण उपस्थित किये और शब्द और मुहाविरों के प्रयोग द्वारा भाषा के दोषों का परिहार किया। इस प्रकार उन्होंने एक प्रांजल भाषा का आदर्श रूप लेखकों के सम्मुख उपस्थित किया।

वास्तव में, द्विवेदी जी की कृतियों और उनके 'रेनेंसाँ' युग के अध्ययन के बिना आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास का ज्ञान अधूरा ही रहता है। जिस समय मैंने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग' नामक विषय प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक डा० उदयभानु सिंह को दिया, उस समय तक उक्त विषय का किसी लेखक ने गम्भीर अध्ययन नहीं किया था। डा० उदयभानु सिंह ने इस विषयकी बिखरी हुई सामग्री को बड़े परिश्रम के साथ इकट्ठा किया और उसे एक व्यवस्थित और मौलिक निबन्ध रूप में प्रस्तुत किया, जो इस विश्व-विद्यालय में, पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत हुआ। यह ग्रन्थ लेखक के अथक परिश्रम और विस्तृत अध्ययन का प्रतिफल है डा० सिंह मेरी बधाई और शुभेच्छा के पात्र

हैं इनकी सबल लेखनी से और भी महत्वपूर्ण ग्रंथों का सृजन होगा ऐसी मेरी मंगल कामना है।

दीनदयालु गुप्त,

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम्० ए०, एलएल० बी०, डी० लिट्०
प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

आक्षेपण

आधुनिक हिन्दी-साहित्य की चार मुख्य विशेषताएँ हैं—

१. काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा और कविता के विषय, छन्द, विधान तथा अभिव्यंजनाशैली मे परिवर्तन,

२. गद्यभाषा के व्याकरणसंगत, संस्कृत और परिष्कृत रूप का निश्चित निर्माण,

३. पत्रपत्रिकाओं और उनके साथ ही सामयिक साहित्य का विकास,

४. हिन्दी-साहित्य के विविध अंगो—कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, नाटक, आलोचना, गद्यकाव्य आदि—की वृद्धि और पुष्टि।

इन सबका प्रधान श्रेय पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही है और इसीलिए उनकी साहित्य-सेवा का मूल्याकन हिन्दी के लिए गौरव का विषय है।

द्विवेदी जी की जीवनी और साहित्य-सेवा के विषय में 'हस' के 'अभिनन्दनाक', 'बालक' के 'द्विवेदी-स्मृति-अंक', 'द्विवेदी- अभिनन्दन-ग्रन्थ', 'साहित्य-संदेश' के 'द्विवेदी-अंक', 'सरस्वती' के 'द्विवेदी-स्मृति-अंक' और 'द्विवेदी-मीमासा' तथा पत्रपत्रिकाओं में बिखरे लेखों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। परन्तु, उनमे प्रकाशित प्रायः सभी लेख प्रशंसात्मक और श्रद्धाजलि के रूप में लिखे गए हैं। समालोचना की दृष्टि से उनका विशेष मूल्य नहीं है। अतएव द्विवेदी जी की जीवनी, हिन्दी-साहित्य को उनकी देन और उनके निर्मित युग की वास्तविक आलोचना की आवश्यकता प्रतीत हुई।

द्विवेदी जी से सम्बन्धित प्रायः समस्त सामग्री काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा और दौलतपुर में रक्षित है। नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्यालय में द्विवेदी-सम्बन्धी २८०१ पत्र और सभा को भेजा गया उनका हस्तलिखित 'वक्तव्य' है। सभा के 'आर्यभाषा-पुस्तकालय' मे उनकी दस आलमारी पुस्तकें और हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू तथा अंग-रेजी की सैकड़ों पत्रिकाओं की फुटकर प्रतियाँ हैं। सभा के कलाभवन में 'सरस्वती' की प्रकाशित और अप्रकाशित हस्तलिखित प्रतियाँ, उनसे सम्बन्धित पत्र, अनेक पत्रपत्रिकाओं की कतरनें, द्विवेदी जी का अप्रकाशित 'कौटिल्यकुठार' और उनके प्रकाशित ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। दौलतपुर में 'सरस्वती' की कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतियाँ द्विवेदी जी से सम्बन्धित कागदपत्र पत्र और उनके अप्रकाशित 'तरुणोपदेश' और 'सोहाग-रात' हैं

प्रस्तुत ग्रन्थ में ९ अध्याय हैं —

१. भूमिका
२. चरित और चरित्र
३. साहित्यिक संस्मरण और रचनाएँ
४. कविता
५. आलोचना
६. निबन्ध
७. 'सरस्वती'-सम्पादन
८. भाषा और भाषासुधार
९. युग और व्यक्तित्व

पहले अध्याय मे ग्रथित वस्तु का अधिकाश परार्जित है। वस्तुतः अभिव्यंजना-शैली ही अपनी है। दूसरे अध्याय मे प्रकाशित लेखों और पुस्तकों के अतिरिक्त द्विवेदी जी की हस्तलिखित संक्षिप्त जीवनी (काशी-नागरी- प्रचारिणी सभा के कार्यालय में रक्षित) और उनसे संबंधित पत्रों तथा पत्रपत्रिकाओं के गवेषणात्मक अध्ययन के आधार पर उनके चरित और चरित्र की व्यापक, मौलिक तथा निष्पक्ष समीक्षा की चेष्टा की गई है। इन्हीं के आधार पर तीसरे अध्याय में साहित्यिक संस्मरण का विवेचन भी अपना है। 'तरुणोपदेशक', 'सोहागरात' और 'कौटिल्यकुठार' को छोड़कर द्विवेदी जी की अन्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी-संसार उनसे परिचित है। उक्त तीनों रचनाओं की खोज अपनी है। यह अधिकार के साथ कहा जा सकता है कि इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने कोई अन्य पुस्तक नहीं लिखी। चौथा अध्याय कविता का है। द्विवेदी जी की कविता ऊँची कोटि की नही है। इसीलिए इस अध्याय में अपेक्षाकृत कम गवेषणा, ठोसपन और मौलिकता है। छन्द, विषय, शब्द और अर्थ की विविधि दृष्टियों से तथा द्विवेदी जी की ही काव्य-कसौटी पर उनकी कविता की समीक्षा इस अध्याय की मौलिकता या विशेषता है। पाचवें अध्याय मे समालोचना की विभिन्न पद्धतियों की दृष्टि से आलोचक द्विवेदी की आलोचना सर्वथा स्वतंत्र गवेषणा और चिन्तन का फल है।

निबन्धकार द्विवेदी पर भी पूर्वोक्त रचनाओं तथा पत्रपत्रिकाओं मे फुटकर लेख लिखे गए थे किन्तु वे प्रायः वर्णनात्मक थे। प्रस्तुत ग्रन्थ के छठे अध्याय में सौन्दर्य, इतिहास और व्यक्तित्व के आधार पर द्विवेदी जी के निबंधों की छानबीन की गई है यह भी अपनी

गवेषणा है। 'सरस्वती-सम्पादन' नामक सातवें अध्याय में द्विवेदी-सम्पादित 'सरस्वती' के आन्तरिक सौन्दर्य और उसकी उत्तमर्ण तथा ऋणी मराठी, बंगला, अंग्रेजी एवं हिन्दी-पत्रिकाओं की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर द्विवेदी जी की सम्पादनकला का मौलिक विवेचन है। 'भाषा और भाषासुधार'-अध्याय अपेक्षाकृत अधिक खोज का परिणाम है। अभी तक हिन्दी के आलोचक सामान्यरूप से कह दिया करते थे कि हिन्दी-गद्यभाषा के संस्कार और परिष्कार का प्रधान श्रेय द्विवेदी जी को ही है। 'द्विवेदी-मीमांसा' में एक संशोधित लेख भी उद्धृत किया गया था। परन्तु, स्वयं द्विवेदी जी की भाषा आरम्भ में कितनी दूषित थी, उन्होंने अपनी भाषा का भी परिमार्जन किया, दूसरों की भाषा की ईदृक्ता क्या थी, उनकी भ्रष्ट भाषा का सुधार द्विवेदी जी ने किन किन विभिन्न उपायों और कितनी कष्टसाधना से किया, उनके द्वारा परिमार्जित भाषा का विकास किन विभिन्न रीतियों और शैलियों में फलित हुआ, आदि बातों पर व्याकरणरचनासंगत वैज्ञानिक गवेषणा और सूक्ष्म विवेचन की आवश्यकता थी। आठवें अध्याय में इसी कमी की पूर्ति का मौलिक प्रयास है।

नवाँ तथा अन्तिम अध्याय 'युग और व्यक्तित्व' का है। हिन्दी के इतिहासकारों ने हिन्दी-साहित्य के एक युग को द्विवेदीयुग स्वीकार कर लिया था। किन्तु उसके निश्चित सीमानिर्धारण पर कोई प्रामाणिक समालोचना नहीं लिखी गई। डा० श्रीकृष्ण लाल का ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' प्रायः द्विवेदीयुगीन साहित्य की ही समीक्षा है। उसकी दृष्टि भिन्न है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय की अपनी मौलिक विशेषता है। इसमें द्विवेदीयुग का कालनिर्धारण करके ही सन्तोष नहीं कर लिया गया है, उसकी प्रामाणिक समीक्षा भी की गई है। द्विवेदी जी अपने युग के साहित्य के केन्द्र रहे हैं और उस युग के प्रायः सभी महान् साहित्यकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनसे अनिवार्य रूप से प्रभावित हुए हैं। उस युग के हिन्दी-साहित्य के सभी अंगों के भाव या अभावपक्ष पर द्विवेदी जी की छाप है। द्विवेदीयुगीन साहित्य के समालोचन की यह दृष्टि ही इस निबन्ध की प्रमुख विशिष्टता है। यहाँ पर एक बात स्पष्टीकार्य है। मनुष्य ईश्वर की भाँति सर्वत्रव्यापक नहीं हो सकता। अतएव द्विवेदी जी का व्यक्तित्व भी हिन्दी-साहित्य-संसार के प्रत्येक परमाणु में व्याप्त नहीं हो सका है। 'युग और व्यक्तित्व' अध्याय पढ़ते समय कहीं कहीं ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जब हिन्दी-संसार में इस प्रकार की कलासृष्टि हो रही थी तब द्विवेदी जी क्या कर रहे थे? उत्तर स्पष्ट है। द्विवेदी जी का प्रभाव सर्वत्र समान नहीं है। कविता, आलोचना, भाषा आदि के क्षेत्र में उन्होंने कायाकल्प किया है, उपन्यास-कहानी की कुछ व्यापक प्रवृत्तियों पर ही उनका प्रभाव पड़ा है और नाटक के अभाव पक्ष में ही उनके व्यक्तित्व की मुख्ता है, उसके भावपक्ष में नहीं जिस अंग में और जहाँ

पर उनका प्रभाव विशिष्ट नहीं है वहा पर भी उस दिखाने का बरबस प्रयास इस ग्रन्थ म नहीं किया गया है उस युग क महान् साहित्यकारों म भा कुछ मौलिकता थी और उन्हे उसका श्रेय मिलना ही चाहिए। डा० श्रीकृष्ण लाल के उपर्युक्त ग्रन्थ में उस काल के हिन्दी-प्रचार, सामयिक साहित्य और आलोचना की पद्धतियों आदि की भी कुछ विशेष विवेचना नही की गई थी। इस दृष्टि से भी स्वतंत्र गवेषणा और विवेचन की अपेक्षा थी। उसकी पूर्ति का प्रयास भी प्रस्तुत ग्रन्थ मे किया गया है।

सुना है कि राजपूताना विश्वविद्यालय में द्विवेदी जी की कविता पर कोई प्रबन्ध दाखिल हुआ है। वह बाद की कृति है। उसकी चर्चा आगामी आवृत्ति में ही हो सकेगी।

ग्रन्थ से संयुक्त शुद्धिपत्र संक्षिप्त है। टाइप की अपूर्णता के कारण मराठी के 'किरकोल' आदि शब्द अपने शुद्धरूप में नहीं छप सके। 'ब' और 'व', 'ए' और 'ये', अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु, विरामचिह्न, पंचमवर्ण, संयोजक चिह्न, शिरोरेखा आदि की अशुद्धियाँ बहुत हैं। वे भ्रामक नहीं हैं अतएव उनका समावेश अनावश्यक समझा गया। जिन महानुभावो ने इस ग्रन्थ के प्रणयन में अमूल्य सहायता देकर लेखक को कृतकृत्य किया है उन सब का वह हृदय से आभारी है।

उदयभानु सिंह

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूमिका (१—३३)

१ राजनैतिक परिस्थिति—१, २ आर्थिक परिस्थिति—४, ३. धार्मिक परिस्थिति—५, ४. सामाजिक परिस्थिति—८

५. साहित्यिक परिस्थिति

क. कविता ८

ख. निबन्ध १४

ग. नाटक १६

घ. कथासाहित्य १८

ङ. आलोचना २०

च. पत्रपत्रिकाएं २२

छ. विविधविषयक साहित्य २८

ज. प्रचारकार्य २९

झ. गद्यभाषा ३०

ञ. हिन्दी-साहित्य की शोचनीय दशा ३२

६. पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का पदार्पण—३३

दूसरा अध्याय

चरित और चरित्र (३४—६१)

१. द्विवेदी जी का जन्म—३४, २. उनके पितामह और पिता का संक्षिप्त परिचय—३४, ३. प्रारम्भिक शिक्षा—३५, ४. अंग्रेजी शिक्षा—३५ ५. स्कूल का त्याग और नौकरी—३६, ६. नौकरी से त्यागपत्र—३६, ७. 'सरस्वती'-सम्पादन—३७, ८. जीवन के अन्तिम अठारह वर्ष—३७, ९. महाप्रस्थान—३८, १०. दाम्पत्य जीवन—३८, ११. पारिवारिक जीवन—४०, १२. वृद्धावस्था में ग्राम्य जीवन और ग्रामसुधार—४१, १३. आकृति, गम्भीरता—४२, १४. हास्य-विनोद—४२, १५. स्वाभिमान, वीरभाव—४३, १६. भगवद्भक्ति—४३,

१७ उग्रता कोध ४४ १८ क्षमा दय ४५, १६ कत यपरायणता न्यायनिष्ठा और स यरालन ४६, २०. व्यवस्था, नियमितता और कालपालन--४७, २१. दृढ़ता, अध्यवसाय और सहिष्णुता--४६, २२. महत्वाकाक्षा और सम्मान की अनिच्छा--५०, २३. शिष्टाचार, व्यवहारकुशलता और सम्भाषणकला--५१, २४. प्रेम, वात्सल्य, सहृदयता, सहानुभूति और गुणग्राहकता--५२, २५. निष्पक्षता और पक्षपात--५३, २६. वदान्यता और सग्रहभावना--५४, २७. मितव्ययिता और सादगी--५५, २८. देशप्रेम--५६, २६. मातृभाषाप्रेम--५७, ३०. सुधारकप्रवृत्ति--५६, ३१. आक्षेप और अपवाद--६०

तीसरा अध्याय

साहित्यक संस्मरण और रचनाएं (६२—६०)

१ द्विवेदी जी का साहित्यिक अध्ययन--६२, २. भारतीभक्त पर कमला का कोप— ३, ३. 'शिक्षा' नामक पुस्तक के समर्पण की कथा—६३, ४ 'सरस्वती' के आश्रम में--६४ ५ अयोध्याप्रसाद खत्री का महत्वहीन बवंडर--६६, ६. 'अनस्थिरता' का बिनंडावाद--६६ ७ विभक्तिविचारविवाद ६७, ८. बी० एन० शर्मा पर मानहानि का दावा ६८, ६. द्विवेदी जी और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ६६, १०. नागरी-प्रचारिणी सभा को द्विवेदी जी का दान--७३, ११. द्विवेदी जी की 'रसीली पुस्तकें' और कृष्णकान्त मालवीय—७३, १२. द्विवेदी जी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ७५, १३. द्विवेदी-मेला—७६, १४. द्विवेदी जी की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण (तीन अप्रकाशित रचनाएं) ७८

चौथा अध्याय

कविता (६१—११६)

१. कवि द्विवेदी की आत्मसमीक्षा, ६१, २. उनका अनभिमाननीय कवित्व ६२, ३. उनकी काव्यरचना का उद्देश ६२, ४. द्विवेदी जी की काव्यपरिभाषा ६३, ५. अर्थ की दृष्टि से द्विवेदी जी की कविता की समीक्षा—

रस ६
भाव ६५
ध्वनि ६८
ग्राम्य-दोष १००

अलंकारसौन्दर्य १०१
निरलंकार सौन्दर्य १०२
गुण १०२
वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता १०३
द्विवेदी जी की कविप्रतिभा १०४
६. द्विवेदी जी का काव्यविधान
प्रबन्ध १०५
मुक्तक १०५
प्रबन्धमुक्तक १०६
गीत १०६
गद्यकाव्य १०७
७. छन्द १०७, ८. काव्यभाषा १०८
९. द्विवेदी जी की कविता के विषय
धर्म १०९
समाज ११०
देश और स्वदेशी १११
हिन्दी भाषा और साहित्य ११४
चित्र ११४
व्यक्ति और अवसरविशेष ११४
प्रकृति ११५

पांचवां अध्याय

आलोचना (११७—१४२)

१. आलोचना का अर्थ ११७, २. द्विवेदी जी की आलोचना की ६ पद्धतियां ११८
आचार्यपद्धति ११८
टीकापद्धति १२३
शास्त्रार्थपद्धति १२५
सूक्तिपद्धति १२६
खंडनपद्धति १२९

३ युग की दृष्टि म द्विवदीकृत आलोचना का मूल्याकन १३४ ४ हिन्दी कालिदास की समालोचना १३५, ५. द्विवेदी जी की आलोचनाओं में दो प्रकार के द्वन्द्वों की परिणति १३७, ६. 'कालिदास की निरंकुशता' १३७, ७. 'नैषधचरितचर्चा' और 'विक्रमाकदेव-चरितचर्चा' १३८, ८ 'आलोचनाजलि' १३८, ९. कालिदास और उनकी कविता'—१३९, १० संस्कृत-साहित्य पर द्विवेदीकृत आलोचना के मूल कारण १४०, ११. 'हिन्दी-शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना' १४०, १२ 'समालोचनासमुच्चय' १४१, १३. 'विचारविमर्श' और 'रसज्ञरंजन' १४२, १४. आलोचक द्विवेदी की देन १४२

छठा अध्याय

निबन्ध (१४३—१५९)

१. निबन्ध का अर्थ १४३, २. आलोचक द्विवेदी द्वारा निबन्धकार द्विवेदी का निर्माण १४४, ३. सम्पादक- द्विवेदी के निबन्धों का उद्देश १४५, ४. द्विवेदी जी के निबन्धों के मूल १४५, ५. द्विवेदी जी के निबन्धों के रूप १४६

६. विषय

साहित्य १४६

जीवनचरित १४७

विज्ञान १४८

इतिहास १४८

भूगोल १४८

उद्योगशिल्प १४९

भाषाव्याकरण १४९

अध्यात्म १४९

७. उद्देश की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों के प्रकार १५०

८. द्विवेदी जी के निबन्धों की ३ शैलिया—

वर्णनात्मक १५०

भावात्मक १५२

चिन्तनात्मक १५३

९ भाषा और रचनाशैली १५४ १० निबन्धों म द्विवेदी जी का स्थिर एव गतिशील

तथा व्यक्त और अव्यक्त व्यक्तित्व १५६ ११ निबन्धकार द्विवदी की देन १५८

सातवां अध्याय

'सरस्वती' सम्पादन (१६०—१९१)

१ 'सरस्वती' का जन्म और शैशव १६०, २. सम्पादक द्विवेदी के आदर्श और सिद्धान्त १६२, ३. लेखकों की कमी, द्विवेदी जी का घोर परिश्रम और लेखक-निर्माण १६५, ४. लेखकों के प्रति व्यवहार १६९, ५. 'सरस्वती' के विविध विषय और वस्तुयोजना १७१, ६ सम्पादकीय टिप्पणियां १७३, ७. पुस्तकपरीक्षा १७४, ८. चित्र १७५ ९. चित्रपरिचय १७७, १०. व्यंग्यचित्र १७८, ११. मनोरंजक श्लोक, हँसी दिल्लगी एवं विनोद और आख्यायिका १८०, १२. बालसाहित्य १८१, १३ स्त्रियोपयोगी रचनाएं १८१, १४. विषयसूची १८२, १५. प्रूफसंशोधन १८२, १६. 'सरस्वती' पर अन्य पत्रिकाओं का ऋण १८३, १७. अन्य पत्रिकाओं पर 'सरस्वती' का प्रभाव १८५, १८. 'सरस्वती' का ऊंचा मान १८९

आठवां अध्याय

भाषा और भाषासुधार (१९२—२६३)

१. द्विवेदी जी की आरम्भिक रचनाएं १९२

२. उनके भाषादोष—

क. लेखनत्रुटियां— १९३

स्वरगत १९३

व्यंजनगत १९४

ख. व्याकरण की अशुद्धियां—

संज्ञा १९५

सर्वनाम १९५

विशेषण-विशेष्य १९६

क्रिया १९६

अव्यय १९८

लिंग १९८

वचन १९९

कारक १६६
सधि २०१
समास २०१
उपसर्ग और प्रत्यय २०१
आकाक्षा २०२
योग्यता २०२
सन्निधि २०३
प्रत्यक्षपरोक्षकथन २०३
वाच्य २०४
ग. रचनादोष—
विरामादि चिन्ह २०५
अवच्छेदन २०६
मुहावरे २०६
पुनरुक्ति २०७
कटुता, जटिलता, शिथिलता २०७
पंडिताऊपन २०८
३. भाषासुधार
क. चार प्रकार से भाषा-सुधार २०८
ख ग्रन्थों का संशोधन २०८
ग. आलोचना द्वारा संशोधन २०८
घ. 'सरस्वती' की रचनाओं का शोधन २१२
(संशोधित भाषात्रुटियों की एक वर्गीकृत सूची—पृ० २१३—२४४ स्वर, व्यंजन, संज्ञा, सर्वनाम, विशेष्यविशेषण, क्रिया, अव्यय, लिंग वचन, कारक, सन्धि, समास, उपसर्गप्रत्यय, आकाक्षा, योग्यता, सन्निधि, वाच्य, प्रत्यक्षपरोक्षकथन, मुहावरों, कठिन संस्कृत शब्दों, अरबी फारसी शब्दों अंग्रेजी शब्दों, और अन्य शब्दों का संशोधन)
ङ. पत्रों, भाषणों आदि के द्वारा संशोधन २४५
४ द्विवेदी जी की भाषा की आरम्भिक रीति और शैली—अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, अवधी, पंडिताऊपन २४७ ५ उनकी प्रौढ रचनाओं की रीति २५३, ६ युगनिर्माता द्विवेदी की भाषा-शैली २५५

वर्णनात्मक २५५
व्याख्यात्मक २५६
मूर्तिमत्तात्मक २५८
वक्तृतात्मक २५९
संलापात्मक २६०
विवेचनात्मक २६१
भावात्मक २६२
७. द्विवेदी जी की शैली की विशिष्टता २६२

नवां अध्याय

युग और व्यक्तित्व (२६४— ३६५)

१. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का कालविभाग— २६४
प्रस्तावना-युग २६४, भारतेन्दु-युग २६५, अराजकता-युग २६५, द्विवेदी-युग २६५, बाद-युग २६७, वर्तमान-युग २६७
२. आधुनिक हिन्दी-साहित्य की मुख्य विशिष्टताएं २६८
३. द्विवेदी युग के पूर्वार्द्ध का साधारण साहित्य २६८
४. द्विवेदी-युग में हिन्दी-प्रचार— २६९
काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा और अन्य संस्थाएं २६९, प्रेसों का कार्य २७१, शिक्षासंस्थाओं का कार्य २७२, विदेशों में हिन्दी-प्रचार २७२, पत्रपत्रिकाएं २७३
५ द्विवेदी-युग की कविता— २७९
क. युगनिर्माता द्विवेदी द्वारा युगपरिवर्तन की सूचना २७९
ख. काव्यविधान— २७९
प्रबन्ध काव्य २८०, मुक्तक २८०, प्रबन्धमुक्तक २८१, गीत या गीति २८१, गद्यकाव्य २८१
ग छन्द २८५
घ. भाषा २८८
ङ विषय २९४
चित्र २९४, धर्म २९४, समाज २९६, राजनीति २९९, प्रकृति ३०२, प्रेम ३०४, अन्य विषय ३०५
च द्विवेदीयुग के चार चरण ३०६

छ. द्विवेदीयुग की कविता का इतिहास ३०६
ज. रसभावव्यंजना ३०६
झ. चमत्कार ३०७
ञ. द्विवेदीयुग की कविता का रमणीय रूप ३०८
६. नाटक ३०८
क. महान् साहित्यकारों का असफल प्रयास ३०८
ख. बहुसंख्यक नाटककारों की विविधविषयक रचनाएं ३०९
ग. द्विवेदी-युग के नाटककारों की असफलता के कारण ३१०
घ. नाटकरचना की ओर संस्थाओं का ध्यान ३११
ङ नाटकों के अनेक रूप ३१२
च. साहित्यिक नाटकों के मुख्य प्रकार ३१२
सामान्य नाटकों की कोटियां ३१२, गम्भीर एकांकी नाटक ३१४, प्रहसन ३१४, पद्यरूपक ३१५
७ उपन्यास-कहानी ३१५
क. द्विवेदी जी के आख्यायिकोपम अनुवाद ३१५
ख. द्विवेदी जी द्वारा कहानी को प्रोत्साहन ३१६
ग. द्विवेदीयुग के उपन्यासों का उद्गम ३१६
घ उपन्यासों का मूल उद्देश ३१७
ङ. विषय ३१८
च. पद्धतियां ३१९
छ. संवेदना की दृष्टि से उपन्यासों के प्रकार ३२१
ज. उपन्यास के क्षेत्र में द्विवेदी-युग की देन ३२२
झ. द्विवेदीयुग की कहानी के मूल, उद्देश और विषय ३२२
ञ पद्धतियां ३२२
ट. संवेदना की दृष्टि से द्विवेदीयुग की कहानियों का वर्गीकरण ३२६
ठ. कहानी के क्षेत्र में द्विवेदीयुग की देन ३२७
८ निबन्ध— ३२८
क. द्विवेदी-युग के निबन्धों के रूप ३२८
ख द्विवेदीयुग के निबन्धों के प्रकार ३२८
ग द्विवेदीयुग के निबन्ध की देन ३३०

९ रीति शाली ३३०
क. द्विवेदी जी द्वारा रीतिशैली-निर्माण ३३०
ख द्विवेदी-युग की गद्यभाषा की मुख्य रीतियां ३३३
ग. द्विवेदीयुग की भाषाशैली का वर्गीकरण ३३४
१०. आलोचना— ३३७
क. द्विवेदीयुग की आलोचना की ६ पद्धतियां—
आचार्यपद्धति ३३८, टीकापद्धति ३४३, सूक्तिपद्धति ३४५, खंडनपद्धति ३४६, शास्त्रार्थपद्धति ३४६, लोचनपद्धति ३५१
ख. द्विवेदीयुग की साहित्यिक आलोचना के विषय ३६०
ग. द्विवेदीयुग की आलोचनाशैली ३६१
घ. उपसंहार ३६४

परिशिष्ट

१. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को द्विवेदी जी द्वारा दिए गए दान की सूची ३६६
२. वर्णानुक्रम से द्विवेदी जी की रचनाओं की सूची ३७७
३ द्विवेदी जी द्वारा संशोधित एक लेख ३७६
४. कुछ पत्रिकाओं की विषय-सूची— ३६६
केरल-कोकिल ३६६, महाराष्ट्रकोकिल ३६८, प्रवासी ३६८, मर्यादा ३६६, प्रभा ४००, माधुरी ४०१, चाँद ४०२, मॉडर्न रिव्यू ४०४

सहायक-ग्रन्थ-सूची—४०६

अंग्रेजी-पुस्तकें, संस्कृत-पुस्तकें, हिन्दी-पुस्तकें, सामयिक-पुस्तकें

पहला अध्याय

भूमिका

अँगरेजों की दिन दिन बढ़ती हुई शक्ति भारतीय इतिहास का नूतन परिच्छेद लिखती जा रही थी। सन् १८३३ ई० और १८५६ ई० के बीच बरती जाने वाली राजनीति ने देश मे क्राति उपस्थित कर दी। सिध, पंजाब, अवध आदि की स्वाधीनता का अपहरण, झाँसी की रानी को गोद लेने की मनाही, नाना साहब की पैंशन की समाप्ति, सिविल सर्विस परीक्षाओं मे भारतीयों के विरुद्ध अनुचित पक्षपात, भारतीय सैनिकों को बलात् बाहर भेजने की आज्ञा आदि आपत्तिजनक कार्यों ने जनता को असन्तुष्ट कर दिया। देश के अनेक स्थानों मे प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक उठी। १८५७ ई० का विद्रोह किसी प्रकार शान्त किया गया। हिन्दी के साहित्यकार अधिकतर मध्यम और उच्च वर्ग के थे। उन्हे शासकों से काम था। मुसलमानों और अत्याचारी शासन, विद्रोह के भयानक परिणाम और शासकों की विशेष कृपा मे प्रभावित होने के कारण उन्होंने सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह की चर्चा अपनी रचनाओं में नहीं की। परन्तु जन साधारण ने "खूब लटी मरदानी, अरे झासी वाली रानी"[1] आदि लोक-गीतों के द्वारा अपनी विद्रोह भावना की अभिव्यक्ति की। महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में सहृदयता, उदारता और धार्मिक सहिष्णुता थी। उससे देशी राजाओं और प्रजा को आश्वासन मिला। उनका भय और असन्तोष दूर हुआ। कवियों ने गद्‌गद् कंठ से अँगरेजी राज्य का गुणगान किया।

परम मोक्षफल राजपद परसन जीवन माँहि। बृटनदेवता राजसुत पद परसहु चित माहि।[2]

जयति धर्म सत्य देश जय भारतभूमि नरेश। जयति राज राजेश्वरी जय जय जय परमेश।[3]

---

१ बुन्देलखंड में प्रचलित लोक गीत जिसके आधार पर सुभद्राकुमारी चौहान ने लिखा है "बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।"

२ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ७०२।

३ अम्बिकादत्त व्यास मनकी उमग दव पुरुष दृश्य'

इण्डिया कौंसल एक्ट (१८६१) ई० हाईकोर्ट और अदालतों का स्थापना (१८६२) ई० जाबता दीवानी ताजीरात हिन्द और जाबता फौजदारी का प्रयोग अनेक रियासतों के कर की माफी आदि कार्यों ने जनता को प्रसन्न कर दिया। सन् १८७७ ई० के राज-दरबार में देशी राजा-महाराजाओं ने अपनी राजभक्ति का विराट प्रदर्शन किया। १९ वीं शती के अन्तिम चरण में और भी राजनैतिक सुधारों का आरम्भ हुआ। स्वायत-शासन की स्थापना जिलों और तहसीलों में बोर्डों का निर्माण आदि नवीन विधानों ने भारतेन्दु, बालमुकुन्द गुप्त श्रीधर पाठक, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, राधाकृष्णदास आदि साहित्यकारों को शासकों की प्रशस्तियाँ लिखने के लिए प्रेरित किया।

राजनैतिक परिस्थिति के उपर्युक्त पक्ष में तो प्रकाश था परन्तु दूसरा पक्ष अन्धकार-मय था। राजभक्ति और देशभक्ति की भिन्नता भारत के लिए अभिशाप है। राजभक्त होकर भी साहित्यकार "देशभक्ति को भूल न सके। देश-दशा का चित्र खींचने में भी उन्होंने पूरी क्षमता दिखलाई :—

भीतर भीतर सब रस चूसै, बाहर से तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अतितेज, क्यों सखि साजन ? नहिं अंगरेज ॥[1]

इस दिशा में पत्र-पत्रिकाओं की देन विशेष महत्व की है "सार सुधा निधि" और 'भारत मित्र' ने साम्राज्यवादी अङ्गरेजों की युद्ध नीति और सभ्यता पर आक्षेप किए। गदाधर सिंह ने "चीन में तेरह मास" पुस्तक में साम्राज्यवाद का नग्न चित्र खींचा। "सार सुधा निधि" में प्रकाशित 'यमलोक की यात्रा" में राजनैतिक दमन और 'मार्जार मूषक' ने रूस का भय दिखा कर रक्षा के बहाने भारतवासियों पर आतंक जमाने वाली ब्रिटिश नीति की व्यंजना की। राधाचरण गोस्वामी ने पत्र-सपादकों के प्रति किए जाने वाले अन्याय और टैक्स आदि की बातों पर आक्षेप किया। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने भी अपने 'तुम्हें क्या' 'होली' आदि निबन्धों [2] तथा 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में विदेशी शासन पर खूब व्यंग्य प्रहार किया। यही नहीं, अङ्गरेजी शासन के समर्थकरण जमींदारों पर भी साहित्यकारों की लेखनी चली। भारतेन्दु ने अपने 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में (१८८१ ई०) में एक देशी नरेश (टुमरांव) के अन्यायों पर व्यंग्य किया है।

सन् १८५७ ई० के विद्रोह को राष्ट्रीय उन्मेष कहना भारी भूल है। उसमें राष्ट्रीय

---

१ भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र, 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ८११।

२ समय समय पर 'भारत-मित्र' में प्रकाशित और 'गुप्त निबन्धावली' में संकलित।

भावना का लेश भी नहीं था। नाना साहब, लक्ष्मीबाई, अवध की बेगम, दिल्ली के मुग़ल, फौज़ी सिपाही आदि सभी अपने अपने स्वार्थ-साधन के लिए विद्रोही हुये। यह लहर सम्पूर्ण देश में न फैल सकी। दक्षिण भारत, बंगाल और पंजाब ने तो सरकार का ही साथ दिया। राष्ट्रीय भावना के अभाव के ही कारण विद्रोह कुचल दिया गया। १९ वीं शती का उत्तरार्द्ध सभा-समाजों और सार्वजनिक संस्थाओं का युग था। 'बृटिश इंडियन एशोसियेशन' (१८५१ ई०) 'बाम्बे एसोसियेशन', 'ईस्ट इंडिया एसोसियेशन' (१८७६ ई०) 'मद्रास महाजन सभा' (१८८१ ई०), 'बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन' (१८८५ ई०) आदि की स्थापना इसी काल में हुई। इनके अतिरिक्त तत्कालीन धार्मिक और सांस्कृतिक सभाओं ने देश में आत्माभिमान की भावना जाग्रत की।

सरकार के अशुभ और विरोधी कानून, पुलिस का दमन, लार्ड लिटन का प्रतिगामी शासन (१८७६-८० ई०) खर्चीला दरबार, कपास के यातायात-कर का उठाया जाना (१८७७ ई०), वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट (१८७८ ई०), अफगान युद्ध (१८७८-१८८२ ई०) आदि बातों ने देशवासियों को पराधीनता के शाप का अनुभव कराया। विश्वविद्यालयों में शिक्षित नवयुवकों ने जनता के साथ पाश्चात्य इतिहास और राजनीति के उदाहरण उपस्थित किए। जनता में उत्तेजना बढ़ती गई। यहाँ तक कि किसी क्रान्तिकारी विस्फोट की आशंका होने लगी। दूरदर्शी ह्यूम ने दादा भाई आदि के सहयोग से राजनैतिक उदासीनता दूर करने का प्रयास किया। इसी के फल स्वरूप १८८५ ई० में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई।

सामाजिक रूप में जन्म लेकर कांग्रेस ने अपने बल पर राजनीतिक रूप धारण कर लिया। आरम्भ में तो अनुनय-विनय की नीति बरती गई किन्तु ज्यों ज्यों देशवासियों का सहयोग मिलता गया त्यों त्यों वह आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण करती गई। उसने धन, धर्म, जाति, लिंग, पद आदि का कोई भेद नहीं किया। विकास की प्रारम्भिक भूमिका में मधुरवाणी से काम लिया, अङ्गरेजों की प्रशंसा और अपनी राजभक्ति की अभिव्यक्ति तक की। लोकमान्य तिलक ने विदेशी शासकों के प्रति घृणा के विचारों का प्रचार किया। कांग्रेस की राष्ट्रीयता उग्र रूप धारण करती गई। उसकी वृद्धि के साथ ही साथ सरकार भी उस पर संदेह करने लगी। सितम्बर सन् १८९७ ई० में तिलक को १८ मास की कड़ी सजा दी गई, मैक्समूलर, हंटर आदि के कठिन आवेदनपर एक वर्ष बाद छूटे।

उपर्युक्त राष्ट्रीय आन्दोलनों ने हिन्दी साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। संपादकों और ने समान रूप से देश की तत्कालीन राष्ट्रीय जागृति के चित्र अंकित

किए। प्रेमघन और अम्बिकादत्त व्यास ने अपने 'भारत सौभाग्य' नाटकों में देश की का दृश्य दिखाया। 'ब्राह्मण' ने 'कांग्रेस की जय' 'देशी कपड़ा' आदि निबन्ध ल राधाचरण गोस्वामी ने 'हमारा उत्तम भारत देश' और बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'स्व आन्दोलन' पर रचनाएँ कीं—

आओ एक प्रतिज्ञा करैं, एक साथ सब जीवें मरें।
अपनी चीजें आप बनाओ, उनसे अपना अङ्ग सजाओ॥[1]

पंडित प्रतापनारायण मिश्र के "तृष्यन्ताम्" और श्रीधर पाटक के 'ब्रेडला स्वागत देश की करुण दशा का हास्य-मिश्रित तथा ओजपूर्ण शैली में बहुत सुन्दर वर्णन पाटक जी की रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्वर विशेष रूप से स्पष्ट है—

वन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों।
बांधवता में बंधे परस्पर परता के अज्ञानी हों॥
निन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अज्ञानी हों।
सब प्रकार परतंत्र, पराई प्रभुता के अभिमानी हों॥

इसी स्वतन्त्रता-भाव को एक पग और आगे बढ़ाते हुये द्विवेदी जी ने कहा था—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है॥[2]

उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों ने भारत ही नहीं सारे विश्व उद्योग-धन्धों में क्रान्ति उपस्थित करदी। पुतलीघरों तथा अन्य कल-कारखाना निर्माण ने श्रमिक वर्ग के कारीगरों की जीविका छीन ली। सड़कों, नहरों, रेल, डाक आदि ने विदेशों की दूरी कम करदी। सन् १८६९ ई० में स्वेज-नहर के जाने से योरप का भारत से व्यापारिक सम्बन्ध और सुगम हो गया। योरपीय विदेशी वस्तुओं ने भारतीय बाजार पर अधिकार कर लिया, यन्त्रों से स्पर्द्धा न सकने के कारण देशी कारीगर कृषि की ओर झुके। खेती की दशा भी शोच थी। जन-संख्या में वृद्धि, उर्वराशक्ति के क्रमशः ह्रास, ईतियों और भीतियों कारण उनकी आर्थिक दशा बिगड़ती जा रही थी। शिक्षितों को अनुकूल नौक

---

१ 'स्फुट-कविता'—१९१९ ई० में संकलन-रूप में प्रकाशित।

२ कानपुर के दैनिक पत्र 'प्रताप' के शीर्ष पर छपने वाला सिद्धान्त-वाक्य

नहीं मिलती थीं, वे शारीरिक परिश्रम के भी अयोग्य थे, एक तो शिक्षित और अशिक्षित दोनों बेकार हो रहे थे और दूसरे देश का धन विदेश जा रहा था। देश आर्थिक संकट में पड़ गया। भारतेन्दु आदि साहित्यकार अङ्गरेजी, राज्य के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए भी उसकी आर्थिक नीति के विरुद्ध लिखने पर बाध्य हुये। असुविधा जनक खर्चीली अदालतों, उत्कोचग्राही पुलिस के अत्याचार, ऊँचा लगान और उसके सग्रह के कठोर नियम, शस्त्र और जंगल-कानून आदि ने किसानों के दुख को दूना कर दिया। जनता की एतद्विषयक प्रार्थनाओं को सरकार ने उपेक्षा की दृष्टि से देखा। सन् १८६८-६६ मे घोर अकाल पड़ा, लगभग बीस लाख व्यक्ति मरे। सन् १८७७ ई० मे दक्षिण में भयकर दुर्भिक्ष पड़ा। लार्ड लिटन (१८७६-८० ई०) अकाल-पीड़ितों की सहायता का उचित प्रबन्ध न कर सके। लार्ड एल्गिन के समय मे (१८६४-६६ ई०) पश्चिमोत्तर प्रान्त, मध्य प्रदेश, बिहार और पंजाब में अकाल पड़े। १६०० ई० मे गुजरात मे भी अकाल पडा। इस प्रकार अकाल पर अकाल और उसके ऊपर महामारी, टैक्स, बेकारी आदि ने जनता के हृदय को छलनी बना डाला। साहित्यकारों ने देशवासियों के इन कष्टों का अनुभव किया और उन अनुभूतियों की अपनी रचनाओं मे अभिव्यक्ति की।[1]

अङ्गरेजों के आधिपत्य-स्थापन के समय हिन्दू धर्म शिथिल हो चुका था। अशिक्षित भारतीय जनता अज्ञान अन्धविश्वास में संवेष्ठित थी। दुर्बल और प्राणशून्य हिन्दू जाति की धार्मिक और सामाजिक अवस्था शोचनीय थी। सारा देश तन्द्रा मे था। ईसाइयों ने निर्विरोध धर्म-प्रचार आरम्भ किया। शिक्षा, धन, विवाह, पदाधिकार आदि के लोभी जनों द्वारा उनके इस कार्य का स्वागत हुआ। यों तो पन्द्रहवीं शती के आरम्भ से ही ईसाई-धर्म-प्रचारकों ने भारत मे आना आरम्भ कर दिया था किन्तु प्रथम तीन सौ वर्षों में उनके प्रचार का हिन्दी-साहित्य पर कोई प्रभाव न पड़ा। जब सन् १८१३ ई० मे उन्हें 'चिल्त्रफोर्स ऐक्ट' के अनुसार भारत में धर्म-प्रचार की आज्ञा मिल गई, तब उन्होंने इस कार्य मे तीव्र दक्षता दिखलाई। धर्म-

---

१ आयो विकराल काल भारी है अकाल पर्‌यो,
पूरे नाहिं खर्च घर भर की कमाई में।
कौन भांति देवें टैक्स इनकम लैसन और,
पानी की पियाई, लौटरन की सफाई में।
कैसे हेल्थ साहब की बात कछू कान करें,
पड़े न सुसीत भूमि पौढ़ें चारपाई में

प्रचार के उद्देश्य से पादरियों ने जन साधारण की भाषा में व्याख्यान और शिक्षा की आयोजना की। सन् १८०२ ई० में "दी न्यू टेस्टामेंट" का हिन्दी अनुवाद हो चुका था। सन् १८०६ और १८२६ ई० के बीच पश्चिमी हिन्दी, ब्रजभाषा, अवधी, मागधी, उज्जैनी और बघेली में भी धर्म-ग्रन्थ प्रकाशित किए गए। सन् १८५० ई० तक बाइबिल के ही अनेक हिन्दी अनुवाद हो गये और आगे भी अनुवादों की शृंखला जारी रही।

'अमेरिकन मिशन', 'क्रिश्चयन एज्यूकेशन सोसाइटी', 'नार्थ इंडिया क्रिश्चयन टेक्स्ट एंड बुक सोसाईटी', 'क्रिश्चयन वर्नाक्यूलर लिटरेचर सोसाइटी', 'नार्थ इंडिया अविजलियरी बाइबिल सोसाइटी' आदि ईसाई संस्थाओं ने हिन्दी को धर्म-प्रचार का माध्यम बनाकर उसका प्रचार किया। अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन और, अन्य धर्मों की आलोचना करने के लिये पादरियों ने आगरा, इलाहाबाद, सिकन्दरा, बनारस फर्रुखाबाद आदि नगरों में प्रेस स्थापित किये और उनसे सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित कीं।

१६ वीं शती के आरम्भ में ही पश्चिमी सभ्यता और धर्म का आघात पाकर देश में उत्तेजना की लहर दौड़ गई। हिन्दुओं को अपने धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिये ईसाइयों ने हिन्दू धर्म की सती-सरीखी क्रूर और भयंकर प्रथाओं पर बुरी तरह आक्षेप किया था। राजा राममोहन राय आदि नव-शिक्षित हिन्दुओं ने स्वयं इन कुप्रथाओं का विरोध किया। इसी समाज सुधार के उद्देश्य से उन्होंने सन् १८५८ ई० 'ब्राह्म समाज' की स्थापना की। तत्पश्चात् 'आर्य समाज' (१८७५ ई०), 'थियोसोफिकल सोसायटी' (सन् १८७५ ई० में न्यूयार्क तथा १८७६ ई० में भारत में) 'रामकृष्ण मिशन' आदि धार्मिक संस्थाओं की स्थापना हुई।

दयानन्द सरस्वती ने (१८२४-८३ ई०) वैदिक धर्म का प्रचार किया, आर्य समाज

किमि के बबावैं श्वांस और कौन ओर घुसे,
सोवैं साथ चार चार एक ही रजाई में।
बाबू पुत्तनलाल 'समस्यापूर्ति', भा० ५ पृ० ६।

संपादक —राम कृष्ण वर्मा, १८९६ ई०

पै दुख अति भारी इक यह जो बढ़त दीनता,
भारत में संपति की दिन दिन होत छीनता।

प्रेमधन, 'हार्दिक हर्षादर्श'

जिनके कारण सब सुख पावे, जिनका बाप सब जग खावे,
हाय हाय उनके बालक नित भूखों के मारे चिल्लाय॥

गप्त स्फुट कविता जातीय गीत' ६२

की शाखाओं, गुरुकुलों और गोरक्षिणी सभाओं की स्थापना की, विधवा-विवाह निषेध, बाल-विवाह, ब्राह्मण धर्मान्तर्गत कर्मकाण्ड, अन्धविश्वास आदि का घोर विरोध किया। उन्हों ने पाश्चात्य विचार-धारा की भित्ति पर स्थापित ब्राह्म-समाज ने बहु देववाद, मूर्तिपूजा, बहुविवाह आदि के विरुद्ध संग्राम किया। आर्य-समाज के सिद्धान्त का आधार विशुद्ध भारतीय था। इसने ब्राह्म-समाज के पाश्चात्य प्रभाव को रोकते हुए देश का ध्यान प्राचीन भारतीय सभ्यता की ओर खींचा। विवेकानन्द ने शिकागो में भारत की आध्यात्मिकता का प्रचार किया। 'थियोसोफिकल सोसायटी' ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सन्देश सुनाते हुए भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की तथा उसका प्रचार किया। रामकृष्ण मिशन ने आरंभ में आध्यात्मिक और फिर आगे चलकर लोक-सेवा के आदर्श की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया। इस प्रकार देश के विभिन्न भागों में स्थापित धार्मिक संस्थाओं ने पश्चिमी भाषा, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, धर्म और शिक्षा तथा अपनी निर्बलताओं से उत्पन्न बुराइयों को दबाने का उद्योग किया।

इन धार्मिक आन्दोलनों ने हिन्दी साहित्य को भी प्रभावित किया। दयानन्द सरस्वती, भीमसेन शर्मा आदि ने हिन्दी में अनेक धार्मिक पुस्तकें लिखीं और अनेक के हिन्दी-भाष्य प्रकाशित किये। आर्य-समाजियों के विरोध में श्रद्धाराम फुल्लौरी अम्बिकादत्त व्यास आदि सनातन-धर्मियों ने भी बवण्डर उठाया। धार्मिक घात-प्रतिघात में खंडन-मंडन के लिए हिन्दी में अनेक पुस्तकों की रचना हुई। दयानन्द लिखित 'सत्यार्थ-प्रकाश', 'वेदांग-प्रकाश', 'संस्कार-विधि', आदि, श्रद्धाराम फुल्लौरी लिखित 'सत्यामृत-प्रवाह', 'भागवती' आदि, अम्बिकादत्त व्यास-लिखित 'अवतार-मीमांसा' 'मूर्ति-पूजा', 'दयानन्द-पाडित्य-खंडन' आदि कृतियाँ इसी धार्मिक संघर्ष की उपज हैं। इन रचनाओं की भाषा व्याकरण-विरुद्ध और पंडिताऊ होने पर भी तर्क और ओज से विशिष्ट है।

साहित्यकार भी इस खंडन-मंडन से प्रभावित हुए। भारतेन्दु ने इस सब खंडन-मंडन के झगड़ों से दूर रह कर प्रेमोपासना का संदेश दिया—

"खंडन जग में काको कीजे। पियारो पढ़िये केवल प्रेम में" [1]

प्रतापनारायण मिश्र ने तो एक स्थल पर इस झूठे धार्मिक वितंडावाद से ऊबकर अशरण शरण भगवान् की शरण ली है।

"झूठे झगड़ों से मेरा पिंड छुड़ाओ। मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ।"[2]

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली'. पृ० १३६

२ प्रेम पुष्पावली' 'बसंत'

वारेन हेस्टिंग्ज (१७७४–८५ ई०) और जोनेथन डंकन (१७९५ १८११ ई०) द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों को संस्कृत और फ़ारसी में सांस्कृतिक शिक्षा देने की आयोजना की गई थी। विज्ञापन के युग में प्राचीन ढंग की धार्मिक शिक्षा पर्याप्त न थी। १८१३ ई० में पार्लियामेंट ने ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि के लिये एक लाख रुपये की स्वीकृति दी, परन्तु इससे कोई उद्देश्य पूर्ति हुई नहीं। राजा राममोहन राय आदि भारतीयों की सहायता से डेविड हेअर ने १८१६ ई० में कलकत्ते में एक अङ्गरेजी स्कूल खोला और १८३७ ई० में लार्ड मेकाले ने अङ्गरेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाया। १८४४ ई० में हार्डिंग्ज के चार्टर के अनुसार नौकरियाँ अङ्गरेजी पढ़े-लिखे लोगों को दी जाने लगी। १८५४ ई० में लार्ड डलहौज़ी और चार्ल्सवुड ने नई शिक्षा-योजना बनाई जिसके फलस्वरूप गावों में प्रारंभिक और नगरों में हाई स्कूल खोले गये। सिद्धान्त रूप में शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ थीं परन्तु कार्य-क्रम से अँगरेजी ही माध्यम रही। ईसाई-धर्म-प्रचारकों का शिक्षा का क्रम पहले ही से जारी था। १८५७ ई० में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्व-विद्यालयों की स्थापना हुई।

२८५७ ई० के विद्रोह-शमन के बाद अँगरेजी राज्य दृढ़ हो गया। किन्तु साधारण जनता के हृदय में शासकों के प्रति श्रद्धा कम और आतङ्क अधिक था। भारतीयों की इस मनोवृत्ति को बदलने के लिये सरकार उनकी संस्कृति में परिवर्तन करना चाहती थी। इसी-लिये अंगरेजी माध्यम और पाश्चात्य साहित्य के पाठन पर अधिक जोर दिया गया था। यद्यपि पश्चिमी विज्ञान, साहित्य, इतिहास, आदि के अध्ययन से भारतीयों की दृष्टि में बहुत कुछ व्यापकता आई और सामाजिक अवस्था में बहुत कुछ सुधार हुआ, तथापि अङ्गरेजी माध्यम ने भारतीय साहित्य और जीवन का बड़ा अहित किया। उसने देशी भाषाओं की उन्नति का मार्ग रूँध दिया। विदेशी साहित्य, शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति से मोहित भारतीय नवयुवक उन्हीं के दास हो गये। वे अपनी भाषा साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, जाति या धर्म की सभी बातों को गँवारू समझने लगे। उन्हें "स्वदेश", 'भारतीय', 'हिन्दी' जैसे शब्दों से चिढ़ होने लगी। वे हृदयहीन शिक्षित अल्पज्ञ अशिक्षितों और धनहीनों-के प्रति प्रेम और सहानुभूति करने के स्थान पर तिरस्कार और घृणा के भाव धारण करने लगे। शिक्षा के क्षेत्र में काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और पंजाब में नवीनचन्द्रराय ने हिन्दी के लिये महत्वपूर्ण कार्य किया।

कुछ ही काल के उपरान्त हिंदी-साहित्यकारों को अपनी संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के पुनरुद्धार की आवश्यकता का अनुभव हुआ भारतेन्दु युग

मिश्र बालमुकुन्द गुप्त आदि ने जनता को इन विनाशकारी प्रभावों से बचने के लिये चेतावनी दी, समाज सुधार और स्वदेशी आन्दोलन सम्बन्धी विषयों पर ग्राम गीत लिखने और लिखाने का प्रयास किया जिससे जागरण का नूतन स्वर अशिक्षित जनता के कानों तक भी पहुँच सके। भारतेन्दु ने जनपद-साहित्य के योग्य रचनाएँ की, अंगरेजी साहित्य और शिक्षा बेकारी, सरकारी कर्मचारियों, पुलिस कचहरी, कानून उपाधियों, विधवा-विवाह, मद्यपान सुन्दर मुकरियाँ लिखीं—

सब गुरु जन को बुरो बतावे, अपनी खिचड़ी आप पकावै।
भीतर तत्व न झूठी तेजी, क्यों सखि साजन? नहिं अङ्गरेजी॥
तीन बुलाए तेरह आवें, निज निज विपदा रोइ सुनावें।
आँखैं फूटे भरा न पेट, क्यों सखि साजन? नहिं ग्रेजुएट॥ [1]
मतलब ही की बोलै बात, राखे सदा काम की घात।
डोलै पहिने सुन्दर समला, क्यों सखि साजन? नहिं सखि अमला॥
रूप दिखावत सरबस लूटे, फन्दे में जो पड़े न छूटै।
कपट कटारी हिय में हूलिस, क्यों सखि साजन? नहिं सखि पूलिस॥ [2]

'बाल-विवाह से हानि', 'जन्मपत्री मिलाने की अशास्त्रता' 'बालकों की शिक्षा' अंगरेजी फैशन से शराब की आदत', 'भ्रूणहत्या', 'फूट और बैर', बहु-जातित्व और बहुभक्तित्व', 'जन्मभूमि से स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता', 'नशा', अदालत', 'हिन्दुस्तान की वस्तु हिंदुस्तानियों को व्यवहार करना चाहिये' आदि विषयों पर रचनाएँ की गई। 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' में प्रकाशित 'यूरोपीय के प्रति भारतवर्षीय के प्रश्न' और 'कलिराज की सभा' में सरकार के पिट्ठुओं पर आक्षेप है। उसी के सातवें अङ्क में नये अंगरेजी पढे-लिखे लोगों का अच्छा उपहास किया गया है। [3]

भारतेन्दु ने साहित्य को समाज से संबद्ध करने का प्रयास किया। उनके नाटकों में तत्कालीन सामाजिक दशा की सुन्दर व्यंजना हुई है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में उन्होंने धार्मिकता के नाम पर प्रचलित सामाजिक अनाचारों और स्वार्थ लोलुप जनों का चित्रण किया है। 'विषस्य विषमौषधम्' में देशी नरेशों के बीभत्स दृश्य अङ्कित कर के दूषित वातावरण और दयनीय दशा की झाँकी उपस्थित की गई है।

---

१ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली', पृ० ८१०

२ 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली', पृ० ८११

३ When I go Sir, market ko, these chaprasis, trouble me much. How can I give daily Inam ever they ask me I say such ometime they me give gardania and tell baba niklo tum

"भारत दुर्दशा" में हिन्दू धर्म के विभिन्न संप्रदायों का मत-मतांतर, जाति-पाँति के भेद-भाव, विवाह और पूजा संबन्धी कुप्रथाओं, विदेश-गमन-निषेध, अङ्गरेजी शासन आदि पर आक्षेप किया गया है।

प्रतापनारायण मिश्र के 'कलिकौतुक-रूपक' में पाखंडियों और दुराचारियों का तथा 'भारत-दुर्दशा', 'गोसंकट नाटक' और 'कलि-प्रभाव नाटक' में श्रीसम्पन्न नागरिक जनों के गुप्त चरित्रों का चित्रण किया गया है। राधाचरण गोस्वामी के 'तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण' में रूढ़िवादी तथा अन्धविश्वासी वृद्धजनों के विरुद्ध नवयुवक दल के संघर्ष और 'बूढ़े मुँह मुहाँसे' में किसान की जमींदार-विरोधी भावना तथा हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का निरूपण है। काशीनाथ खत्री के 'ग्राम-पाठशाला' 'निकृष्ट नौकरी' और 'बाल-विधवा-संताप', राधा कृष्णदास के 'दुःखिनीबाला' तथा अन्य नाटककारों के नाटकों में भी समाज की दीन-दशा के विविध चित्र अङ्कित किए गए है।

निबन्धकारों ने भी 'राजा भोज का सपना' (सितारे-हिन्द), 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' (भारतेन्दु), 'यमलोक की यात्रा' (राधाचरण गोस्वामी), 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन' (भारतेन्दु) आदि निबन्धों में तत्कालीन धर्म, कर्म, दान, चन्दा, शिक्षा, पुलिस, कचहरी, आदि पर तीखा व्यंग्य किया है।[1] भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, आदि कवियों ने सामाजिक दुरवस्था को आलम्बन मान कर रचनाएँ की हैं।[2]

पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और सभ्यता-संस्कृति की शिक्षा दीक्षा ने भारतेन्दु-युग को इतिहास

Dena na lena muft ke aye hain yaha Bare Darbari ki dum.

इस संबंध में डा० रामविलास शर्मा का 'भारतेंदु युग' (पृ० ९५-११२) अवलोकनीय है

१ देखिये भारतेन्दु-युग—(डा० रामविलास शर्मा) पृ० ९५—१२२

२ सेल गई बरछी गई, गये तीर तरवार
घड़ी छड़ी चसमा भये, क्षत्रिन के हथियार। बालमुकुन्द गुप्त 'स्फुट कविता'
'श्रीराम स्तोत्र' पृ० ७

बात वह अगली सब सटकी, बहू जब मैं थी घूंघट की।
घुटावैं क्यों पिंजडे में दम, नहीं कुछ अंधी चिड़िया हम॥

बाबू बालमुकुन्द गुप्त कृत 'स्फुट-कविता'—'सभ्य बीबी की चिट्ठी' पृ० ११०

बिधवा बिलपै अरु धेनु कटैं, कोउ लागत हाय गोहार नहीं।
कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपति बात बिधवन की है,
ताते बढ़िकै करुण क्रन्दना कान्यकुब्ज कन्यन की है।

मिश्र 'मन की लहर'

की भूमिका म एक पग और आगे बढा दिया इस युग की साहित्य सृष्टि भाव, एव कल्पना म गगन विहारी रातिकालीन स हि य और जीवन तथा कम म विश्वास करने वाले यथाथ वादी आधुनिक साहित्य के बीच की कड़ी है। इस युग के कवियों ने भक्ति और शृङ्गार परम्परा का पालन करते हुए भी देश-भक्ति, लोक-कल्याण, समाज-सुधार, मातृभाषोद्धार आदि का संदेश सुनाया। भारतेन्दु की कविताओं में शृङ्गार और स्वदेश-प्रेम, राधाकृष्ण की भक्ति और टीकाधारी मायावी भक्तों का उपहास, प्राचीनता और नवीनता एक साथ है। इस युग मे व्यक्तिगत प्रेम और सहानुभूति ने बहुत कुछ व्यापक रूप धारण किया। शृङ्गार के आलम्बन नायक-नायिकाओं ने स्वदेश, स्वदेशी वस्तु, सामाजिक कुरीतियों, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदि विषयों के लिये भी स्थान रिक्त किया। भारतेन्दु की "विजयिनी विजय वैजयन्ती" (१८८२ ई०) और प्रतापनारायण मिश्र की "तृष्यन्ताम्" (१८९१ ई०) कविताओं मे परतन्त्र भारत की दीनावस्था पर क्षोभ, मिश्र जी की 'लोकोक्तिशतक' (१८८८ ई०), 'आवहुमाय' (१८९८ ई०) आदि में देश की विपन्न दशा पर सन्ताप, प्रेमघन की 'मगलाशा या हार्दिक धन्यवाद' मे सुधारक शासकों की कृपा-दृष्टि पर सन्तोष और प्रतापनारायण मिश्र के 'लोकोक्तिशतक' एव बालमुकुन्द गुप्त आदि की स्फुट कविताओं में संगठनभावना का व्यक्तीकरण है।

राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र ('मन की लहर-'सन्१८८५ ई०), नित्यानन्द चौबे ('कलिराज की कथा'-१८९१ ई० ', आत्माराम सन्यासी 'नशाखंडन-चालीसा' (१८९६) बालमुकुन्द गुप्त (स्फुट कविता'-प्रकाशित १९१९ ई०) आदि कवियों ने सामाजिक विषयों पर रचनाएँ की। श्रीधर पाठक का (' जगतसचाई-सार" १८८७), माधवदास का "निर्भय अद्वैत सिद्धम्"—(१८९९ ई०), रामचन्द्र त्रिपाठी का, "विद्या के गुण और मूर्खता के दोष" आदि दार्शनिक विषयों पर की गई रचनाएँ हैं। 'दगावाजी का उद्योग' (भारतेन्दु) 'ब्रूसल्स की लड़ाई' (श्री निवास दास) आदि की कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक है। 'दामिनी दूतिका' (राधाचरण गोस्वामी), 'म्यूनिसिपैलिटी ध्यानम्' (श्रीधर पाठक-१८८४ ई०), "लेग की भूतनी' (बालमुकुन्द गुप्त—१८९७ ई०), 'जनाने पुरुष' (बालमुकुन्द गुप्त—१८९८ ई०) आदि मे कवियों ने नवीन विषयों की ओर ध्यान दिया है। हास्यरस के आलम्बन, कृपण खाऊ ब्राह्मण आदि न होकर नव-शिक्षित, फैशन के दास, रईस, लकीर के फ़कीर आदि हुए है तथा वीर रस के आलम्बन का गुरुतम पद देशप्रेमियों को दिया गया है। इस युग की राजनैतिक, राष्ट्रीय, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक कविताओं में अतीत के प्रति अभिमान के प्रति क्षोभ और भविष्य के प्रति आशा की हुई है

गाग्द्ववेदी-युग को पद्य रचना म एक विशिष्ट स्थान ईसाई धम प्रचारकदेशी पाद रिया का भी है पद्य की स्वाभाविक प्रभावा पादकता से जनता को आकृष्ट करने क लिय उन्होंने "मंगल समाचार का दूत" (१८६१ ई०), 'बुह श्रेष्ठ मूल कथा' (१८७१ ई० ', 'खीष्ट-चरितामृत-पुस्तक' (१८७१), 'गीत और भजन' (१८७५), 'प्रेम-दोहावली' (१८८० ई०), 'मसीही गीत की किताव' (१८८१), दाऊदमाला' (१८८२), 'भजन-सग्रह' (१८८६), 'छन्द-संग्रह' १८८८ वि० सं०), 'सुबोध-पत्रिका' (१८८७ ई०), 'गीत-संग्रह' (१८८८ ई० पृष्ठ सं०), 'गीतों की पुस्तक' (१८८६ ई०), 'धर्मसार' (१८ ८६ ई०), 'गीत-सग्रह' (१८६४), 'उपमामनोरंजिका' (१८६६) आदि छन्दोबद्ध पुस्तकें लिखी । इन मे अनेक राग-रागनियों के पद,गीत,भजन,गजल आदि है। दोहा, चौपाई, रोला आदि छन्दों की भी बहुलता है। शिथिल और खिचड़ी भाषा मे काव्यकला का सर्वथा अभाव है। उनका महत्व खड़ीबोली-पद्य-रचना के प्रारम्भिक प्रयास मे ही है ।

विषय की दृष्टि से तो भारतेन्दु-युग की कविता बहुत कुछ आगे बढ़ गई, परन्तु पूर्ववर्ती रीतिकालीन काव्य का कला-सौंदर्य न आ सका । भारतेन्दु की कविता में कहीं तो भक्तिकालीन कवियों की स्वाभाविक तल्लीनता, [1] कहीं छायावाद की सी लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और कहीं चलचित्रों के से चलते गाने है । उस युग के नायिका-उपासक कवियों ने शृङ्गार-वर्णन मे ही अपनी प्रतिभा का अधिक उपयोग किया है । कोलाहल के उस युग मे बहुधन्धी कवि अपनी रचनाओं को विशेष सरस या रमणीय न बना सके। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिस्थितियों से प्रभावित कवियों की शृङ्गारेतर कृतियाँ प्रचारात्मकता और सामयिकता से ऊपर न उठ सकी । श्रीधर पाठक, प्रमधन आदि ने अङ्गरेजी काव्य के भाव और शैली को अपना कर उसी ढंग की रचनाएँ करने का प्रयास किया । पुराने ढर्रे के रूढ़िवादी कवि समस्या-पूर्तियों पर बुरी तरह लट्टू थे । भारतेन्दु के 'कवि-समाज' की समस्या-पूर्तियों में निस्स-देह कवित्व है, उदाहरणार्थ भारतेन्दु की पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानति है,' प्रतापनारायण मिश्र की "पपिहा जब पूछि है पीव कहाँ", प्रमधन की 'चरचा

---

१ क—नवनीत मेघबरन,दरसत भव ताप हरन,परसत सुख करन, भक्तसरन जमुनवारी ।

अथवा

धिक देह और गेह सबै सजनी ! जिहि के बस को छूटनो है ।

ख—ससि सूरज ह्वै रैन दिना तुम हियनन करहु प्रकाश ।

ग—सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन ।

अथवा

प्यारी बिन कन्त न कारी रैन

चलिबे की चलाइयना आदि[1] परन्तु समस्या पूर्ति के दुर्व्यसन ने रचनाकारों की प्रतिभा को बहुत कुछ कुण्ठित कर दिया "रसिक वाटिका" रसिक रहस्य आदि पत्रिकाओं में तो एकमात्र समस्या-पूर्ति ही के लिए स्थान था और उनके लेखक पद्यकर्ताओं की रचनाओं में तुकबन्दी से अधिक कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की पूर्तियों में और पत्रिकाओं ने हिन्दी काव्य का बड़ा अहित किया है।

उस युग में प्रबन्ध काव्यों का अभाव सा रहा। 'जीर्ण जनपद', 'कंस वध' (अपूर्ण) 'कलिकाल-दर्पण', 'होली की नकल', 'एकान्तवासी योगी', 'ऊजड ग्राम' आदि इनी गिनी रचनाएं प्रबन्ध-कविता की दृष्टि से निम्न श्रेणी की है। इनका मूल्य खड़ी-बोली-प्रबन्ध-काव्य के इतिहास की पीठिका रूप में ही है। एक ओर तो रीतिकालीन पुरानी परिपाटी के प्रति कवियों का मोह था और दूसरी ओर आन्दोलन और सक्रान्ति की अवस्था। अतएव कवियों की प्रचारात्मकता और उपदेशात्मकता के कारण आधुनिक शैली के गीत-मुक्तकों की रचना न हो सकी। काव्य-विधान के क्षेत्र में गीति-मुक्तकों और प्रबन्ध काव्यों के अभाव की न्यूनाधिक पूर्ति पद्य-निबन्धों ने की। 'बुढ़ापा', 'जगत-सचाई-सार' 'सपूत', 'गोरक्षा' आदि पद्यात्मक निबन्धों में गीतिमुक्तकों की मार्मिक अनुभूति का आभास है। कथासूत्र तथा विषय की एकतानता के कारण प्रबन्ध-व्यंजकता भी है। १६ वीं शती के अन्तिम दशाब्द तक इन निबन्धों में भावात्मकता के स्थान पर नीरसता आ गई। ये इतिवृत्तात्मकरूप में पद्यावद्ध निबन्धमात्र रह गए।

इस युग के कवियों ने सवैया, कवित्त, दोहा, चौपाई, सोरठा आदि की पूर्वकालिक पद्धति से आगे बढ़कर रोला, छप्पय, अड़पदी, लावनी, गजल, रेखता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी आदि पर ध्यान तो अवश्य दिया, परन्तु इस दिशा में उनकी प्रगति विशेष महत्वपूर्ण न हुई। छन्दों की वास्तविक नवीनता और स्वछदता भारतेन्दु के उपरान्त पं० श्रीधर पाठक की रचनाओं में चरितार्थ हुई। लावनी की लय पर लिखे गये, 'एकान्तवासी योगी', सुथड़े साइयों के ढग पर रचित 'जगत-सचाई-सार' आदि में राग-रागिनियों की अवहेलना करके कविता की लय और स्वरपात पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया है :—

"जगत है सच्चा, तनिक न कच्चा, समझो बच्चा इसका भेद।[2]

भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, जगमोहनसिंह, अम्बिकादत्त व्यास आदि कवि

---

१ हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७०१—२

२ जगतसचाई-सार'

ब्रजभाषा की पुरानी धारा में ही बन्ते रहे आरम्भ में श्रीधर पाठक नाथूराम शर्मा शंकर' अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि ने भी ब्रजभाषा को ही काव्य भाषा के रूप में ग्रहण किया सन् १८७६ ई० से खड़ी बोली का प्रभाव बढ़ने लगा। स्वयं भारतेन्दु ने खड़ी बोली में पद्य लिखे :—

खोल खोल छाता चले, लोग सड़क के बीच।
कीचड़ में जूते फँसे, जैसे अघ में नीच॥ [1]

सन् १८७६ ई० में ही बाबू लक्ष्मीप्रसाद ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' (Hermit) का खड़ी बोली में अनुवाद किया था। खड़ी बोली में काव्य-रचना के प्रति प्रोत्साहन न मिलने के कारण भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने ब्रजभाषा को कविता का माध्यम बनाए रक्खा। उस युग में कोई भी कवि खड़ी बोली का ही कवि नहीं हुआ। श्रीधर पाठक ने १८८६ ई० में खड़ी बोली की पहली कविता-पुस्तक एकान्तवासी योगी' लिखी। इस समय गद्य और पद्य की भाषा की भिन्नता लोगों को खटक रही थी। श्रीधर पाठक, अयोध्याप्रसाद खत्री आदि खड़ी बोली के पक्षपाती थे और प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी आदि ब्रजभाषा के। राधाकृष्णदास का मत था कि विषयानुसार कवि किसी भी भाषा का प्रयोग करे। ब्रज-भाषा की पुरातनता, विशाल साहित्य, माधुरी और सरसता के कारण खड़ी बोली को आगे आने में बड़ी कठिनाई हुई। परन्तु काल का आग्रह बोलचाल की भाषा खड़ी बोली के ही प्रति था। १८८८ ई० में अयोध्याप्रसाद खत्री ने 'खड़ी बोली का पद्य' नामक संग्रह दो भागों में प्रकाशित किया। बदरीनारायण चौधरी, श्रीधर पाठक देवीप्रसाद 'पूर्ण' नाथूराम शर्मा, आदि ने ब्रजभाषा के बदले खड़ी बोली को अपनाकर भारतेन्दु के प्रयोगों को भाषा के निश्चित रूप की ओर आगे बढ़ाया। उन्नीसवीं शताब्दी समाप्त हो गई पर, लोगों के उद्योग करने पर भी इस नवीन काव्य-भाषा में अपेक्षित माधुरी, प्राञ्जलता और प्रौढ़ता न आ सकी।

सामयिक साहित्य की उन्नति अङ्गरेजी आदि भाषाओं के वाङ्मय का अध्ययन और

---

१ पहली सितम्बर सन् १८८१ के 'भारत-मित्र' में अपने छन्दों के साथ भारतेन्दु ने यह पत्र भी छपाया था "प्रचलित साधुभाषा में यह कविता भेजी है। देखियेगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इसमें काव्यसौंदर्य बन सकता है। इस सम्बन्ध में सर्वसाधारण की सम्मति ज्ञात होने से आगे से वैसा परिश्रम किया जायगा। लोग विशेष इच्छा करेंगे तो और भी लिखने का यत्न करूँगा।"
भारतेन्दु-युग डा० रामविलास शर्मा, पृ० १६८ ६६

तत्कालीन राजनैतिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलनों ने हिन्दी लेखकों को निबन्ध रचना की ओर प्रेरित किया। उस युग के फक्कड़ हास्य-प्रिय, मिलनसार और सजीव लेखकों ने पाठकों के प्रति अभिन्नरूप और मुक्तकंठ से अपनी भावाभिव्यक्ति करने के लिए कविता, नाटक या उपन्यास की अपेक्षा निबन्ध को ही अधिक श्रेयस्कर माध्यम समझा। इस नवीन रचना की कोई ईदत्ता या इयत्ता निश्चित न होने के कारण, आदर्श के अभाव में, स्वच्छन्दता-प्रेमी लेखकों ने इसके आकार और प्रकार को इच्छानुसार घटाया-बढ़ाया और विषय तथा व्यक्तित्व से अतिरंजित किया। इस विधान में कहानी को भी स्थान मिला और दार्शनिक तत्व के विवेचन को भी। शैली की दृष्टि से लेखकों की अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग था। 'राजा भोज का सपना' (राजा शिवप्रसाद), 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' (भारतेन्दु), एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' (तोताराम), 'यमपुर की यात्रा' (राधाचरण गोस्वामी), 'आप' (प्रतापनारायण मिश्र) आदि निबन्ध इस बात के प्रमाण हैं।

इस युग के निबन्धों में निबन्धता नहीं है, उद्देश्य या विषय की एकतानता नहीं है। 'राजा भोज का सपना' में शिक्षा भी है, हास्य भी है। तोताराम के 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में हास्य, व्यंग्य और शिक्षा एक साथ है। कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है। पाठशालाओं के चन्दा-संग्रही, पुलिस, कचहरी आदि जो कोई भी दाएँ-बाएँ मिला है उसी पर व्यंग्य बाण छोड़ा गया है। 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' में भारतेन्दु ने समाज की अनेक कुरीतियों पर आक्षेप किया है।

हिन्दी-गद्य के विकास के समानान्तर ही पत्र-पत्रिकाओं ने निबन्ध लेखन को प्रोत्साहन दिया। 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में 'कलिराज की सभा' (ज्वालाप्रसाद), 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' (तोताराम), आदि निबन्ध मनोरंजक और गंभीर विषयों पर प्रकाशित हुए। 'सार-सुधानिधि' में प्रकाशित 'यमपुर की यात्रा', 'मार्जार-मूषक', 'तुम्हें क्या', 'होली' 'शैतान का दरबार' आदि में तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक दशाओं की मार्मिक व्यंजना हुई है। 'आनन्द कादम्बिनी' में 'हमारी मसहरी', जैसे मनोरंजक और 'हमारी-दिन-चर्या'-सरीखे भावात्मक निबन्धों के दर्शन होते हैं। विनोद-प्रिय 'ब्राह्मण' ने विविध विषयों पर 'घूरे के लत्ता बीने, कनातन के डौल बाँधे', 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'बृद्ध 'भौ' आदि निबन्ध प्रकाशित किए। 'भारत-मित्र' ने 'शिव-शम्भु का चिट्ठा' में रमणीय और सक्षम भाषा में विदेशी शासन पर खूब फबतियाँ कसीं। स्पष्टवादी और तर्कशास्त्री 'हिन्दी-प्रदीप' की देन औरों की अपेक्षा अधिक है उसमें प्रकाशित साहित्य जन समूह के

हृदय का विकास है', शब्द आदि समीक्षात्मक तथा साहित्यिक, 'माधुर्य' 'आशा' आदि मनोवैज्ञानिक तथा विश्लेषणात्मक एवं 'श्री शंकराचार्य' और 'गुरु नानक देव' आदि विवेचनात्मक निबन्ध किसी अंश तक महत्वपूर्ण है।

भारतेन्दु-युग ने गद्य-निबन्धों के साथ पद्य-निबन्धों का भी सूत्रपात किया। हरिश्चन्द्र ने 'अङ्गरेज राज सुख साज सजे अति भारी' जैसे इतिवृत्तात्मक पद्य तो लिखे परन्तु पद्य निबन्धों की ओर प्रवृत्त न हुए। उनके अनुयायी प्रतापनारायण मिश्र ने 'बुढ़ापा', 'गोरक्षा' 'क्रन्दन' आदि की रचना-द्वारा इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। भारतेन्दु-युग के उपदेशक, सुधारक और प्रचारक निबन्धकारों की कृतियों में विषय की व्यापकता, शैली की स्वच्छन्दता, व्यक्तित्व की विशिष्टता, भावों की प्रवणता, लक्षणा तथा व्यंजना की मार्मिकता और भाषा की सजीवता होते हुए भी निबन्ध-कला का सर्वथा अभाव है। ये निबन्ध पत्रिकाओं में सर्वसाधारण के लिये लिखित लेखमात्र हैं। उनकी एकमात्र महत्ता उनकी नवीनता में है। भावों और विचारों के ठोसपन और भाषा की सुगठन के अभाव के कारण ये निबन्ध की मान्यकोटि में नहीं आ सकते।

भारतेन्दु के हिंदी-नाटक-क्षेत्र में पदार्पण करने के पूर्व गिरिधर दास ने १८५६ ई० में पहला वास्तविक नाटक 'नहुष' लिखा था। १८६८ ई० में भारतेन्दु ने चौर कवि-कृत 'विद्या सुन्दर' के बंगला अनुवाद का हिंदी रूपान्तर प्रस्तुत किया। इस युग के निबंधकारों और कहानी लेखकों ने भी अपनी रचनाओं में नाटकीय कथोपकथन का प्रयोग किया था। 'हरिश्चन्द्र-मैगजीन, में प्रकाशित 'यूरोपीय के प्रति भारतीय के प्रश्न' 'बसंत पूजा' आदि में प्रयुक्त संवाद मनोहर हैं। 'कीर्ति केतु' (लोताराम) 'लवंगी' (श्री निवासदास) आदि नाटक पहले पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए थे।

हिंदी-साहित्य में दृश्य काव्य का अभाव भारतेन्दु को बहुत खला। उन्होंने अपने अनूदित 'पाखंड-विडंबन' 'धनंजय-विजय' 'कर्पूर-मंजरी' 'मुद्राराक्षस' 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'भारत-जननी' तथा मौलिक 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' 'चन्द्रावली' 'विषस्य-विषमौषधम्' 'भारत-दुर्दशा' 'नील-देवी' 'अंधेर-नगरी' प्रेम-जोगिनी' (अपूर्ण) और 'सती-प्रताप' (अपूर्ण) की रचना-द्वारा इस रिक्त भांडार को भरने का प्रयास किया। इन नाटकों में देश, जाति, समाज, संस्कृति, धर्म, भाषा और साहित्य की तत्कालीन अवस्था के यथार्थ दृश्य उपस्थित किये गये है।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में भारतेन्दु को देखा देखी रों की एक श्रृंखला

सा ... ... तनामचरण' प्रह्लाद-चरित्र' रणधीर प्रेम मोहिनी' और सजनिता-स्वयंवर' के लेखक श्री निवास दास 'सातोहरण' रणमगी-चरण' रामलीला' कंसवध' नन्दोत्सव' 'लक्ष्मी सरस्वती-मिलन', 'प्रचंड-गोरक्षण', 'बाल-विवाह', और 'गोबध-निषेध' के रचयिता देवकी नन्दन त्रिपाठी, 'सिन्ध देश की राजकुमारियाँ', 'गन्नौर की रानी,' 'लव जी का स्वप्न' और 'बाल-विधवा-सन्ताप' नाटकों के निर्माता काशीनाथ खत्री, 'उषाहरण' के कर्ता कार्तिक प्रसाद खत्री, 'दुःखिनी-बाला', 'पद्मावती'. 'धर्मालाप' और 'महाराणा प्रताप' के विधायक राधाकृष्ण दास, 'बाल-विवाह' और 'चन्द्रसेन' के रचनाकार बालकृष्ण भट्ट, 'ललितानाटिका,' 'गोसंकट' और 'भारत सौभाग्य' के लेखक अम्बिकादत्त व्यास, 'सुदामा,' 'सती चन्द्रावली.' 'अमरसिंह राठौर,' 'तन मन धन श्री गोसाई जी के अर्पण' और 'बूढ़े मुंह मुंहासे' के रचयिता राधाचरण गोस्वामी, 'भारत-सौभाग्य,' 'प्रयाग-राम-गमन' और 'वारांगना रहस्य महानाटक' के निर्माता बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', 'संगीत-शाकुन्तल', 'भारत-दुर्दशा' और 'कलि-कौतुक' के कर्ता प्रताप नारायण मिश्र, मीराबाई और नन्दविदा' के विधायक बलदेव प्रसाद मिश्र, विवाह-विडंबन' के रचनाकार लोताराम वर्मा आदि नाटककारों ने बहु विषयक नाटकों की सृष्टि की। समाज राजनीति, इतिहास पुराण, प्रेमाख्यान आदि सभी में कथा वस्तु लेकर इन साहित्यकारों ने मुक्तहस्त से लेखनी चलाई।

नाट्य-कला की दृष्टि से श्रेष्ठ न होते हुए भी इन नाटकों का ऐतिहासिक महत्व है। भारतेन्दु ने नाटक, नाटिका, प्रहसन, भाण आदि की रचना तो की परन्तु संस्कृत-रूपकों का अन्धानुकरण नहीं किया। उनके नाटकों में प्राच्य और पाश्चात्य नाटक-शैली का सम्मिश्रण है। बोलचाल की भाषा का प्रयोग नाटकीय कथोपकथन के सर्वथा अनुकूल है। शैली की दृष्टि से श्री निवासदास ने भारतेन्दु का बहुत कुछ अनुगमन किया। भारतेन्दु-मंडल ने नाटकों के अभिनय की भी व्यवस्था की। काशी, प्रयाग,कानपुर आदि नगरों में नाटक-मंडलियों की स्थापना हुई।

भारतेन्दु और श्रीनिवासदास के उपरांत हिन्दी नाटक-संसार में अंधकार छा गया। भारतेन्दु के पश्चाद्गामी नाटककार नाट्य-शास्त्र से अनभिज्ञ थे। हिन्दी का अपना रंग-मंच था ही नहीं। पारसी नाटक कम्पनियों का आकर्षण दिन दिन बढ़ता जा रहा था। ज्ञान-विज्ञान की तीव्र प्रगति और बहुमुखी आन्दोलनों के कारण लेखकों में कलाकार की तन्मयता भी असम्भव थी। उपदेश, सुधार, प्रचार और तर्क की भावना से अभिभूत लेखक नाट्य ... के और भी अयोग्य सिद्ध हुए उन्होंने रंग-मंच पर पात्रों के कथोपकथन

और अंग विन्यास में हा नाटय कला की इति श्री समझ ली अशुद्ध और अटपट भाषा की दशा और भी शोचनीय थी भारतेन्दु की भाषा की त्रुटियों तो किसी प्रकार सह्य है, परन्तु केशवराम भट्ट की शैली उर्दू या 'प्रेमघन'-रचित 'भारत-सौभाग्य' में उर्दू, मारवाड़ी, भोजपुरी, पंजाबी, मराठी, बंगला आदि की विचित्र और अस्वाभाविक खिचड़ी अत्यन्त बेसबाड़ी हास्यास्पद है। आज के सिनेमाघरों की भाँति तत्कालीन पारसी थिएटरों ने जनता को बरबस अपनी ओर खींच लिया था। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रद्युम्न-विजय व्यायोग' और 'रुक्मिणी-परिणय' तथा रामकृष्ण वर्मा ने अपने अनुवादों द्वारा नाट्य-कला का पुनरुत्थान करने का प्रयास किया, परन्तु सफलता न मिली। हिन्दी-पाठकों और अभिनय-दर्शकों की रुचि इतनी भ्रष्ट हो चुकी थी कि उसका परिष्कार न हो सका।

हिन्दी-कथा-साहित्य का प्रारम्भिक क्रम १९ वीं शती के प्रथम दशाब्द में इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' 'लल्लू लाल की 'सिंहासन-बत्तीसी', 'बैताल-पचीसी', 'माधवानल-काम-कन्द-कला', 'शकुन्तला' और 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र के 'नासिकेतोपख्यान' से ही चल चुका था। फोर्ट-विलियम कालेज में गिल-क्राइस्ट की अध्यक्षता में प्रारम्भ अनुवाद-कार्य संस्कृत और फारसी के आख्यानों तक ही सीमित रहा। पौराणिक धार्मिक कथाएँ 'शुक-बहत्तरी', 'सारंगासदाबृक्ष', 'किस्सा-तोता-मैना', 'किस्सा साढ़े तीन यार' तथा फ़ारसी-उर्दू में गृहीत 'चहार-दर्वेश' 'बागोबहार' 'किस्सा हातिमताई' आदि रचनाएँ कहानी-प्रेमियों के हृदय पर अधिक काल तक शासन न कर सकीं। इन रचनाओं में न साहित्यिक सौंदर्य था न जीवन की व्यापकता। कथा-साहित्य के प्रसार और प्रचार में पत्रिकाओं ने भी योग दिया। 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' में 'मालती', 'हिन्दी-प्रदीप' में 'घढ़े-लिखे बेकार की नकल', 'भारसुधा-निधि' में 'तपस्वी', 'भारतेन्दु' में 'अकलमंद' आदि कथाएं प्रकाशित हुईं।

भारतेन्दु-युग आधुनिक लघु कहानियों की कल्पना न कर सका और न तो उसमें उपन्यास-कला का विकास करने की ही शक्ति थी। 'कलिराज की सभा' 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', 'राजा भोज का सपना', 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन', 'यमलोक की यात्रा' आदि रचनाओं में कहानी और उपन्यास के मूल तत्व अवश्य विद्यमान थे। निबन्धों और नाटकों की लोकप्रियता ने हिन्दी साहित्यकारों को उसी ओर आकृष्ट किया। कथा-साहित्य के अनुकूल वातावरण ने उसकी रचना आगामी युग के लिये स्थगित कर दी।

अन्य [illegible] की सुन्दर कथावस्तु मनोहरमभाषण, भावनाओं की

मार्मिकता और आत्मक शैली ने हिन्दी लेखक को प्रभावित किया सबप्रथम भारतेन्दु का मराठी से अनूदित पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' प्रकाशित हुआ तदनन्तर बंगला से भारतेन्दु ने 'राजसिंह', राधाकृष्णदास ने 'स्वर्णलता', 'पतिव्रता अबला', 'मरता न क्या करता ?', और 'राधारानी', गदाधर सिंह ने 'दुर्गेशनन्दिनी' और 'वंग विजेता', किशोरीलाल गोस्वामी ने 'दीप-निर्वाण' और 'विरजा' बालमुकुन्द ने 'मडेलमगिनी', प्रतापनरायण मिश्र ने 'राजसिंह', 'इंदिरा', 'राधारानी', 'युगुलागुलीय' और 'कपाल-कुंडला', कार्तिकप्रसाद खत्री ने 'इला', 'प्रमीला', 'जया', 'कुलटा', 'मधुमालती' और 'दलित कुसुम' तथा अन्य लेखकों ने और भी अनेक अनुवाद किये। अँगरेजी की 'लेम्बूसटेल्स फ्राम शैक्सपियर' का काशीनाथ खत्री और 'ओथेलो' का गदाधरसिंह ने अनुवाद किया। अँगरेजी से किए गए अन्य अनुवादों में रामचन्द्र वर्मा के 'अमला-वृत्तांत-माला', 'संसार-दर्पण', 'ठग-वृत्तांत-माला' और 'पुलिस वृत्तांतमाला' एवं संस्कृत से अनूदित उपन्यासों में गदाधर सिंह का 'कादंबरी और काशीनाथ का 'चतुरसखी' उल्लेखनीय हैं। स्वरूपचन्द जैन ने मराठी और रामचन्द्र वर्मा ने उर्दू उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किए।

हिन्दी-साहित्य में उपन्यासों की आँधी भारतेन्दु के उपरान्त आई। देश के राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक आदि आन्दोलनों ने उपन्यास-लेखकों को भी प्रभावित किया। बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' (८६) तथा 'सौ अजान और एक सुजान' में, किशोरीलाल गोस्वामी के 'त्रिवेणी' (८८) 'स्वर्गीय कुसुम' (८६) 'हृदय-हारिणी' (६०), 'लवंगलता' (६०) और 'सुन्दरी' (६१), राधाचरण गोस्वामी के 'विधवा विपत्ति' (८८), राधाकृष्ण दास के 'निस्सहाय हिन्दू' (६०), गोपालराम गहमरी के 'नये बाबू' (६४), 'बड़ा भाई' (६८) और 'सास पतोहू' (६८), कार्तिकप्रसाद खत्री के 'दीनानाथ' तथा मेहता ज्वालाराम शर्मा के 'स्वतंत्र रमा' और 'परतंत्र-लक्ष्मी' (६६) एवं 'धूर्त रसिकलाल' (६६) आदि उपन्यासों में नीति, शिक्षा, समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, रति, पराक्रम आदि के विविध चित्र अंकित किए गए। 'त्रिवेणी' में सनातन धर्म की श्रेष्ठता और अन्य धर्मावलंबियों के धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आक्रमणों से आत्मरक्षा करने का आदेश, 'स्वर्गीय-कुसुम' में देवदासी प्रथा की निन्दा, 'लवंगलता' और 'कुसुम कुमारी' में वीरांगनाओं की वीरता, 'निस्सहाय-हिन्दू' में मुसलमानों के धार्मिक अत्याचार, हिन्दुओं की दुर्दशा और अँगरेजी शासन के गुण-गान तथा गहमरी के उपन्यासों में भारतीय जीवन और उस पर पड़ते हुए विदेशी संस्कृति के कुप्रभावों का निर्दशन है।

भारतीय जीवन की शुद्ध और सरल भूमिका में रचित इन में आधु

नैतिकता, धार्मिकता, सुधार, उपदेश आदि लोक-कल्याण-कारण बहुत कुछ है; परन्तु उपन्यास-कला का अभाव है। घटनाओं के संग्रह और त्याग, कथा की वस्तुयोजना, पात्रों का चरित्र-चित्रण कथोपकथन और संख्या, भावनाओं के विश्लेषण, भाषा के प्रयोग और शैली, रस-परिपाक आदि में कहीं भी सौंदर्य नहीं है। 'निस्सहाय हिन्दू' जैसे उपन्यासों में ढीले ढाले कथानक के बीच पात्रों का अतिशय बाहुल्य अथवा 'सौ अजान और एक सुजान' में नाटकों का सा स्वागत एवं प्रकट भाषण, पत्रानुसार विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग, 'कादंबरी' की सी आलंकारिक शैली आदि बातें आज उपन्यास-कला की दृष्टि से हेय समझी जाती हैं। रति की एकांगी परिधि के अन्तर्गत घिरे हुए प्रेम-प्रधान उपन्यासों की सजीवता, उनमें व्यापक जीवन की समस्याओं का निरूपण न होने के कारण नष्ट सी हो गयी है।

किशोरीलाल गोस्वामी और देवकीनन्दन खत्री ने तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का जो बीज बोया उसे अंकुरित और पल्लवित होते देर न लगी। 'स्वर्गीय कुसुम', 'लवंगलता', 'प्रणयिनी-परिणय', 'कटे मुंड की दो बातें', 'चतुरसखी', 'सच्चा सपना', 'कमलिनी', 'दृष्टांत-प्रदीपिनी', 'चन्द्रकांता' और 'चन्द्रकान्ता-संतति', 'नरेन्द्र-मोहिनी', 'कुसुम-कुमारी', 'वीरेन्द्र-वीर', सुन्दर-सरोजिनी', 'वसन्त-मालती', 'भयानक भेदिया', 'प्रवीण पथिक', 'प्रमीला' आदि रचनाओं ने एक जाल सा बुन दिया। कहीं घोड़ी को सरपट दौड़ाने वाले अवगुंठित अश्वारोही, कहीं तांत्रिक देवी और जादू के चमत्कार, कहीं नायक नायिकाओं के अद्भुत शौर्य और प्रेम का सम्मिश्रण, कहीं प्रेमियों के विचित्र षड्यन्त्र और कहीं जासूसों के भयानक हथकंडे पाठकों के मन को अभिभूत कर लेते हैं।

जीवन से दूर, कल्पना की उपज और घटना-वैचित्र्य-प्रधान इन उपन्यासों में मानव-सहज भावों और चरित्रों का चित्रण नहीं है। लेखक के कथन की धकधकाहट के बीच यत्र-तत्र प्रेमालाप और षड्यन्त्र-रचना में प्रयुक्त पात्रों के कथोपकथन अस्वाभाविक और प्राणहीन हैं। पात्रों के चरित्र का विश्लेषण या उनके मानसिक पक्ष की समीक्षा नहीं है। ये शल्य-स्थित उपन्यास वैज्ञानिक-युग के साहित्यिकों की तुष्टि न कर सके। १८९८ ई० में किशोरीलाल गोस्वामी ने 'उपन्यास' पत्र निकाल कर उपन्यासों की दीनावस्था को सुधारने का उद्योग किया परन्तु उनके भगीरथ-प्रयत्न करने पर भी गंगा धरती पर न आई।

हिन्दी-साहित्यकारों ने बहुत समय तक आलोचना की ओर ध्यान नहीं दिया। रचनात्मक साहित्य की कमी और पथ के अनुपयुक्त माध्यम के कारण समालोचना को तनिक भी

प्राप्त्साहन नहीं मिला हिंदी साहित्य केवल कवितामय था केशव और उनके अनुवर्ती कवियों ने संस्कृत काव्यालोचन के आधार पर काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की कवियों और उनकी कृतियों की आलोचना के नाम पर लोक-प्रचलित कतिपय सूक्तियों की ही सृष्टि हुई—

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशव दास।
कलि के कवि खद्योत सम जँह तँह करहिं प्रकास॥
मतमैवा के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं बाव करैं गम्भीर॥

'भक्तमाल' ने एक प्रकार से परिचयात्मक समालोचना का सूत्रपात किया था। १९ वीं शताब्दी में देश विभिन्न हलचलों और पत्र-पत्रिकाओं के विस्तार आदि के कारण लिखित खण्डन-मण्डन का विशेष प्रचार हुआ। यह धार्मिक-ग्रंथों से चलकर पत्र-पत्रिकाओं और साहित्यक लेखकों तथा रचनाओं तक आई। १८३९ ई० में गार्सां द तासी ने 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास' और १८८३ ई० में शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह-सरोज' में हिन्दी के पुराने कवियों का इतिवृत्त-संग्रह लिखा। भारतेन्दु-युग के लेखों में आलोचना का आरंभिक रूप अवश्य दिखाई पड़ता है परंतु उनमें वास्तविक आलोचना का कोई तत्व नहीं है। ग्रंथकारों के गुण-दोष-दर्शन में भी विवेचना का सर्वथा अभाव है।

हिंदी साहित्य में आलोचना का वास्तविक आरम्भ बालकृष्ण भट्ट और बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने किया। १८८५ ई० में गदाधर सिंह ने 'आनन्द कादंबिनी' में 'बंग-विजेता' के अनुवाद की आलोचना लिखी। १८८६ ई० में बालकृष्ण भट्ट ने श्री निवास दास के 'संयोगिता-स्वयंवर नाटक की सच्ची समालोचना' प्रकाशित की। उसी वर्ष प्रेमघन ने अपने पत्र 'आनंद-कादंबिनी' में इक्कीस पृष्ठों में उसकी विस्तृत समालोचना की। सन् १८८९ ई० में डा० ग्रियर्सन का 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ नार्दर्न हिंदुस्तान' प्रकाशित हुआ। १८९३ ई० में नागरी-प्रचारिणी-सभा की स्थापना हुई और उसी वर्ष 'नागरी दास का जीवन-चरित' लेख का पाठ हुआ। १८९६ ई० में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने 'समालोचना' नामक पुस्तिका लिखी।

१८९७ ई० में 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। उसी वर्ष उसमें जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का पद्यात्मक 'समालोचनादर्श' और अम्बिकादत्त व्यास का 'ग्रंथ मीमांसा' लेख प्रकाशित हुए आधुनिक की विशेषताएँ न होते हुए भी इसमें

अध्ययन और गवेषणा की गम्भीरता है। कवियों और लेखकों के मार्ग-प्रदर्शन और गुण-दोष दर्शन की दृष्टि से इन आलोचनों का प्राग्द्विवेदी युग में विशेष महत्व है। हिन्दी-आलोचना के प्रारम्भिक युग में पत्र-सम्पादकों ने उल्लेखनीय कार्य किया। उस काल की बहुत कुछ आलोचनात्मक सामग्री 'हिन्दी-प्रदीप', 'आनन्द-कादम्बिनी' और 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' में बिखरी पड़ी है। बालकृष्ण भट्ट ने समय समय पर अपने 'हिन्दी-प्रदीप' में संस्कृत साहित्य और कवियों की परिचयात्मक आलोचना प्रकाशित की, आलोच्य पुस्तकों का विस्तृत गुण दोष विवेचन किया। तत्कालीन आलोचनाओं में अनावश्यक विस्तार और ढीलापन है,

'समालोचना'[1] पुस्तक में विदित है कि आरम्भिक आलोचकों ने कुछ ठीक ठिकाने का कार्य किया पर आगे चलकर आलोचना खिलवाड़ या व्यवसाय के साधन की वस्तु समझी जाने लगी। आलोचक लेखकों के राग या द्वेषवश गुणमूलक या दोषमूलक आलोचना करने लगे। परस्पर प्रशंसा या निन्दा के लिए दलबन्दी होने लगी। पुस्तक के स्थान पर लेखक ही आलोचना का लक्ष्य बन गया। आलोचनाओं का उद्देश्य होने लगा ग्रन्थकर्ताओं का उपहास, आलोचक का विनोद अथवा सस्ता नाम कमाने के लिए विद्वत्ता-प्रदर्शन। कभी कभी तो समालोचक महाशय पुस्तक कागज और छापे की प्रशंसा करके मूल्य पर अपनी सम्मति मात्र दे देते थे। रचना के गुण-दोषों की विवेचना के विषय में या तो मौन धारण कर लेते थे या अत्यन्त प्रकट विषयों पर दो चार प्रशंसा के शब्द कह कर सन्तोष कर लेते थे। वास्तव में उन्हें समालोचना के निश्चित अर्थ, उद्देश्य और आदर्श का ज्ञान ही नहीं था।

१८५७ ई० के पहले देशी भाषा के पत्रों पर कोई सरकारी प्रतिबन्ध नहीं था। तथापि 'उदन्त-मार्तंड' (१८२६ में २८ ई०), 'बनारस अखबार' (१८४५ ई०), 'सुधाकर' (१८५० ई०), 'साम्यदन्त मार्तण्ड' (१८५०-५१ ई०), 'समाचार सुधावर्षण' (१८५४ ई०) आदि कुछ ही पत्रों का उल्लेख मिलता है। "बनारस-अखबार" की भाषा मुख्यतः उर्दू थी। कहीं कहीं हिन्दी शब्दों का प्रयोग था। उसकी भाषा-नीति के प्रतिकार रूप में ही 'सुधाकर' का प्रकाशन हुआ। सर्व प्रथम हिन्दी दैनिक-पत्र "समाचार-सुधा-वर्षण" में मुख्य मुख्य विषय तो हिन्दी में थे परन्तु व्यापार-समाचार बंगला में।

दैनिक द्वारा पत्रकारों की स्वाधीनता छिन जाने पर भी भारतेन्दु आदि ने पत्र-पत्रिकाओं का समुचित निर्वाह किया। सन् १८६८ ई० में उन्होंने 'कवि-वचन-सुधा' निकाली[1]। उसमें

१ उसके मुख पृष्ठ पर मुद्रित सिद्धान्त वाक्य था

साहित्य, समाचार हास्य, यात्रा ज्ञान विज्ञान आदि अनेक विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे सम्पादन कला में उस प्रारम्भिक युग में भारतेन्दु की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और वस्तु योजना की मौलिकता एवं कुशलता सर्वथा श्लाघ्य है। अपनी लोकप्रियता के कारण वह पत्रिका मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक हो गई। आरंभ में उसमें प्राचीन और नवीन कविताएँ छपती थीं परन्तु कालान्तर में उसका रूप राजनैतिक हो गया। १८८० ई० में 'कवि-वचन-सुधा' में 'मर्सिया' नामक पंच छपा। झूठे निन्दकों की बात में आकर सर विलियम मुइर ने उसे अपना अपमान समझा और पत्रिका की सरकारी सहायता बन्द कर दी। क्रमशः उसका पतन होता गया और १८८५ ई० में प० चिन्तामणि के हाथों उसकी अन्त्येष्टि क्रिया हुई।

१८७२ ई० में 'हिन्दी-दीपक-प्रकाश' और 'विहार-बन्धु' प्रकाशित हुए। १८७३ ई० में भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र-मेगज़ीन' निकाली[1]। वह पत्रिका भी मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक हुई। उसमें भाषा-सम्बन्धी आन्दोलन की विशेष चर्चा रहती थी। हिन्दी और अँगरेज़ी दोनों भाषाओं में लेख छपते थे। अधिकांश कविताएँ ब्रजभाषा की होती थीं और संस्कृत-रचनाओं को भी स्थान मिलता था। हिन्दी-गद्य का परिष्कृत रूप पहले पहल उसी पत्रिका में प्रकट हुआ। नवें अंक से, १८७४ ई० में, उसने 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' नाम धारण किया। एजुकेशन डाइरेक्टर कैम्पसन ने उसमें प्रकाशित 'कवि-हृदय-सुधाकर' शीर्षक उपदेशात्मक और उपयोगी यती-वेश्या-संवाद को अश्लील कहकर सरकारी सहायता बन्द कर दी। ठीक समय पर प्रकाशित न होने के कारण उसकी अत्यन्त दुर्दशा हुई। १८८० ई० में 'मोहन-चन्द्रिका' के साथ मिला दी गई। १८८१ ई० में 'विद्यार्थी' भी इसी में सम्मिलित हो गया। उसी वर्ष उनके अनुज ने उसका पुनः प्रकाशन आरम्भ किया परन्तु शीघ्र ही मोहन-लाल पंड्या की क़ानूनी कार्यवाही के कारण वह समाप्त हो गई। १८७४ ई० में भारतेन्दु ने तीसरी पत्रिका 'बालबोधिनी' निकाली थी। 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के साथ ही उसकी सहायता

खल जनन सों सज्जन दुखी मत होंहि हरि पद मति रहै।
उपधर्म छूटै सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै।
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होइ जग आनन्द लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृत बानी सब कहै।

१ उसके मुख पृष्ठ पर ही अँगरेज़ी में उसकी रूप रेखा अंकित की गई—

"A monthly journal published in connection with the Kavivachan sudha containing articles on literary, scientific, political and Religious subjects antiquities reviews dramas history novels poetical selections gossip humour and wit

भी बन्द हो गई। तदनन्तर पत्रिका का भी अन्त हो गया।

भारतेन्दु के पत्रिका-प्रकाशन-सम्बन्धी सदुद्योग में उन विषम परिस्थितियों में भी लेखकों का एक अच्छा संघ स्थापित हो गया। उनकी दृढ़ता और स्वाभिमान ने हिन्दी-लेखकों के हृदय में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। जन साधारण भी हिन्दी-सेवा की ओर ध्यान देने लगे। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ। खेद है कि संपादकों ने अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व से अनभिज्ञ होने के कारण जनता की रुचि की अवहेलना करके अपनी ही रुचि को प्रधानता दी और अपने ही सिद्धांतों को पाठकों पर बलात् लादने का प्रयास किया। भारतेन्दु इस त्रुटि को पहिचानते थे। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं में राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि विविध-विषयक रचनाओं को स्थान दिया।

'प्रेमविलासिनी', 'सदादर्श' (१८७४ ई०), 'काशी पत्रिका' (१८७६ ई०), 'भारत-बन्धु' (१८७६ ई०), 'मित्रविलास' (१८७७ ई०), 'आर्यदर्पण' (१८७७ ई०), आदि पत्रों ने न्यूनाधिक प्रचार के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। 'हिन्दी प्रदीप' (१८७७ ई०) ने अपने विविध विषयक लेखों-द्वारा हिन्दीगद्य के उत्थान में विशेष योग दिया। 'भारत मित्र' (१८७७ ई०), राजनीति-प्रधान पत्र होकर निकला और अपनी जन प्रियता के कारण पाक्षिक से साप्ताहिक हो गया। १८७७ ई० में तत्कालीन जनसाहित्य का प्रतीक 'सार सुधानिधि' प्रकाशित हुआ। वातावरण के अनुकूल भावपूर्ण कविताओं, राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि विषयों के लेखों, पुस्तकालोचन, नाटक, उपन्यासादि के प्रकाशन तथा रोचक और विचारपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणियों ने उसके गौरव को बढ़ा दिया।

वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट द्वारा १८७८ ई० में लार्ड लिटन ने पत्रों की रही-सही स्वाधीनता का अपहरण करके उन्हें विवशता के बन्धन में बाँध दिया। फलस्वरूप चार वर्षों तक पत्र जगत् में कुछ विशेष उन्नति न हो सकी। 'उचितवक्ता' (१८७८ ई०), 'भारतसुदशाप्रवर्तक', (१८७८ ई०), 'सज्जनकीर्तिसुधाकर' (१८७६ ई०), 'क्षत्रियपत्रिका' (१८८१ ई०) 'देशहितैषी' (१८८२ ई०) आदि टिमटिमाते हुए मन्द प्रदीप की भाँति प्रकाश में आए। स्वदेशी प्रचार के आन्दोलन एवं सभासमितियों और व्याख्यानों के कोलाहल में 'आनन्द कादम्बिनी' कविता प्रधान पत्रिका के रूप में आई।[1]

---

१ उसके एक अंक की विषय सूची इस प्रकार है—

सम्पादकीय-सम्मति समीर (सार)

साहित्य सौदामिनी

लार्ड रिपन न (१८८०–८४ ई०) लार्ड लिटन क अ याय का त र क्रम ८८१ ई० ग 'दिनकर प्रकाश', ब्राह्मण', शुभचिन्तक सदाचार मार्तण्ड हिन्दोस्थान भ्रम दिवाकर', 'प्रयाग समाचार', 'कविकुल कंज दिवाकर', 'पीयूष प्रवाह', 'भारत जीवन', 'भारतेन्दु' आदि अनेक पत्रिकाओं का जन्म हुआ। 'ब्राह्मण' की विशेषता थी उसका फक्कड़पन, व्यंग्य और हास्य। 'भारतेन्दु' की सामग्री विविधविषयक और रोचक थी। उसका प्रतिज्ञा-वाक्य था—'कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्'।

भारतेन्दु के उपरान्त 'भारतोदय' (१८८५ ई०), 'धर्म प्रचारक' (१८८५ ई०), 'आर्य सिद्धान्त' (१८८६ ई०), 'अग्रवालोपकारक' (१८८६ ई०), 'कृषिकारक' (१८६० ई०), 'हिन्दीपंच', 'उपन्यास' (१८६८ ई०) आदि प्रकाशित हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उपर्युक्त पत्रों के अतिरिक्त 'हिन्दी-बंगवासी', 'सुदर्शन', 'हितवार्ता', 'वेंकटेश्वर समाचार', 'छत्तीसगढ़मित्र', कान्यकुब्जप्रकाश', 'रसिकपंच', 'काव्यामृतवर्षिणी', 'भारतभानु', 'बुद्धिप्रकाश', 'सुगृहिणी', 'भारतभगिनी', 'साहित्यसुधानिधि' आदि ने उत्तर भारत में पत्रों का एक जाल-सा बिछा दिया।

भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी, किशोरी लाल गोस्वामी आदि अधिकांश हिन्दीलेखक सम्पादक थे। हिन्दी-प्रचारकों, राजनीतिज्ञों, समाज सुधारकों, कट्टरपंथियों आदि ने अपने अपने मतों के प्रतिपादन और प्रचार के लिए ही पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। 'हिन्दोस्थान', 'हिन्दीपंच' आदि राजनैतिक; 'मित्रविलास', 'आर्यदर्पण', 'भारतसुदशाप्रवर्तक', 'धर्मदिवाकर', 'धर्मप्रचारक', 'आर्यसिद्धान्त' आदि धार्मिक; 'अग्रवालोपकारक', 'क्षत्रियपत्रिका', आदि सामाजिक और 'कविवचनसुधा', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण', आनन्दकादम्बिनी' आदि साहित्यिक पत्र थे। असाहित्यिक पत्रों में भी साहित्य का कुछ न कुछ अंश अवश्य रहता था। भूगोल, विज्ञान आदि विशिष्ट विषयों की पत्रिकाओं का अभाव था।

सभी पत्रिकाओं की दशा शोचनीय थी। आर्थिक कठिनाइयों के कारण अधिकांश पत्रों

प्रेरितकलापि कलरव
काव्यामृत वर्षा
हास्यदूर्वांकुर (सार)
प्राप्ति स्वीकार वा समालोचना सांका (सार)
अनुवादाम्बुप्रवाह 'आनन्दकादम्बिनी'
वृष्टा ७ जिल्द (सार) मिर्ज़ापुर चैत्र सं० १९६१

की इतिश्री हो जाती थी, "ब्राह्मण' का मूल्य केवल दो आना था तथापि ग्राहकों से चन्दा माँगते माँगते थककर ही प्रताप नारायण मिश्र को लिखना पड़ा था—

आठ मास बीते जजमान, अब तो करो दच्छिना दान।

जनसाधारण में पत्रपत्रिकाओं के पढ़ने की रुचि नहीं थी। श्रीसम्पन्न जन भी इस ओर से उदासीन थे। सरकार की तलवार भी तनी रहती थी। सम्पादकों के लाख प्रयत्न करने पर भी ग्राहकसंख्या न सुधरती थी। कार्तिक प्रसाद खत्री तो लोगों के घर जाकर पत्र पढ़कर सुना तक आते थे। इतने पर भी उनका पत्र कुछ ही दिन बाद बन्द हो गया। मूल्य अत्यन्त कम और प्रचार का उद्योग अत्यधिक होते हुए भी पत्रों की तीन सौ प्रतियाँ बिकना कठिन हो जाता था। अधिकांश पत्रिकाओं के लिए चार पाँच वर्ष तक की जीवनावधि बहुत बड़ी बात थी।

१९वीं शती के हिन्दी-पत्रों का आकार बहुत सीमित था। 'ब्राह्मण' के पहले अंक[1] में केवल १२ पृष्ठ थे। उसकी लेखसूची इस प्रकार थी—

प्रस्तावना
प्रेरित पत्र—काशीनाथ खत्री
होली—प्रताप नारायण मिश्र
स्थानीय समाचार
विज्ञापन

'हिन्दी प्रदीप' का आकार अपेक्षाकृत बड़ा था। उसके सितम्बर, १८७८ ई० के द्वितीय वर्ष के प्रथम अंक की विषय सूची निम्नांकित है—

	मुख्य पृष्ठ
एक बधाई का मलाल	
प्रेस ऐक्ट के विरोध में हम चुप न रहें	८
पुराने और नए अवध के हाकिम	३
पश्चिमोत्तर के विद्याविभाग में अन्धा-धुन्ध	५
मलाल	६
बंगाल और यहाँ के सुशिक्षित	
सच मत बोलो	६
पेट फूलने और अफरने की बीमारी	६
हम लोगों के दान का क्रम	१२
सभ्यता का एक नमूना	१३

[1] मार्च १८८३ ई०।

चतुर्थ अंक प्रथम गर्भांक[1]	१४
संक्षिप्त-समाचार (स्थानिक)	१५
साधारण समाचार	१६

'हिन्दी प्रदीप' को छोड़ कर अधिकतर पत्र 'ब्राह्मण' जैसे ही थे जिनकी ईदकता और स्थता अतिनिम्न कोटि की थी। पत्रिका की लेख-पूर्ति बहुधा सम्पादक द्वारा ही अपने या अन्य नामों से हुआ करती थी। सामान्य लेखक भी विभिन्न नामों से लेख लिखते थे। प्रचार-प्रधान भावना के कारण लेखों में सार न था। विविध विषयों और लोकप्रवृत्ति की ओर ध्यान देने वाले 'ब्राह्मण' और 'हिन्दी प्रदीप' में भी इतिहास, पुरातत्व, विज्ञान, जीवनचरित आदि पर सुन्दर रचनाओं के दर्शन नहीं हुए।

इन पत्रों की भाषा की तो और भी दुर्दशा थी। एक ही पत्र अलग अलग भाषाओं में कई कालमों में छपता था, उदाहरणार्थ 'धर्म प्रचारक' हिन्दी और बंगला में तथा 'भारतोपदेशक' हिन्दी और संस्कृत में। 'समाचार सुधावर्षण' हिन्दी और बँगला में तथा 'कृषिकारक' हिन्दी और मराठी में अलग अलग प्रकाशित होते थे। उनके भाषा प्रयोग मनमाने होते थे। व्याकरण की शुद्धि की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता था। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' का नाम और मुख पृष्ठ पर उसका विवरण तक अँगरेजी में थे। 'ब्राह्मण' में स्थान स्थान पर कोष्ठक में (education national vigour and strength, character) आदि अँगरेजी शब्दों का प्रयोग मिलता है। फ़ारसी-अरबी के शिकरों के साथ ही साथ 'यावत मिथ्या' और 'दरोग की किल्लेगाह' जैसे विचित्र प्रयोगों का भी दर्शन होता है। 'आनन्द-कादम्बिनी' सम्पादक प्रेमघन अपने ही उमड़ते हुए विचारों और भावों को व्यक्त करने के लिए, समाचार तक अलंकृत भाषा में छापते थे।[2] 'भारतेन्दु' और 'आनन्द कादम्बिनी' के शीर्षक तक सानुप्रास रूपक के रूप में होते थे, यथा सम्पादकीय सम्मतिसमीर, हास्य-

---

१. किसी नाटक का जिसका नाम नहीं दिया।

२ उनके सम्पादकीय सम्मतिसमीर का एक झोंका इस प्रकार है—

"आनन्दकन्दनन्दनन्दन और श्री वृषभानुनन्दिनी की कृपा से आनन्दकादम्बिनी के द्वितीय प्रादुर्भाव का प्रथम वर्ष किसी प्रकार समाप्त हो गया और आज द्वितीय वर्ष के आरम्भ के शुभ अवसर पर हम उस जुगुल जोड़ी के चरणकमलों में अनेकानेक प्रणाम कर पुनः आगामि वर्ष को सकुशल पूर्ण साफल्य प्राप्ति पूर्वक परिसमाप्ति की प्रार्थना करने में प्रवृत्त हुए हैं।"

—'आनन्दकादम्बिनी'
मिर्जापुर चैत्र सं० १९२१

हारताकुर विज्ञापन-बार-बहनिया आदि उपयुक्त पत्रिकाओं के आकार प्रकार में सब कमी थी रचनाओं में गम्भीरता या ठोसपन न था अन्तर्योजना और सम्पादकीय दृष्टिकोण सुषमा और सुन्दरता में शून्य थी। इनमें मनोरंजन का साधन तो था परन्तु ज्ञानवर्धन की सामग्री बहुत कम थी।

१८९७ ई० में 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' ने हिन्दी-संसार में एक स्वर्णयुग का आरम्भ किया। उसमें साहित्य, समालोचना, इतिहास आदि पर गम्भीर, गवेषणात्मक और पाण्डित्य-पूर्ण लेख प्रकाशित हुए तथापि हिन्दी में ऐसी पत्रिकाओं का अभाव बना रहा जिनमें साहित्य, इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, विज्ञान आदि विषयों पर उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक लेख तथा कविता, कहानी, आलोचना, विनोद आदि सब कुछ हो और जो हिन्दी के अभावों की सांगोपांग यथायथ पूर्ति के साथ ही साथ पाठकों और लेखकों को समानरूप से लाभान्वित कर सके। ऐसे योग्य सम्पादकों की आवश्यकता बनी रही जो निःस्वार्थ भाव से अपनी समस्त साधना द्वारा उपर्युक्त उद्देश्य को सिद्ध करके विपन्न हिन्दी को सम्पन्न बना सके।

इसी उद्देश्य-पूर्ति की प्रतिज्ञा लेकर सरस्वती (१९०० ई०) नई सज-धज से हिन्दी-जगत में आई, परन्तु प्रथम तीन वर्षों तक अपना कर्तव्यपालन न कर सकी।

काव्य और तत्सम्बन्धी विषयोंके अतिरिक्त इतिहास, विज्ञान, समाजनीति, धर्म, राजनीति पुरातत्व आदि को भारतेन्दुयुग के साहित्यकारों ने साहित्य की सीमा से बाहर की वस्तु मान कर उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। भारतेन्दु ने 'काश्मीर कुसुम',[1] 'बादशाह दर्पण' लिख कर इतिहास की ओर और 'जयदेव की जीवनी' लिखकर जीवन चरित की ओर हिन्दीलेखकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहा था। काशीनाथ खत्री ने 'भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के चरित्र', 'यूरोपियन धर्मशीला स्त्रियों के चरित्र', 'मातृ-भाषा की उन्नति किस विधि करना योग्य है', आदि अनेक पुस्तिकाएँ तथा लेख लिखे। वास्तव में द्विवेदी जी के पूर्व का विविध-विषयक साहित्य पत्रपत्रिकाओं में लेखों के रूप में ही प्रस्तुत किया गया। राजनीति, समाज, देश, ऋतुछटा, जीवन-चरित, इतिहास, भूगोल, जगत और जीवन से सम्बन्ध रखने वाले 'आत्मनिर्भरता', 'कल्पना' आदि विषय, नागरी हिन्दी प्रचार, हास्यविनोद आदि पर बहु-विषयक रचनाएँ इन्हीं पत्रिकाओं में ही समय समय पर प्रकाशित हुईं। एकाध अपवादों को छोड़कर वे उन्हीं के साथ विलीन भी होती जा रही हैं। इन रचनाओं में ठोसपन और सार, अतएव स्थायित्व नहीं है। इनकी महत्ता बीसवीं शती के विविधविषयक हिन्दी-साहित्य की भूमिकारूप में ही है।

---

१ का कुछ अंश

संसार के इतिहास में उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पश्चिम में कालमार्क्स डारविन, टालस्टाय आदि, भारत में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर दयानंद सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि महान् वैज्ञानिक, समाज सुधारक और साहित्यिक इसी युग में हुए। यह युग वैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के आन्दोलनों का था। चारों ओर सभा समाजों और व्याख्यानों की धूम मची हुई थी। असाहित्यिक आन्दोलनों की चर्चा ऊपर हो चुकी है। हिन्दी साहित्य भी सभासमाजों की स्थापना में अपेक्षाकृत पीछे नहीं रहा। भारतेन्दु ने १८७० ई० में 'कविता-वर्धिनीसभा' और १८७३ ई० में 'तदीय समाज' की स्थापना की। तत्पश्चात 'कविकुल-कौमुदी-सभा'[१], 'हिन्दीउद्धारिणी-प्रतिनिधिमध्य-सभा'[२], 'विज्ञान प्रचारिणी-सभा'[३], 'तुलसी स्मारक-सभा'[४], 'मित्र समाज'[५], 'भाषा संवर्धिनी-सभा'[६], 'कवि समाज'[७], 'मातृ-भाषा प्रचारिणी-सभा'[८], 'नागरी प्रचारिणी-सभा'[९] आदि की स्थापना हुई।

भारतेन्दु के समय में ही हिन्दीप्रचार का उद्योग हो रहा था। कवियों ने भी भाषा और साहित्य की समस्याओं पर कविताएँ लिखीं। उन्होंने हिन्दी का अहित करने वाली उर्दू और अँगरेजी का विरोध किया। १८७४ ई० में भारतेन्दु ने 'उर्दू का स्यापा' कविता लिखी—

भाषा भई उर्दू जग की अब तो इन अन्यन नीर डुबाइए।

१८७७ ई० में उन्होंने हिन्दीवर्धिनी-सभा (प्रयाग) के तत्त्वावधान में 'पद्य में हिन्दी की उन्नति' पर व्याख्यान दिया। तदुपरान्त प्रतापनारायण मिश्र ने 'तृयन्ताम्' (१८९१ ई०) राधाकृष्णदास ने मैकडानेल पुष्पांजलि' (९७ ई०) बालमुकुन्द गुप्त ने 'उर्दू का उत्तर' (१९०० ई०) मिश्रबन्धु ने 'हिन्दी अर्पाल' (१९०० ई०) आदि कविताएँ लिखीं। प० रविदत्त शुक्ल ने 'देवाक्षर चरित्र-प्रहसन' लिखा जिसमें उर्दू की गड़बड़ी के विनोदपूर्ण दृश्य अंकित किए गए। नागरी-प्रचारिणी-सभा के संस्थापक श्यामसुन्दरदास, रामनारायण

---

१. राधाचरण गोस्वामी द्वारा सं० १९३२ में स्थापित।
२ प्रयाग में १८८४ ई० में स्थापित।
३ सुधाकर द्विवेदी द्वारा काशी में स्थापित।
४. सुधाकर द्विवेदी द्वारा स्थापित।
५. कार्तिक प्रसाद खत्री द्वारा शिलांग में स्थापित।
६. अलीगढ़, स्थापक लोकाराम।
७. पटना
८ रांची
९ काशी १८९७ ई०

मिश्र और शिवकुमारसिंह तथा प० गार्गीदत्त, लक्ष्मीशंकर मिश्र, रामदीनसिंह, रामकृष्ण वर्मा गदाधरसिंह आदि ने नागरीप्रचार की धुम मचाई सं० १९५५ में राजा प्रतापनारायण सिंह राजा रामप्रतापसिंह, राजा बलवन्त सिंह, डा० सुन्दरलाल और प० मदनमोहन मालवीय का प्रभावशाली प्रतिनिधिमंडल लाट साहब से मिला और नागरी का मेमोरियल अर्पित किया। मालवीय जी ने 'अदालती लिपि' और 'प्राइमरी शिक्षा' नामक अँगरेजी पुस्तक में नागरी को दूर रखने के दुष्परिणामों की बड़ी ही विस्तृत और अनुसन्धान पूर्ण मीमांसा की। सं० १९५६ में नागरी-प्रचारिणी-सभा ने प्राचीन ग्रन्थों की खोज और कवियों के वृत्तों के प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया। सं० १८५७ में कचहरियों में नागरीप्रचार की घोषणा हो गई, परन्तु बहुत दिनों तक कार्य का रूप न धारण कर सकी। हिन्दीप्रचार का इतना उद्योग होने पर भी लोगों में मातृ-भाषा का का प्रेम न उमड सका। पढे लिखे लोग बोल-चाल, चिट्ठी-पत्री आदि में भी उर्दू या अँगरेजी का प्रयोग करते थे। हिन्दी गँवारू भाषा समझी जाती थी। सरकारी कार्यालयों में भी उसके लिये स्थान न था। घर में और बाहर सर्वत्र ही वह तिरस्कृत थी।[1]

अपरिपक्व हिन्दीगद्य की दशा शोचनीय थी। १८३७ ई० में सरकारी कार्यालयों की भाषा फारसी के स्थान पर अप्रत्यक्ष रूप से उर्दू हो गई। जीविका के लिए लोग देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा का विस्मरण करके अरबी लिपि और उर्दू भाषा सीखते थे। भारतेन्दु के पूर्व एक प्रभावशाली अनुसरणीय नेता के अभाव में हिन्दी के किसी सर्वसम्मत रूप की प्रतिष्ठा न हो सकी। वह हिन्दी का संकटकाल था। उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेजी और प्रारम्भिक का उर्दू था। अपने घर में भी हिन्दी की पूछ न थी। सभ्य कहलाने के लिये उर्दू या अँगरेजी जानना अनिवार्य था केवल हिन्दी जानने वाले गँवार समझे जाते थे। सर सैयद जैसे प्रभविष्णु व्यक्ति उर्दू के समर्थक थे। राजा शिवप्रसाद के सतत उद्योग से हिन्दी प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम हुई। समस्या थी पुस्तकों की। सदासुखलाल के 'सुखसागर' की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊ, इंशाअल्ला की 'रानी केतकी की कहानी'

---

१. "उस समय हिन्दी हर तरफ दीन हीन थी। उसके पास न अपना कोई इतिहास था, न कोष, न व्याकरण। साहित्य का खजाना खाली पड़ा हुआ था। बाहर की कौन कहे स्वयं अपने घर में भी उसकी पूछ और आदर न था। कचहरियों में वह अछूत थी। कालेज में घुसने न पाती थी, स्कूलों में भी एक कोने में दबकी रहती थी। हिन्दू विद्यार्थी भी उससे दूर रहते थे। अँगरेजी और उर्दू में शुद्ध लिखने बोलने में अक्षमर्थ हिन्दी भाषी भी उसे अपनाने में अपनी हेठाई समझते थे। सभा समाजों में भी प्राय उसका अहिष्कार हो था

आज ६ नवम्बर १९२५ ई०

(मुक्त कानपुर

की 'दी लखनऊ' और लल्लूलाल के प्रेमसागर की व्रजमिश्रित थी सदल मिश्र की भाषा में पूर्वीपन और पुरानापन था। ईसाई धर्म प्रचारकों की रचनाएँ साहित्यिक सौन्दर्य से हीन थीं। उनका टूटाफूटा गद्य ग्राम्यप्रयोगों, गलत मुहावरों, व्याकरण की अशुद्धियों; निरर्थक शब्दों, शिथिल और असम्बद्ध वाक्यविन्यास से भरा हुआ था। राजा शिवप्रसाद ने इस अभावपूर्ति के लिए स्वयं और मित्रों द्वारा पाठ्य पुस्तकें लिखी लिखाईं। 'मानव धर्म सार' भूगोल हस्तामलक, आदि कुछ रचनाओं को छोड़कर उन्होंने देवनागरी लिपि में उर्दू का ही प्रयोग किया। हिन्दी का 'गवाँरपन' दूर करने तथा उसको 'फैशनेबुल' बनाने के लिए अरबी फारसी के शब्द भरे। अपने अफसरों के प्रसन्न करने से लिये हिन्दी का गला घोंटा। भाषा के इस विदेशी रूप को ग्रहण करने के लिए समाज तैयार न था। मुं० देवीप्रसाद और देवकीनन्दन खत्री ने सच्ची हिन्दुस्तानी लिखी। भाषा का यह रूप भी साहित्यिकों को न रुचा। प्रतिक्रिया के रूप में राजा लक्ष्मणसिंह विशुद्ध हिन्दी को लेकर आगे बढ़े। उनकी संस्कृतगर्भित भाषा भी कृत्रिम और त्रुटिपूर्ण थी।

भाषा की इस भूमिका में भारतेन्दु ने पदार्पण किया। जनता सरल, सुन्दर और सहज भाषा चाहती थी। गद्य में व्यापक प्रयोग न होने के कारण व्रजभाषा में गद्योपयुक्त शक्ति, सामग्री और साहित्य का अभाव था। खड़ी बोली व्यवहार और ग्रन्थों में प्रयुक्त हो चुकी थी। परन्तु उसका स्वरूप अनिश्चित था। भारतेन्दु ने चलते शब्दों या छोटे छोटे वाक्यों के प्रयोग द्वारा बोल चाल और संवाद के अनुरूप सरल एवं प्रवाहपूर्ण गद्य का बहुत ही शिष्ट और साधु रूप प्रस्तुत किया। भाषा के लिए उन्हें बड़ा ही घोर संग्राम करना पड़ा। १८८८ ई० में 'हंटर कमीशन' के सामने हिन्दीभाषी जनता द्वारा अनेक मेमोरियल अर्पित किए गए। सरकारी अफसरों के सीखने की भाषा उर्दू थी। अतः उनके अधीनस्थ भी उर्दू भक्त थे। गद्य की भाषा पर भी अवधी और व्रजभाषा का प्रभाव था। परंपरागत भाषा का भंडार बहुत ही क्षीण था। वह विकृत, अप्रचलित और प्राचीन शब्दों से पूर्ण तथा कला और विचारप्रदर्शन के योग्य शब्दों से सर्वथा हीन था। भारतेन्दु ने वाङ्मय के विविध अंगों की पूर्ति के लिए चलते, अर्थबोधक और साथ ही सरल गद्य के परिष्कृत रूप की प्रतिष्ठा की। यहीं नहीं, उन्होंने जनभाषा और जनसाहित्य की आवश्यकता को समझा, उपभाषाओं और ग्रामीण बोलियों में भी लोकहितकारी साहित्यरचना का निर्देश किया। आवश्यकतानुसार उन्होंने दो प्रकार की गद्यशैलियों में रचना की। एक सरल और बोलचाल की पदावली यदा-कदा अरबी-फारसी के शब्दों से रंजित है और वाक्य प्रायः छोटे हैं। चिन्तनीय विषयों के विषयानुकूल गाम्भीर्य या माधुर्य से पूर्ण प्रायः समस्त और [illegible] है उन्होंने अप्रचलित शब्दों

का भरसक बहिष्कार किया। शब्दों के अग-भग और तोड मरोड को दूर किया। मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा में सरसता और प्रभावोत्पादकता लाए, परन्तु अँगरेजी या उर्दू से प्रभावित नहीं हुए।

भाषानिर्माण के पथ पर भारतेन्दु अकेले नहीं थे। धर्मप्रचारक दयानन्द सरस्वती ने हिन्दीगद्य को भावाभिव्यंजन और कटाक्ष की शक्ति दी। प्रतापनारायण मिश्र ने स्वच्छन्द गति, बोलचाल की चपलता, वक्रता और मनोरंजकता दी। प्रेमघन ने गद्य काव्य की झलक, आलंकारिकता की आभा, सम्भाषण का अनूठापन और अर्थव्यजकता दी। बालकृष्ण भट्ट ने अपनी चलती, चरपरी, तीखी और चमत्कारपूर्ण भाषा मे, श्रीनिवासदास ने खडी बोली के शब्दों और मुहावरों से, जगमोहनसिंह ने दृश्याकन और भावव्यंजना मे समर्थ, स्निग्ध, संयत, सरल और सोद्देश्य शैली मे तथा तत्कालीन अन्यलेखकों स्वभावतः आनन्दी जीवों, ने अपनी सजीव और मनोरंजक शैलियों द्वारा विपन्न हिन्दी को सम्पन्न बनाने का प्रयास किया।

१९वीं शती के गद्य का उपर्युक्त मूल्याकन उस युग और इतिहास की दृष्टि से है। वस्तुतः इन बातों के होते हुए भी भारतेन्दु-युग ने खडी बोली मे पर्याप्त और उच्चकोटि की रचना नहीं की। उस युग की अशुद्ध और संकर खडी बोली प्राजल, परिष्कृत और परिमार्जित न हो सकी। पद्य में तो ब्रजभाषा का एकच्छत्र राज्य था ही, गद्य को भी उसने और अवधी ने आक्रान्त कर रखा था। दयानन्द, भारतेन्दु आदि लेखकों की कृतियों मे भी प्रान्तीयता की प्रधानता थी। प्रताप नारायण मिश्र इससे बुरी तरह प्रभावित थ। उन्होंने 'घूरे के लत्ता बीनै, कनातन के डौल बाधै', 'खरी बात शहिदुल्ला कहैं, सबके जी ते उतरे रहैं', मुँह बिचकाना', पख निकालना' आदि बैसवाड़ी कहावतों तथा मुहाविरों और 'टेंव', खोखियाना', 'मैतमेत' आदि प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग किया है। जैनेन्द्रकिशोरकृत 'कमलिनी' उपन्यास मे 'नाक बह रही है' के स्थान पर 'नासिका रन्ध्र स्फीत हो रहा है' का प्रयोग हास्यास्पद नहीं तो और क्या है? भीमसेन शर्मा एक पग और आगे बढ गए हैं। उन्होंने उर्दू के दुश्मन', 'सिफारिस', 'चस्मा', 'शिकायत' आदि के स्थान पर क्रमशः 'दुःशमन', 'शिफ्राशिप', 'चक्षमा', 'शिक्षायन्त्र' आदि प्रयोग करके संस्कृत का जननीत्व सिद्ध करने की चेष्टा की है। बालकृष्ण भट्ट आदि ने विदेशी शब्दों को मनमानी अपनाया है। 'अपव्यय या फिजूलखर्ची', 'सोहबत संगत' आदि मे संस्कृत और अरबी फारसी के शब्दों का सपर्याय प्रयोग भाषा की निर्बलता का सूचक है। प्रेमघन की भाषा कहीं ('भारत-सौभाग्य' नाटक आदि मे) उर्दू मिश्रित और कहीं ('आनन्द-कादम्बिनी' मे) संस्कृत-गर्भित, शब्दाडम्बरपूर्ण, दीर्घवाक्यमयी और व्यर्थ

है के पात्रों की अपनी अपनी भाषा बड़ी ही निराली है

यद्यपि बंगला के प्रभाव से हिंदी में कोमलता और अभिव्यंजना शक्ति आ रही थी और अंग्रेजी के प्रभाव से विराम आदि चिह्नों का प्रयोग होने लगा था तथापि यह सब अव्यवस्थित था। इन सबके अतिरिक्त तत्कालीन लेखकों ने व्याकरण-संबंधी दोषों के सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसके रूप में सर्वत्र अस्थिरता और असंयतता बनी रही। 'इनने', 'उनने', इन्हें', 'उन्हें', 'मुझै', 'सक्ती', 'जिस्में', 'परंग', 'चिरौरी', 'माँख', 'खीम' (जेब) 'ब्यारी' (रात्रि का भोजन) आदि प्रयोगों का बाहुल्य बना रहा। भारतेंदु और प्रतापनारायण मिश्र के बाद हिन्दी साहित्य प्रभंजनपीड़ित पतवारहीन नौका की भाँति ऊभचूभ होने लगा। निरंकुश लेखक बगटुट घोड़ों की भाँति मनमानी सरपट दौड़ने लगे। उन्हें न भाषा की शुद्धता का ध्यान रहा न शैली की। सभी की अपनी अपनी तुंबड़ी थी और अपना अपना राग था। हिन्दी-भाषा और साहित्य में चारों ओर अराजकता फैल गई। हिन्दी को अनिवार्य अपेक्षा थी एक ऐसे प्रभविष्णु सेनानी की जो उस अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करके भ्रांत और अनजान लेखकों का पथप्रदर्शन कर सके।

साहित्य की इस ऊबड़खाबड़ पीठिका में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन हुआ। कविता के क्षेत्र में वे विषय, भाव, भाषा, शैली और छन्द की नवीनता लेकर आए। हिन्दी के उच्छृंखल निबन्ध को निबन्धता, एकतानता दी, और पद्य निबन्धों की अभिनव परम्परा को आगे बढ़ाया। नाट्य साहित्य के उस पतनकाल में नाटककारों, पाठकों और दर्शकों को नाट्यकला का ज्ञान कराने के लिए 'नाट्यशास्त्र' की रचना की। तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों के कारण जनता की भ्रष्ट रुचि का परिष्कार करने तथा लेखकों के समक्ष भाषा और भाव का आदर्श उपस्थित करने के लिए आख्यायिकारूप में संस्कृत के अनेक काव्यग्रन्थों का अनुवाद किया। हिन्दी कालिदास और शेक्सपीयर की आलोचना के साथ ही हिन्दी समालोचना-प्रणाली का कायाकल्प किया। हिन्दी में आधुनिक आलोचनाशैली के सूत्रपात का श्रेय उन्हीं को है। सत्रह वर्षों तक 'सरस्वती' का सम्पादन करके उन्होंने हिन्दी के सामयिक साहित्य के अभावों की सुन्दर पूर्ति की। सम्पत्ति शास्त्र', 'शिक्षा', 'स्वाधीनता' आदि विविध-विषयक मौलिक और अनूदित पुस्तकों की रचना करके हिन्दी के रिक्त कोष को भरने की चेष्टा की। ऐतिहासिक और पुरातत्वविषयक लेखों द्वारा विदेशी सभ्यता और संस्कृति से अभिभूत भारतीयों की हीनतानुभूति दूर करने और उनके हृदय में आत्मगौरव की भावना भरने का प्रयास किया। विज्ञापनबाज के नहीं सच्चे मातृ-भाषा-प्रेमी के रूप में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रचार तथा प्रसार के लिये अपना जीवन अर्पित कर दिया। असमर्थ तुतलाती हिन्दी को सक्षम और प्रौढ़रूप देकर उसके इतिहास को बदल दिया। उन्होंने साहित्य का ही नहीं एक नवीन युग का निर्माण किया।

हिन्दी के अनन्य सहारथी और एकान्त साधक की साहित्य-सेवा का समुचित मूल्यांकन करना हिन्दी के लिए परम गौरव का विषय है।

दूसरा अध्याय

चरित और चरित्र

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म वैशाख शुक्ल ४, संवत् १९२१ को उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर गावं में हुआ। वहाँ के राम सहाय नामक एक अकिंचन ब्राह्मण को हमारे चरित-नायक का जनक कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ। जन्म के आध घंटे पश्चात् और जातकर्म के पूर्व शिशु की जिह्वा पर सरस्वती का बीजमंत्र[1] अंकित कर दिया गया। मंत्रविद्या अपने सुन्दरतम रूप में चरितार्थ हुई।

द्विवेदी जी के पितामह पंडित हनुमन्त द्विवेदी बड़े ही प्रकाड पंडित थे उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी विधवा पत्नी ने कल्याण-भावना से प्रेरित होकर कई छकड़े संस्कृत ग्रन्थ उनके एक मित्र को दे दिए।

पंडित हनुमन्त द्विवेदी के तीन पुत्र थे दुर्गा प्रसाद, राम सहाय और रामजन। असमय देहावसान के कारण वे अपने पुत्रों को सुशिक्षित न कर सके। रामजन का तो बाल्यावस्था में ही स्वर्गवास हो गया था। दुर्गा प्रसाद की जीविका के लिए बैसवाड़े में ही गौरा के तालुकदार के यहाँ कहानी सुनाने की नौकरी करनी पड़ी। राम सहाय सेना में भर्ती हो गए। १८५७ ई० में अपने गुल्म के विद्रोही हो जाने पर वे वहाँ से भागे। मार्ग में सतलज की धारा उन्हें सैकड़ों मील तक बहा ले गई।[2] मूर्च्छित शरीर किनारे पर लगा। सचेत होने पर उन्होंने

१, 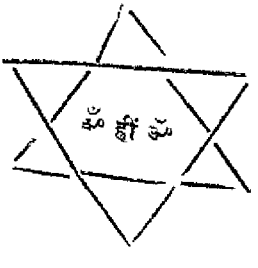

द्विवेदी जी की लिखी हुई 'नैषधचरित-चर्चा' से सिद्ध है कि इसी प्रकार चिन्तामणि मन्त्र उनकी वाणी पर लिखा गया था।

२ द्विवेदी जी का आत्मनिवेदन 'साहित्य संदेश' अप्रिल १९३९ ई०

घास के डठला का रस चूसकर प्राणरक्षा की ; साधुवप म किसी प्रकार माँगत खाते घर पहुँचे । बम्बई जाकर पहले चिमन लाल और फिर नरसिंह लाल के यहाँ नौकरी करते रहे । ये बड़े ही भजनानन्दी जीव थे । पल्टन मे भी पूजा-पाठ किया करते थे । १८८० ई० तक घर चले आए और १८९६ ई० मे महाप्रस्थान किया ।

राम सहाय के एक कन्या भी थी जो पुत्रवती होकर स्वर्ग सिधारी । नतिनी की भी वही दशा हुई ।

पिता को महावीर का इष्ट होने के कारण पुत्र का नाम महावीर सहाय रखा गया । बाल्यकाल मे चचा ने 'शीघ्रबोध', 'दुर्गासप्तशती', 'विष्णुसहस्रनाम', 'मुहूर्त्तचिन्तामणि', और 'अमरकोश' के अश कंठ कराए । बालक द्विवेदी ने ग्राम पाठशाला मे हिन्दी,उर्दू और गणित की प्रारंभिक शिक्षा पाई । दो तीन फारसी पुस्तकें भी पढ़ी । ग्राम-पाठशाला की शिक्षा समाप्त हो गई । प्रमाणपत्र मे अध्यापक ने प्रमादवश महावीर सहाय के स्थान पर महावीर प्रसाद लिख दिया । आगे चलकर यही नाम स्थायी हो गया ।

अँगरेजी का माहात्म्य उनके पिता और चाचा को अविदित न था । अतएव अँगरेजी शिक्षा प्राप्त करने के लिए महावीर प्रसाद राय बरेली के जिला-स्कूल में भर्ती हुए । तेईस वर्ष तक दस करोड हिन्दी-जनता का अविरल साहित्यिक अनुशासन करने वाले इस महान् साहित्यिक सेनानी की तत्कालीन जीवन-गाथा बडी ही हृदय-विदारक है । तेरह वर्ष का कोमल किशोर आटा, दाल पीठ पर लादकर अठारह कोस पैदल जाता था । पाक-कला मे अनभिज्ञ होने के कारण दाल मे आटे की टिकियाँ पकाकर ही पेटपूजा कर लिया करता था । एक बार तो जाड़े की ऋतु में सारी रात पैदल चलकर भोर बजे सवेरे घर पहुँचे । द्वार बन्द था, माँ चक्की पीस रही थी । बालक की पुकार सुनकर ससम्भ्रम दौड पड़ी । किवाड खोल दिए ।श्रान्त सन्तप्त बच्चे को अपने स्निग्ध आँचल की शीतल छाया मे बनकर समेट लिया । वात्सल्यमयी जननी का कोमल हृदय नयनों का द्वार तोड़कर बह निकला । धन्य है भगवान् की महिमा ! वह जिस पर कृपा करता है उसकी जीवन-प्याली में वेदना,अशान्ति और कठिनाइयाँ उँडेल देता है और जिस पर अप्रसन्न होता है उसे कंचन, कामिनी और कादम्ब की विलासभूमि का अधीश बना देता है । उसके शाप और वरदान की इस रहस्यमयी प्रणाली को मर्त्यलोक के मायावशवर्ती क्षुद्र प्राणी कैसे समझ सकते है ?

स स्कूल म वैत्सिक विधना में सस्कृत न था विवश होकर उन्हें फारसी लेनी पड़ी

वहाँ किसी प्रकार एक वर्ष कटा दौलतपुर से रायबरेली बहुत दूर था अतः वे उन्नाव जिले के रनजीतपुरवा स्कूल में लाए गए। विधि का विधान, कुछ दिन बाद वह स्कूल ही टूट गया। तदनन्तर वे फतहपुर भेजे गए। वहाँ डबल प्रोमोशन न मिलने के कारण उन्नाव चले आए। यहाँ पर डबल प्रोमोशन मिल गया। फिर भी उनका जी न लगा। पाँच-छः महीने बाद वे पिता के पास बम्बई चले गए।

इसके पूर्व ही उनका विवाह हो चुका था।

बम्बई में उन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी, और अँगरेजी का थोड़ा बहुत अभ्यास किया। वहाँ पर पड़ोस में ही रेलवे के अनेक सार्टर और क्लर्क रहते थे। उनके फंदे में पड़कर द्विवेदी जी ने रेलवे में नौकरी कर ली। वहाँ से वे नागपुर गए। वहाँ भी उनका जी न लगा उनके गाँव के कुछ लोग अजमेर में राजपूताना रेलवे के लोको सुपरिटेंडेंट के आफिस में क्लर्क थे। उन्हीं के आसरे वे अजमेर चले गए। पन्द्रह रुपए मासिक की नौकरी मिल गई। उसमें से पाँच रुपया वे अपनी माता जी के लिए घर भेजते थे, पाँच में अपना खर्च चलाते थे और अवशिष्ट पाँच रुपयों में एक गृह-शिक्षक रखकर विद्याध्ययन करते थे। हमारे विद्या-व्यसनी तपः पूत साहित्यव्रती की साधना कितनी कठिन थी!

अजमेर में भी जी न लगने के कारण वे पुनः बम्बई लौट आए। प्रतिभाशील व्यक्तियों की जिज्ञासा भी बड़ी प्रबल हुआ करती है। मुम्बादेवी के तार-घर में तार खटखटाते देख कर उन्हें तार सीखने की इच्छा हुई। तार सीख कर जी० आइ० पी० रेलवे में सिग्नलर हो गए। उस समय उनकी आयु लगभग बीस वर्ष की थी।

तार बाबू के पद पर रह कर द्विवेदी जी ने टिकटबाबू, मालबाबू, स्टेशन मास्टर, प्लेटियर आदि के काम सीखे। फलस्वरूप उनकी क्रमशः पदोन्नति होती गई। इंडियन मिडलैंड रेलवे के खुलने पर उसके ट्रैफिक मैनेजर डब्ल्यू० बी० राइट ने उन्हें झाँसी बुला लिया और टेलीग्राफ इन्सपेक्टर नियुक्त किया। कालान्तर में वे हेड टेलीग्राफ इन्सपेक्टर हो गए। दौरे से ऊब कर उन्होंने ट्रैफिक मैनेजर के दफ्तर में बदली करा ली। कुछ काल बाद असिस्टेंट चीफ क्लर्क और फिर रेट्स के प्रधान निरीक्षक नियुक्त हुए।

जब आइ० एम० रेलवे जी० आइ० पी० रेलवे में मिला दी गई तब वे कुछ दिन फिर बम्बई में रहे। वहाँ का वातावरण उन्हें पसन्द न आया। ऊँचे पद का लोभ त्याग कर उन्होंने फिर झाँसी का करवाया वहाँ डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक [illegible] के आफिस में

पाच वर्ष तक चीफ क्लर्क रहे द्विवेदी जी क व दिन अच्छे नहा करे उनक गौरांग प्रभ अपनी रातें बँगले या क्लब म बिता थे . बेचारे द्विवदा जी दिन भर दफ्तर म काम करत थे और रात भर अपनी कुटिया में बैठे बैठे साहब के तार लेते तथा उनका उत्तर देते थे। चाँदी के कुछ टुकडो के लिये बहुत दिनो तक उन्होने इस अत्याचार का सहन किया।

कुछ काल-पश्चात् उनके प्रभु ने उनके द्वारा दूसरो पर भी वही अत्याचार कराना चाहा। सहनशीलता अपनी सीमा पर पहुँच गई थी। द्विवेदी जी ने स्वयं तो सब कुछ सहना स्वीकार कर लिया परन्तु दूसरो पर अत्याचार करने मे नाहीं कर दी। बात बढ़ गई। उन्होंने निश्शक भाव से त्याग-पत्र दे दिया। इस समय उनका का वेतन डेढ सौ रुपये था। त्याग-पत्र वापस लेने के लिये लोगों ने बहुत उद्योग किया, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। इस विषय पर द्विवेदी जी ने अपनी धर्म-पत्नी की राय माँगी। स्वाभिमानिनी पतिव्रता ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया– क्या कोई थूक कर भी चाटता है? उन्होने सन्तोष की साँस ली। हिन्दी का अहोभाग्य था कि हमारे चरित-नायक ने कमला का क्षीरसागर त्याग कर सरस्वती की हिम-शिला पर पुजारी का आसन ग्रहण किया।

१६०३ ई० में उन्होने 'सरस्वती' का सम्पादन आरम्भ किया। १६०८ ई० तक झाँसी मे कार्य-संचालन करने के अनन्तर वे कानपुर चले आए और जुही मे सम्पादन करते रहे। शक्ति से अधिक परिश्रम करने के कारण वे अस्वस्थ हो गए। १६१० ई० में उनको पूरे वर्ष भर की छुट्टी लेनी पडी। सम्भवत: इसी वर्ष उनकी माता जी का भी देहान्त हुआ। सत्रह वर्ष तक 'सरस्वती' का सम्पादन करने के उपरान्त १६२० ई० मे उन्होंने इस कार्य से अवकाश ग्रहण किया।

जीवन के अन्तिम अठारह वर्ष द्विवेदी जी ने अपने गाँव मे ही बिताए। कुछ काल तक आनरेरी मुंसिफ का कार्य किया। तदनन्तर ग्राम-पंचायत के सरपंच रहे। उनके जीवन के अन्तिम दिन बडे दुख मे बीते। स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता गया। पं० शालग्राम शास्त्री आदि अनेक वैद्यो और डाक्टरों की दवा की परन्तु सभी औषधियाँ निष्फल सिद्ध हुईं। अन्न त्याग देना पडा। लौकी की तरकारी, दलिया और दूध ही उनका आहार था। अनेक रोगों से बार-बार आक्रान्त होने के कारण उनका शरीर शिथिल हो गया था। अन्तिम बीमारी के समय वे बराबर कहा करते थे कि अब मेरे महाप्रस्थान का समय आ गया है। जिस किसी से जो कुछ कहना था कह-सुन लिया। अक्टूबर सन् १६३८ ई० के दूसरे सप्ताह में उनके भानजे कमलाकिशोर त्रिपाठी के समधी डाक्टर शंकरदत्त जी उन्हे रायबरेली ले गये द्विवेदी

जी का तत्कालीन मानसिक और शारीरिक पीड़ा का ज्ञान उनके निम्नांकित पत्र से बहुत कुछ हो जाता है

२, ११, ३८।

शुभाशीर्वाद सन्तु,

.....

मैं कोई दो महीने से नरक यातनाएँ भोग रहा हूँ। पड़ा रहता हूँ। चल फिर कम सकता हूँ। दूर की चीज भी नहीं देख पड़ती। लिखना पढ़ना प्रायः बन्द है। जरा सी दलिया और शाक खा लेता था। अब वह कुछ हजम नहीं होता। तीन पाव के करीब दूध पी कर रहता हूँ—तीन दफे में। सूखी खुजली अलग तंग कर रही है। बहुत दवायें की नहीं जातीं।

शुभेच्छु

म० प्र० द्विवेदी।[1]

शंकरदत्त जी ने अनेक वैद्यों और डाक्टरों की सहायता तथा परामर्श से द्विवेदी जी की चिकित्सा की। सभी उपचार निष्फल हुये। २१ दिसम्बर को प्रातः काल पौने पाँच बजे उस अमर आत्मा ने नश्वर शरीर त्याग दिया। हिन्दी-साहित्य का आचार्यपीठ अनिश्चित काल के लिये सूना हो गया।

द्विवेदी जी का विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था। उनकी धर्म-पत्नी इतनी रूपवती न थी कि उनकी अलौकिक शोभा को देख कर किसी का सहज पुनीत मन क्षुब्ध हो जाता तथापि द्विवेदी जी ने आदर्श प्रेम किया।[2] उनके पत्नी प्रेम का प्रामाणिक इतिहास अतीव मनोरंजक है।

द्विवेदी जी की स्त्री की एक सखी से कहा कि द्वार पर पूर्वजों द्वारा स्थापित महावीर जी की मूर्त्ति पड़ी है, उसके लिए पक्का चबूतरा बन जाता तो अच्छा होता। चबूतरा बनवा कर उनकी स्त्री ने महावीर शब्द की श्लिष्टता का उपयोग करते हुए कहा कि तुम्हारा चबूतरा मैंने बनवा दिया। सहृदय और प्रत्युत्पन्नमति द्विवेदी ने तत्काल उत्तर दिया—

---

१. किशोरीदास वाजपेयी को लिखित पत्र, 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० २२२, २३

२. "विषय-वासनाओं की तृप्ति के लिये ही जिस प्रेम की उत्पत्ति होती है वह नीच प्रेम है। वह निंद्य और दूषित समझा जाता है। निर्व्याज प्रेम ही उच्च प्रेम है। प्रेम अवान्तर बातों की कुछ भी परवा नहीं करता। प्रेम-पथ से प्रयाण करते समय आई हुई बाधाओं को वह कुछ नहीं समझता। विघ्नों को देख कर वह केवल मुस्करा देता है। क्योंकि इन सब को उसके सामने हार माननी पड़ती है"

सरस्वती भाग २ पृ० ३६८

तुमने हमारा चबूतरा बनवाया है, मैं तुम्हारा मन्दिर बनवाऊंगा। हास्य की इस वाणी ने आगे चलकर यथार्थ का रूप धारण किया।[१]

उनकी स्त्री को आरंभ से ही हिस्टीरिया का रोग था।[२] इसी कारण द्विवेदी जी उन्हें गंगास्नान को अकेले नहीं जाने देते थे। संयोग की बात, एक दिन वे ग्राम की अन्य स्त्रियों के साथ चली गईं। गंगा माता उन्हें अपने प्रवाह में बहा ले गईं। लगभग एक कोस पर उनका शव मिला।

द्विवेदी जी के कोई सन्तान न थी। पत्नी के जीते जी तथा मरने पर लोगों ने उन्हें दूसरा विवाह करने के लिए लाख समझाया परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। अपने पत्नीव्रत और तन्मय प्रेम को साकार रूप देने के लिए स्मृति-मन्दिर का निर्माण कराया। जयपुर से एक सरस्वती और एक लक्ष्मी की दो मूर्तियाँ मँगाईं। वहीं से एक शिल्पी भी बुलाया। उसने उनकी स्त्री की एक मूर्ति बनाई। वह द्विवेदी जी को पसन्द न आई। फिर उसने दूसरी बनाई। सात-आठ महीने में मूर्ति तैयार हुई। लगभग एक सहस्र रुपया व्यय हुआ। स्मृति-मन्दिर में तीनों मूर्तियाँ स्थापित की गईं—मध्य में उनकी धर्म-पत्नी की, दाहिनी ओर लक्ष्मी और बाईं ओर सरस्वती की।[३]

---

१. 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० १५३।

२. 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० २२१।

३. धर्म पत्नी की मूर्ति के नीचे द्विवेदी जी के स्वरचित निम्नांकित श्लोक खचित हैं—

नवषण्णवभूसंख्ये विक्रमादित्यवत्सरे।
शुक्लकृष्णत्रयोदश्यामधिकापाढमासि च॥
मोहमुग्धा गतज्ञाना भ्रमरोगनिपीडिता।
जन्हुजायाजलं प्राप पंचत्वं या पतिव्रता॥
निर्मापितमिदं तस्याः स्वपत्न्याः स्मृतिमन्दिरम्।
व्ययितेन महावीरप्रसादेन द्विवेदिना॥
पत्युर्गृहे यत. सासीत्, साक्षाच्छ्रीरिवरूपिणी।
पत्न्याप्येकादृता वाणी द्वितीया सैव सुव्रता॥
एषा तत्प्रतिमा तस्मान्मध्यभागे तयोर्द्वयोः।
लक्ष्मीसरस्वतीदेव्योः स्थापिता परमादरात्॥

लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्ति के ऊपर क्रमशः अधोलिखित श्लोक अंकित हैं—

विष्णुप्रिया विशालाक्षी क्षीराम्भोनिधिसम्भवा।
इयं विराजते लक्ष्मी लोकेशैरपि पूजिता॥
हंसोपरि समासीना [illegible]
वरदा विश्ववन्द्येयं सदा शुक्ला सरस्वती

स्त्री की मूर्ति स्थापित करने पर लोगों ने द्विवेदी जी की बड़ी हँसी उड़ाई, यहाँ तक कह डाला—"दुबौना कलजुगी है कलजुगी। बाखौना, मेहरिया कै मूरति बनवाय कै पधराईसि हइ! यहौ कौनिउ वेद पुरान कै मरजाद आय?"[1] यही नहीं, सामने भी ताने कसने, गालियाँ तक बकते परन्तु द्विवेदी जी पर कोई प्रभाव न पड़ता। अपनी पत्नी के वियोग में वे कितने दुःखी थे, यह बात पं० पद्मसिंह शर्मा को लिखे गए निम्नांकित पत्र से स्पष्ट प्रमाणित होती है—

"

दौलतपुर

१३. ७. १२।

प्रणाम,

कार्ड मिला। क्या लिखूँ? यहाँ भी बुरा हाल है। पत्नी मेरी इस संसार से कूच कर गईं। मैं चाहता हूँ कि मेरी भी जल्दी बारी आवे।

भवदीय

महावीरप्रसाद।"[2]

इतने सच्चे प्रेमी होकर भला वे अनर्गल और मिथ्या लोकनिन्दा की ओर क्यों ध्यान देते? ३ अक्टूबर १९०७ ई० के अपने मृत्यु-लेख में भी उन्होंने अपने पत्नी-प्रेम का परिचय दिया था।[3]

द्विवेदी जी को पारिवारिक सुख नहीं मिला। उनके मन में यह बात खटकती भी रहती थी। परन्तु उनका दुःख सामान्यतः प्रकट नहीं होता था। अपनी दुःख कथा दूसरों को सुना कर उनके हृदय को कष्ट पहुँचाना उन्होंने अन्याय समझा। बाबू चिन्तामणि घोष की मृत्यु पर द्विवेदी जी ने स्वयं लिखा था—

"आज तक मेरे सभी कुटुम्बी एक एक करके मुझे छोड़ गए। मैं ही अकेला कलद्रुम बना हुआ अपने अन्तिम श्वासों की राह देख रहा हूँ। ...कभी मैंने 'सरस्वती' में अपना रोना

---

१. 'सरस्वती' भाग ४० सं० २, पृ० २२१।

२. 'सरस्वती', नवम्बर, १९४० ई०।

३. उन्होंने अपनी आय का ५० प्रतिशत अपनी स्त्री और शेष अपनी माँ और सरहज के लिए निर्धारित किया था। पत्नी के मानसिक सुख और शान्ति के लिए यहाँ तक लिखा था कि—

'Trustees will be good enough to leave her alone in the matter of her ornaments and will not injure her feelings in that respect by demanding an account of her ornaments or of their disposa

का० ना० प्र० सभा के कार्यालय में रक्षित मृत्यु-लेख

नहीं रोना मरी उस कष्ट कथा में सरस्वती' का कुछ भी सम्बन्ध न था अतएव उस 'सरस्वती' के पाठकों को सुना कर उनका समय नष्ट करना मैंने अन्याय समझा "[1] दैहिक और भौतिक वेदनाओं ने द्विवेदी जी के हृदय को इतना अभिभूत किया कि समय-समय पर वे अपनी पीडाओं को अभिव्यक्त किए बिना न रह सके। वे कभी कभी कुटुम्बियों के जंजाल से अधिक शोकाकुल हो जाया करते थे। १२. ८. ३३. ई० को उन्होंने किशोरीदास वाजपेई को पत्र में लिखा था--

"आप की कौटुम्बिक व्यवस्था से मिलता जुलता ही मेरा हाल है। अपना निज का कोई नहीं है। दूर दूर की चिडियाँ जमा हुई हैं। खूब चुगती हैं। पुरस्कार-स्वरूप दिन रात पीडित किए रहती है।"[2]

यह द्विवेदी जी का स्थायी भाव न था। उन्होंने अपनी विधवा बहन, बहन की विधवा लडकी, भानजे, उसकी वधू और लडकी को असाधारण आत्मीयता और प्रेम से अपनाया। यद्यपि कमलाकिशोर त्रिपाठी उनके सगे भानजे नहीं हैं तथापि द्विवेदी जी ने उनका और उनकी लडकियों का विवाह अपनी बेटे-बेटियों की ही भाँति किया। अपने १९०७ ई० के मृत्यु-लेख में उन्होंने अपनी माँ, सरहज और स्त्री के पालनार्थ अपनी आय का क्रमशः तीस, बीस और पचास प्रतिशत निर्धारित किया था। जीवन के पिछले प्रहर में इनका देहान्त हो जाने के पश्चात् उन्होंने उस मृत्यु-लेख को व्यर्थ समझ कर भंग कर दिया। चल-सम्पत्ति का प्रायः सर्वांश दान कर के अपनी अचल-सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उपर्युक्त कल्पित भानजे कमलाकिशोर त्रिपाठी को बनाया।

'सरस्वती' के सम्पादन-कार्य से अवकाश ग्रहण करने पर द्विवेदी जी अपने गाँव दौलतपुर में ही रहने लगे। बहुत दिनों तक आनरेरी मुंसिफ और तदुपरान्त ग्राम पंचायत के सरपंच रहे। इन पदों पर रहते हुए उन्होंने न्याय का पूर्णतया निर्वाह किया। उनकी कठोर न्याय-प्रियता से अनेक लोग असन्तुष्ट भी हुए, किन्तु द्विवेदी जी ने इसकी कुछ भी परवा न की। न्याय की रक्षा के लिये यदि किसी अकिंचन को आर्थिक दंड दिया तो करुणा के वशीभूत होकर उसका जुर्माना अपने पास से चुकाया।

आधुनिक ग्रामसुधार-आन्दोलन के बहुत पहले ही उन्होंने इसकी ओर ध्यान दिया था।

---

१. द्विवेदी-लिखित 'बाबू चिन्तामणि घोष की स्मृति'
सरस्वती, १९२८ ई० खंड २ पृ० २८२ "

२ सरस्वती भाग ४० सं० २, पृ० ३२१

अपने गाँव की सफाई के लिए एक भंगी को नौकर रखाया। गाँव में अस्पताल डाकखाना मवेशीखाना आदि बनवाए, आमों के कई बाग भी लगवाए उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि अशिक्षित ग्रामवासियों को शिक्षित करने से ही भारत की उन्नति हो सकती है।

उन्होंने वाणी की अपेक्षा कर्म-द्वारा ही उपदेश किया। मार्ग में गोबर, काँटा, काँचके टुकड़ा आदि पड़ा देख कर स्वयं उठाकर फेंक आते थे। इस आदर्श से प्रभावित होकर दूसरे व्यक्ति भी उनका अनुकरण करते थे। रेलवे में नौकरी करने के कारण जनसाधारण द्विवेदी जी को बाबू जी कहा करते थे। मामले-मुकदमे में राय लेने के लिए लोग उनके पास आते और वे समझा-बुझा कर आपस में ही फैसला करा देते थे। गरीब किसानों को साधारण 'सूद पर' बिना सूद के या अत्यन्त असहाय होने पर दान-रूप में भी धन दिया करते थे।

सुन्दर लम्बा डील-डौल, विशाल रोबदार चेहरा, प्रतिभा की रेखाओं से अंकित उन्नत भव्य भाल, उठी हुई असाधारण घनी भौहें, तेजभरी अभिभावक आँखें और सिंह की सी अस्तव्यस्त फैली हुई मूछें द्विवेदी जी को एक महान् विचारक का ही नहीं, उस दिग्विजयी महाबलाधिकृत का व्यक्तित्व प्रदान करती थीं जो अपनी भयंकर गर्जना से समस्त भूमंडल को थर्रा देता है। उनकी मुखाकृति से ही विदित होता था कि उनमें गम्भीरता है, मनचले छोकरों का छिछोरापन नहीं। व्यक्तिगत जीवन के पदन्यास में या साहित्य की भूमिका में कहीं भी उन्होंने उच्छृङ्खलता का परिचय नहीं दिया। उन्होंने प्रत्येक कार्य को अपना कर्तव्य समझ कर गम्भीरतापूर्वक आरम्भ किया और अन्त तक सफलता-पूर्वक निबाहा। साहित्यिक वाद-विवादों में किलकिलाकर बाग्बाणवर्षा होने पर भी उन्होंने यथा-सम्भव अपने संयम और गम्भीरता की रक्षा की।

गम्भीर होते हुए भी उनके व्यवहार में नीरसता या शुष्कता नहीं थी। वे स्वभावतः हास्य-विनोद के प्रेमी थे। जब साहित्य-सम्मेलन ने सर्व प्रथम परीक्षाएँ चलाईं तब द्विवेदी जी ने भी प्रथमा परीक्षा के लिए आवेदन-पत्र भर कर भेजा।[1]

उनकी रुचि शृंगारिक कविता की ओर कम थी। एक बार वे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' र उन्हीं की मंडली में पूछ बैठे —'काहे हो बालकृष्ण, ई तुम्हार सजनी, सखी, सलौनी, ाए को आयें। तुम्हार कविता माँ इनका बड़ा जिकर रहत है। सब लोग हँस पड़े और वीन जी झेंप गए।[2]

. सरस्वती, भाग ४०, सं० २, पृ० १७३।

द्विवेदी-मीमांसा' पृ० २३४

उनकी अरसठवां वर्षगाँठ के समय किसी किसी ने सरसठवीं वर्षगाँठ मनाई इस पर द्विवेदी जी ने लिखा किसी किसी ने ९ मई १९३२ को सरसठवीं ही वर्षगाँठ मनाई है। जान पड़ता है इन सज्जनों के हृदय में मेरे विषय के वात्सल्यभाव की मात्रा कुछ अधिक है। इसी से उन्होंने मेरी उम्र एक वर्ष कम बता दी है। कौन माता, पिता या गुरुजन ऐसा होगा जो अपने प्रेमभाजन की उम्र कम बताकर उसकी जीवनावधि को और भी आगे बढ़ा देने की चेष्ठा न करेगा? अतएव इन महानुभावों का मैं और भी कृतज्ञ हूँ।[1]

उनके सम्भाषण की प्रत्येक बात में अनोखापन और आकर्षण था। एक बार केशव प्रसाद मिश्र द्विवेदी जी के अतिथि थे। द्विवेदी जी के आगमन पर वे उठ खड़े हुए। द्विवेदी जी ने हँसमुख भाव से उत्तर दिया—विरम्यतां सूतवती सपर्या निविश्यतामासन-मुक्तिं किम ?[2]

द्विवेदी जी बड़े स्वाभिमानी थे। आत्मगौरव की रक्षा के लिए ही उन्होंने डेढ़सौ रुपयों की आय को ठुकरा कर तेईस रुपए मासिक की वृत्ति स्वीकार की। नागरी प्रचारिणी सभा से मतभेद होने पर सभाभवन में पैर नहीं रखा। यदि किसी से मिलना हुआ तो बाहर ही मिले। बी० एन० शर्मा पर अभियोग चलाने का कारण उनका स्वाभिमान ही था। कमला-किशोर त्रिपाठी की विवाह-यात्रा के समय द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में एक विलायती साहब ने द्विवेदी जी से अपमानजनक शब्दों में स्थान खाली करने को कहा। उस अनाचार का उत्तर उन्होंने मिर्जापुरी डंडे से दिया।

हिन्दी कोविद-रत्न-माला के लिए १९१७-१८ ई० में श्यामसुन्दर दास के आदेशानुसार सूर्यनारायण दीक्षित ने द्विवेदी जी का एक संक्षिप्त जीवन-चरित तैयार किया और उसकी हस्तलिखित प्रति द्विवेदी जी को दिखाकर बाबू साहब के पास भेज दी। यत्र तत्र कुछ परि-वर्तन करने के बाद अन्त में बाबूसाहब ने यह बढ़ा दिया कि द्विवेदी जी का स्वभाव किंचित् उग्र है। जब द्विवेदी जी को यह ज्ञात हुआ तब वे आपे से बाहर हो गए। वस्तुतः इस उग्रता से उन्होंने बाबू साहब के कथन को चरितार्थ किया।

स्वाभिमानी और उग्र होते हुए भी वे ईश्वर में अटल विश्वास रखते थे। यद्यपि उन्हों-ने अपने को किसी धार्मिक बन्धनमें नहीं जकड़ा, दिखाने के लिए सन्ध्यावन्दनादि का पालन नहीं किया तथापि उनकी भगवद्भक्तिप्रधान कविताओं, विशेषकर 'कथमहं नास्तिकः' में

---

१ द्विवेदी-लिखित 'कृतज्ञता-ज्ञापन' 'भारत' २२-५-३२।

२ सरस्वती, भाग ४० सं० २ पृ० १-६

सिद्ध है कि उन्होंने प्रत्येक कार्य ईश्वर का आदेश समझ कर किया।

उनकी तीव्र आलोचनाओं के आधार पर उन्हें उग्र और क्रोधी कहना भारी भूल है। साहित्य के ढीठ चोरों पर 'किन्तु परन्तु' और 'अगर मगर' वाली आलोचना का कोई प्रभाव न पड़ता। हिन्दी के वर्धमान कूड़ा-करकट को रोकने के लिए उसी प्रकार की कटु आलोचना अपेक्षित थी।

द्विवेदी जी ने अपनी साहित्यिक योग्यता का गर्व नहीं किया। तत्कालीन 'चाँद' सम्पादक गंगरत्नसिंह सहगल के एक पत्र से विदित होता है कि द्विवेदी जी ने उन्हें कोई अभिमान सूचक बात लिखी थी।[1]

उनके कमरे में अनेक अस्त्र शस्त्रों के अतिरिक्त एक फरसा टँगा रहता था, जो उनके उग्र स्वभाव का द्योतक था। कदाचित् उसी को देख कर ही पं० वेंकटेशनारायण तिवारी ने उन्हें वाक्यशूर परशुराम कहा था।[2] वे निस्सन्देह उग्र थे परन्तु उनकी उग्रता में अनौचित्य या अन्यान्य के लिए अवकाश न था। जब अभ्युदय प्रेस के मैनेजर ने अपने 'निबन्ध नवनीत'[3] में द्विवेदी-लिखित प्रतापनारायण मिश्र का जीवनचरित और बाबू भवानीप्रसाद ने

---

१. "

१. १२ २३ ई०

....

...दोनों ही पत्र पढ़ कर बहुत दुःख हुआ। यदि कोई जाहिल ऐसे पत्र लिखता तो कोई बात नहीं थी किन्तु मुझे दुःख इस बात का है कि आपके पत्र से सदा अनुचित अभिमान और तिरस्कार की बू आती है जो सर्वथा अक्षम्य है। यह सच है कि साहित्य में आपका स्थान बहुत ऊँचा है और बहुत काल से आप हिन्दी की सेवा कर रहे हैं, फिर भी आप को कोई अधिकार नहीं है, कि दूसरों को जो आपकी विद्वता के सामने कुछ भी नहीं हैं, उन्हें आप तुच्छ दृष्टि से देखें और इस प्रकार उनका निरादर करें। मैं ही क्या कोई भी आत्माभिमानी इसे सह नहीं सकता। आप का लेख 'चाँद' में प्रकाशित होने से पत्र का मान बढ़ जायगा यदि आप का यह ख्याल है तो निश्चय ही आप का यह भ्रम है।...आप जैसे सुयोग्य विद्वानों के लेख अन्य पत्रिकाओं की शोभा भले ही बढ़ा सकें किन्तु मेरे पत्र के लेखक एक दूसरी ही श्रेणी के हैं और वे बहुत हैं।...."

द्विवेदी जी के पत्र, संख्या ४६,
नागरी प्रचारिणी सभा कार्यालय,
काशी।

२ 'सरस्वती' भाग ४०, सं० २, पृ० २१२।

३ काशी नागरी प्रचारिणी सभा कलाभवन बंडल १
अभ्युदय प्रेस के मैनेजर का लिखित पत्र की रूप रेखा।

उनकी कुछ कविताएं अपना शिक्षा सरोज तथा 'आर्य भाषा पाठावली' में उनकी आज्ञा के बिना ही संकलित कर ली तब द्विवेदी जी उनके वंचक व्यवहार पर क्रुद्ध हुए। अन्त में मित्रों की मित्रता के कारण उन्हें क्षमा कर दिया।

द्विवेदी जी कठोर थे कपटाचारी, कृत्रिम, दिखावटी और चाटुकार जनों के लिए। वे किसी भी अनुचित बात को सह नहीं सकते थे। सच तो यह है कि वे अपने ऊँचे आदर्श की इच्छा से दूसरों को भी नापते थे। यह उनकी महत्ता थी जिसे हम सामाजिक दृष्टि से निर्बलता कह सकते हैं।

एक बार बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' में 'साकेत' की आलोचना की। उनकी कुछ बातों से गुप्त जी सहमत न हुए और १५ जनवरी, १९३२ ई० को उन्हें उत्तर दिया। उसी की प्रतिलिपि के साथ द्विवेदी जी को उन्होंने पत्र लिखा और उनकी सम्मति माँगी।[२] द्विवेदी जी ने अपनी राय देते हुए अपने अनन्य स्नेहभाजन मैथिलीशरण गुप्त को लिखा—"तुलसी की कविता से आपको अपनी कविता की तुलना करना शोभा नहीं देता।" गुप्त जी तिलमिला उठे और २८ जनवरी को लिखा—"आज पचीस वर्ष से ऊपर हुए, मैं आप की छत्रच्छाया में हूँ। यह बात औरों के कहने के लिए रहने दीजिये।... मैंने अपनी ध्यान समाधि में जैसा देखा वैसा लिखा।" पहली फरवरी को द्विवेदी जी ने उत्तर में लिखा "आपने मुझसे राय माँगी, मुझे जो कुछ उचित समझ पड़ा, लिखकर मैंने आप की इच्छा-पूर्ति कर दी। इस पर आप अपनी २८ जनवरी की चिट्ठी में विवाद पर उतर आए,—जो राय मैंने दी उसका सर्वांश में खंडन कर डाला। इसकी क्या जरूरत थी? आप अपनी राय पर जमे रहते। ध्यान-समाधि लगाकर पुस्तक लिखने वालों को मेरे और बनारसीदास जैसे मनुष्यों की राय की परवा ही क्यों करनी चाहिए? वे अपनी राह जायं, आप अपनी। आप की राय ठीक, मेरी और बनारसीदास की गलत सही—तुष्यतु भवान्।"[३]

दयाशील द्विवेदी जी की उग्रता के मूल में किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं होती थी। इसका अकाट्य प्रमाण यह है कि अपराधियों की क्षमायाचना सुनकर सच्चे हृदय से, सहर्ष और सस्नेह उन्हें क्षमा भी कर देते थे। मैथिलीशरण गुप्त ने उपर्युक्त पत्र का उत्तर दिया था—

निगोंव झांसी

कृपा कार्ड मिला। जिसे कहीं से अनुकूलता की आशा नहीं होती वह एकान्त में अपने देवता के चरणों में बैठकर, भले ही वह दोषी स्वयं हो, उसी को उपालम्भ देता है। ऐसे ही मैंने किया है—तस्मात्त्वय्येव नितरामनुकम्पनीयः।

मेरे सबसे छोटे भाई चारुशीलाशरण का बच्चा अशोक कभी-कभी खीझ कर मेरी टाँगों में अपना शिर लगा देता है और मुझे ठेलता हुआ अपना अभिमान प्रकट करता है। समझ लीजिए, ऐसा ही मैंने किया है और मेरा यह व्यवहार सहन कर लीजिए—गीता के शब्दों में पितेव पुत्रस्य।

चरणानुचर

मैथिलीशरण"[1]

गुप्त जी के श्रद्धाशबलित पत्र ने द्विवेदी जी को पूर्ववत् प्रसन्न कर दिया। श्यामसुन्दर दास, बालमुकुन्द गुप्त, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बी० एन० शर्मा, कृष्णकान्त मालवीय आदि साहित्यकारों से द्विवेदी जी की खटपट हुई। उनकी उग्रता या विवादों का कारण उनकी सत्यप्रियता, न्यायनिष्ठा, स्पष्टवादिता और इससे भी महत्तर हिन्दी-हितैषिता थी। यदि वे एक ओर उग्र और क्रोधी थे तो दूसरी ओर क्षमा और दया की राशि भी थे। वे परशुराम और तथागत गौतम के एक साथ अवतार थे। इसको पाप न कह कर पुण्य कहना ही अधिक युक्तियुक्त है।

द्विवेदी जी के चिन्तन, वचन और कर्म में, विचार और आदर्श में, अभिन्नता थी। दूसरों के प्रति वे वही व्यवहार रखते थे जिसकी दूसरों से आशा करते थे। उनकी वाणी में निम्नांकित श्लोक बहुधा मुखरित हुआ करता था—[2]

लज्जागुणौघजननीं जननीमिवस्यामत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम्।
तेजस्विनः सुखमसूनपि मुञ्चन्ति सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्॥

उनकी न्यायप्रियता इतनी ऊँची थी कि अपनी भी सच्ची आलोचना सुनकर वे प्रसन्न होते थे। २७. ५. १९१० ई० को पद्मसिंह शर्मा को लिखा था—

"इस हफ्ते का भारतोदय अवश्य मनोरंजक है। कुछ पढ़ लिया। बाकी को भी पढ़ूंगा। 'शिक्षा' की समालोचना के लिए धन्यवाद। खूब है। पढ़ कर चित्त प्रसन्न हुआ। पर आप

---

१ दौलतपुर में रचित गुप्त जी का पत्र

२ द्विवेदी मीमांसा पृ० २३२

का माफी मागना अनुचित हुआ [1]

जब वैयाकरण कामताप्रसाद गुरु ने द्विवेदी जी के 'राजे', 'योद्धे', 'जुदा जुदा नियम', 'हजारहा' आदि चिन्त्य प्रयोगों की चर्चा की तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया--आप मेरे जिन प्रयोगों को अशुद्ध समझते हैं उनकी स्वतन्त्रता से समालोचना कर सकते हैं।[2] वे रिश्वत, झूठ आदि से डरने वाले धर्म भीरु थे। इस कथन की पुष्टि अधोलिखित पत्र से हो जाती है--

"श्रीमन्,

मैं रिश्वत देना नहीं चाहता।'''मैं झूठ बोलने से डरता हूँ। यह मुझे न करना पड़े तो अच्छा हो।'''[3]

सम्पादक, आनरेरी मुंसिफ और ग्राम-पंचायत के सरपंच के जीवन-काल में उन्हें न जाने कितने प्रलोभन दिए गए। द्विवेदी जी ने उन सबको ठुकरा कर कर्तव्य और न्याय की रक्षा की, उन पर तनिक भी आँच न आने दी। सम्पादनकाल में अपने हानिलाभ का ध्यान न रखकर सदा ही 'सरस्वती' के स्वामी और पाठकों का ध्यान रखा। न्यायाधीश के पद से, न्यायाधिकरण में व्यवहार चाहने वालों के पाप और पुण्य को निष्पक्ष भाव से न्याय की तुला पर तोला। सामाजिक शिष्टाचार और कृत्रिमता से दूर रह कर उन्होंने जीवन की सचाई को ही अपना ध्येय माना। दब कर किसी से बात नहीं की, क्योंकि उनमें स्वार्थ की भावना न थी। द्विवेदी जी की आलोचनाएँ उनकी निर्भीकता, स्पष्टता और सत्यवादिता प्रमाणित करती हैं। अपनी कर्तव्यपरायणता और न्यायनिष्ठा के कारण ही वे अनेक सामयिक महानुभावों के शत्रु बन गये। यहाँ तक कि अध्ययनागार में भी उन्हें आत्मरक्षा के लिए तलवार, बन्दूक आदि शस्त्रास्त्र रखने पड़े।

द्विवेदी जी सिद्धान्त और शुद्धता के पक्षपाती थे।[4] वे प्रत्येक कार्य में व्यवस्था, नियम-

---

१ 'सरस्वती', नवम्बर, १९४० ई०।

२ 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० १३४, ३५।

३ 'सरस्वती', जुलाई १९४० ई०, पृ० ७४।

४ मेटन प्रेस, लन्दन के एक Indian Empire number प्रकाशित हो रहा था। कविता-विभाग के उप सम्पादक ने द्विवेदी जी से उनकी रचना माँगी। उक्त महोदय ने पत्र में द्विवेदी जी का नाम लिखा था Mahabur Prasad Devedi कविता भेजते हुए द्विवेदी जी ने उनसे निवेदन किया—

"If you accept it, please see that it is correctly printed, and send me a copy of the publication containing it. Also see that my name

मितता, अनशासन और काल का पालन करते थे आवश्यक तथा सार्थक पत्रों का उत्तर लौटती डाक से देते और निरर्थक एवं अनावश्यक पत्रों के विषय में मौनधारण कर लेते थे उनके हस्तगत सभी पत्रों पर नोट और तारीख सहित हस्ताक्षर हैं। जिस पत्र का उत्तर नहीं देना होता था उस पर No Reply लिख दिया करते थे। अनुशासन के इतने भक्त थे कि एक बार जूते का नाप भेजना था तो पत्र का लिफाफा अलग भेजा और नाप का धागा अलग।[1] अव्यवस्था और अशुद्धता उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं थी। वस्तुओं से ठसाठस भरा हुआ कमरा भी सदैव साफ सुथरा रहता था। वे अपने कमरे, सामान और पुस्तकों आदि की सफाई अपने हाथ से करते थे। प्रत्येक वस्तु अपने निश्चित स्थान पर रखी जाती थी। कलम से कुछ लिखने के बाद उसकी स्याही पोंछ कर रखते थे। वस्तुओं का तनिक भी हेर फेर उन्हें खल जाता था। एक बार उनकी धर्मपत्नी ने थाली में रखे गए पदार्थों का नियमित क्रम भंग कर दिया तो उन्हें भर्त्सना सुननी पड़ी।[2] रवीन्द्रनाथ की गल्पों का एक संग्रह विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक को देते हुए कहा था—'इतना ध्यान रखिएगा कि न तो पुस्तक में कहीं कलम या पेंसिल का निशान लगाइयेगा, न स्याही के धब्बे पड़ने दीजिएगा और न पृष्ठ मोड़िएगा[3]'।

द्विवेदी जी की दिनचर्या बंधी हुई थी। झाँसी में वे बहुत सवेरे उठकर संस्कृत-ग्रन्थों का अवलोकन करते थे। फिर चाय पीकर ७ से ८ तक एक महाराष्ट्र पंडित से कुछ ग्रन्थों के बारे में पूछताछ करते थे। तदनन्तर बँगला, संस्कृत, गुजराती आदि की पत्रिकाओं का अवलोकन करते और स्वयं भी थोड़ा बहुत लिखते थे। लगभग १० बजे भोजन करके दफ्तर जाते थे। करीब दो बजे जलपान कर के अँगरेजी अखबार पढ़ते रहते और जो काम आता जाता था उसे समाप्त करते थे। लगभग चार पाँच बजे घर आते, हाथ मुँह धोते, कपड़े बदलते, द्वार पर बैठ जाते और आगत जनों से वार्तालाप करते थे। घंटे डेढ़ घंटे मनोरंजन करके पुस्तकावलोकन करते और फिर नव दस बजे सोने चले जाते थे।[4] उनके अफसरों ने उनकी पदोन्नति करके उन्हें अन्य स्थानों पर भेजना चाहा परन्तु इस भय से कि दिनचर्या और नियमितता में कहीं विघ्न न हो जाय, उन्होंने बराबर अस्वीकार किया।

---

is correctly spelt as shown below.

16. 6. 25."

द्विवेदी जी के पत्र की रूप रेखा, का० ना० प्र० सभा कार्यालय।

१. 'सरस्वती', भाग ४० सं० २, पृ० १४४, ४५।

२. ,, ,, ,, ,, १४५।

३. , १६१

४ ,, १७१

दौलतपुर म प्रतिदिन प्रात काल उठ कर शौचादि स निवृत्त होकर कुछ दूर खेतो की ओर टहलत थ लौट कर सफाई करत थ फिर बारह बज तक आवश्यक चिट्ठी पत्रिया का उत्तर देते, सम्मत्यर्थ आई हुई पुस्तको और दो चार समाचार पत्रो का अवलोकन करते थे। दोपहर के समय पुनः शौच को जाते और तब स्नान करते थे। भोजनोपरान्त पत्रपत्रिकाएं पढते थे। प्रायः दो बजे के बाद मुकदमे देखते थे। मुकदमो के अभाव में किंचित् विश्राम करके अखबार भी पढा करते थे। सन्ध्या समय चार बजे के बाद अपने बागो और खेतों की ओर घूमने जाते, लौट कर थोडी देर तक द्वार पर बैठते, कोई आ जाता तो उससे बातें करते, तदनन्तर सोने चले जाते थे।[1]

यदि कभी उनके मुँह से यह निकल गया कि आप के घर अमुक दिन अमुक समय पर आऊँगा तो विघ्नसमूहो के होते हुए भी वचन का पालन करते थे। ज्येष्ठ मास के अपराह्न में भयंकर लू की अवहेलना करके कानो में दुपट्टा लपेटे,छाता लिए हुए ढाई कोस-पैदल चल कर देवीदत्त शुक्ल के घर पहुँच जाया करते थे।[2]

एक बार एक आई सी. एस. महोदय उनसे मिलने गए। द्विवेदी जी का मिलने का समय नहीं हुआ था। उन महाशय को आधे घंटे प्रतीक्षा करनी पडी। एक साधारण व्यक्ति के असाधारण कार्यक्रम पर वे अत्यंत अप्रसन्न हुए। द्विवेदी जी ने इसकी तनिक भी परवाह न की। कदाचित् इसी के परिणामस्वरूप जिलाधीश महाशय ने द्विवेदी जी को,'सरस्वती' के विज्ञापनो के बहाने, दंड देने का असफल प्रयास किया था।[3] बाबू चिन्तामणि घोष ने द्विवेदी जी की प्रशंसा करते हुए एक बार कहा था—'हिन्दुस्तानी सम्पादकों में मैंने वक्त के पाबन्द और कर्तव्यपालन के विषय में दृढप्रतिज्ञ दो ही आदमी देखे हैं, एक तो रामानन्द बाबू और दूसरे आप।'[4]

द्विवेदी जी की असामान्य सफलता का एक मात्र रहस्य है उनका दृढ संकल्प और अध्यवसाय। एक अकिंचन ब्राह्मण की सन्तान ने, जिसके घर में पेट भरने के लिए भोजन और तन ढकने के लिये वस्त्र नही था, चौथाई शताब्दी तक दस करोड जनता का एकातपत्र

---

१. 'द्विवेदी-मीमांसा', पृ० २१८।

२ 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० २०५।

३. इसकी चर्चा आगे चल कर 'साहित्यिक संस्मरण' अध्याय में की गई है।

४ द्विवेदी-लिखित 'बाबू चिन्तामणि घोष की स्मृति'

साहित्यिक शासन किया—यह उसके अदम्य उत्साह का ही परिणाम था। वे प्रकृति के नियमों की भाँति अटल थे। शैशव से लेकर स्वर्गवास तक उनका सम्पूर्ण जीवन प्रतिकूल परिस्थितियों के विरुद्ध एक घोर संग्राम था। मतभेदों, विरोधों, प्रतिद्वंद्वियों और आपत्तियों की आँधी, बवंडर और तूफान उन्हें उनके प्रशस्त पथ से तनिक भी डिगा न सके। तन के अस्वस्थ रहने पर भी उनका मन सदा स्वस्थ रहा। दीनतारहित स्वावलम्बन, आजीवन हिंदी सेवा के व्रत का निर्वाह, 'अनस्थिरता' आदि वादों में अपनी बात को अकाट्य सिद्ध करने, का सफल प्रयास, न्याय, सत्य और लोककल्याण के लिये निजी हानि और कष्टों की चिन्ता न करना आदि बातें उनके संकल्पपालन और अप्रतिम प्रतिभा की द्योतक हैं।

वे अकर्मण्यता के कट्टर शत्रु थे। ढीले ढाले व्यक्तियों को तो बहुधा अप्रसन्न द्विवेदी की फटकार सहनी पड़ती थी।

माता, पिता, पत्नी आदि अनेक सम्बन्धियों की मृत्यु का वज्रपात हुआ, परन्तु द्विवेदी जी ने संसार के सामने अपना रोना नहीं रोया। कितनी ही आधि-व्याधियों ने उन्हें निपीड़ित किया तथापि उन्होंने साहित्य-सेवा को क्षति नहीं पहुँचने दी। सारी वेदनाओं को धैर्य्य और उत्साह से सहा। उनके व्यक्तिगत और सार्वजनिक कार्यों, साहित्यिक और धार्मिक वादों को लेकर लोगों में उन्हें न जाने क्या-क्या कहा, गालियाँ तक बकीं। द्विवेदी जी हिमालय की भाँति अप्रभावित और अचल रहे। जहाँ आवश्यक समझा, सत्य और न्याय की रक्षा के लिये प्रतिवाद किया, अन्यथा मौन रहे। 'कालिदास की निरंकुशता'-विषयक विवाद के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने राय कृष्णदास को लिखा था—'मैं तो प्रतिवादों का उत्तर देने से रहा। आप उचित समझें तो किसी पत्र में दे सकते हैं।'[1] बदरीनाथ गीता-वाचस्पति को लिखा गया पत्र उनकी सहिष्णुता की विशेष व्यंजना करता है—

"...मेरी लोग निन्दा करते हैं या स्तुति, इस पर मैं कभी हर्ष, विषाद नहीं करता। आप भी न किया कीजिए। मार्गभ्रष्ट कभी न कभी मार्ग पर आ ही जाते हैं। मेरा किसी से द्वेष नहीं, न लखनऊ के ही किसी सज्जन से, न और ही किसी से। उम्र थोड़ी है। वह द्वेष और शत्रुभाव प्रदर्शन के लिए नहीं। मैं सिर्फ इतना करता हूँ कि जो मेरे हृदगत भावों को नहीं समझते, उनसे दूर रहता हूँ।"[2]

द्विवेदी जी सस्ती ख्याति के भूखे न थे। इसी कारण हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, अभिनन्दन,

---

१. २६. ६. ११ को लिखित, 'सरस्वती', नवम्बर, १९४४ ई०।
२ २१ ११ १४ को लिखित सरस्वती मई सन् १९४० ई०

मले आदि स दूर रहना चाहत थ उन्ह रायबहादुर' सरीखा उपाधिया की तनिक भी कामन न थी उन्हे सच्चा सुख और सन्तोष दूसरा म सुख और शान्ति म मिलता था उन्होन स्वय लिखा था—"जब बदलू चमार की जूड़ी उतर जाती है तब मै समझता हूँ कि मुझे कैसरे हिन्द का तमगा मिल गया।"[१] उन पर कुछ लिखने के लिए लोग द्विवेदी जी मे उनकी अपटु-डेट कृतियो के उल्लेखसहित उनकी संक्षिप्त जीवनी माँगते, परन्तु द्विवेदी जी उनके इन पत्रो का उत्तर तक न देते थे।[२]

मूर्यनारायण ने जब उनकी जीवनी लिखकर संशोधन के लिए उनके पास भेजी तब द्विवेदी जी ने उसमे काटछाट की, कुछ घटाया बढाया भी। कई बातें अपनी प्रशंसा मे भी जोडी, यथा "विद्याविषयक वादविवाद मे भी द्विवेदी जी की बराबरी शायद ही कोई और हिन्दी लेखक कर सके। हिन्दी पत्रो के पाठक इस बात को भी भली भाँति जानते हैं।" या "द्विवेदी जी हिन्दी संस्कृत दोनो भाषाओ के उत्तम कवि है।"[३] इन बातो को लेकर उन्हें आत्मश्लाघी कहना उचित नही। संशोधनरूप मे कलित इन पंक्तियों का कारण आत्मप्रशंसा न होकर सच्चे शिल्पक की सुधारक-मनोवृत्ति ही है।

द्विवेदी जी शिष्टाचार के पूरे पालक थे। जब कोई उनके पास जाता तो अपनी डिबिया मे दो पान उसे देते और बात चीत समाप्त होने पर फिर दो पान देते जो इस बात का संकेत होता कि अब आप जाइये।[४] अपने प्रत्येक अतिथि की शुश्रूषा वे आत्मविस्मृत होकर करते थे। जुही मे जब केशवप्रसाद मिश्र सोकर उठे तो देखा कि द्विवेदी जी स्वयं लोटे का पानी लिए हुए खड़े है। मिश्र जी लज्जित हो गए। द्विवेदी जी ने उत्तर दिया - वाह! तुम तो मेरे अतिथि हो।"

उनके शिष्टाचार में किसी प्रकार की मायिकता या आडम्बर नहीं था। वे वास्तविक अर्थ मे शिष्ट आचार के समर्थक थे। किसी की थोडी भी अशिष्टता उन्हें खल जाती थी। एक बार वे कामताप्रसाद गुरु से बातें कर रहे थे। गुरु जी बीच ही मे बोल उठे। द्विवेदी जी ने चेतावनी दी—आप मे बातचीत करना कठिन है। गुरु जी नतमस्तक हो गए।[५]

१ 'द्विवेदी-मीमांसा', पृ० २७५ पर उद्धृत।
२. दौलतपुर में रचित वैद्यनाथ मिश्र विह्वल का पत्र, २५. ४. २६।
३. द्विवेदी जी के पत्र, बंडल ३ च, काशी नागरी प्रचारिणी सभा का कार्यालय।
४. 'द्विवेदी-मीमांसा', पृ० २३।
५. 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० १८६।

दत्त शुक्ल, हरिभाऊ उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, केदारनाथ पाठक, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि ने उनके शिष्टाचार की भूरि भूरि प्रशंसा की है।[1]

द्विवेदी जी सम्भाषणकला में भी पटु थे। वार्तालाप के समय बीच बीच में हिन्दी, संस्कृत, उर्दू आदि के सुभाषितों का बड़ा ही चुभता हुआ सार्थक प्रयोग करते थे। उनके भाव-पूर्ण उद्गारों—'अनुमोदन का अन्त', 'कौटिल्य कुठार', 'सम्पादक की विदाई', द्विवेदी-मेले के समय आत्मनिवेदन आदि—में यह शैली सौन्दर्य की सीमा पर पहुँच गई है। उनकी रचनाओं में सर्वत्र ही प्रभावशाली वक्ता का मनोहर स्वर सुनाई पड़ता है।

द्विवेदी जी बड़े ही वत्सल और प्रेमी थे। बच्चों के प्रति उनका स्नेह अगाध था। अपनी माता जी में इतनी श्रद्धा और उनके दुख सुख का इतना ध्यान रखते थे कि जब पन्द्रह रुपए की नौकरी करते थे तब भी पाँच रुपया मासिक उन्हें भेजा करते थे। उनके पत्नी-प्रेम का पावन प्रतीक स्मृति-मन्दिर तो आज भी विद्यमान है। अपनी विधवा सरहज के प्रति उनका स्नेह कम न था। अपने १९०७ ई० के मृत्यु-लेख[2] में उन्हें भी विशिष्ट स्थान दिया था। वृद्धावस्था में उनके परिवार में भानजा, भानजे की वधू, और एक लड़की थी। ये दूर के सम्बन्धी थे परन्तु द्विवेदी जी उन्हें आदर्श पिता की भाँति प्यार करते थे। वे पर-दुख-कातर और प्रेमी थे। सम्बन्धियों और मित्रों के बाल-बच्चों, आश्रित जनों और दास-दासियों तक की सहायता और पालना उन्होंने जिस स्नेह और उदारता से की वह सर्वथा श्लाघ्य है।

मित्र या भक्त के लिए उनके मन में संकोच का लेश भी नहीं था।[3] सम्बन्धियों के स्मरण मात्र से ही उनकी आँखें सजल हो जाती थीं। उनके विरोधी भी उनके प्रेमभाव के कायल थे। अपने समीप आने वालों को वे प्रेम से मोह लेते थे। केदारनाथ पाठक की चर्चा ऊपर हो चुकी है। पंडित हरिभाऊ उपाध्याय आदि ने भी द्विवेदी जी के वात्सल्य का मुक्तकंठ से गुणगान किया है— "सम्पादक, विद्वान्, आचार्य द्विवेदी को सारा हिन्दी-संसार जानता है। परन्तु महृदय, वत्सल पिता द्विवेदी को कितने लोग जानते होंगे? निश्चय ही सम्पादक द्विवेदी से यह पिता द्विवेदी अधिक महान् था।"[4]

---

१. इस सम्बन्ध में 'हंस', का 'अभिनन्दनांक', 'बालक' का द्विवेदी-स्मृत्यंक', 'द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ', 'साहित्य-सन्देश' का 'द्विवेदी-अंक' और 'सरस्वती' का 'द्विवेदी-स्मृति-अंक' विशेष द्रष्टव्य हैं।

२. काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय में रक्षित।

३. राय कृष्णदास को लिखित पत्र, 'सरस्वती', भा० ४५, सं० ४, पृ० ४६७।

४ 'सरस्वती' भा० ४० सं० २ पृ० ११८।

क पद उद्धृत करते हुए उन्होंने मात्र साहब की तीखी [illegible] आलोचना की।[1] पूर्वोक्त वक्तव्य के परिवर्द्धित रूप में द्विवेदी जी ने एक ग्रन्थ ही लिख डाला —'कौटिल्य-कुठार'।[2]

विवाद के उपरान्त भी बहुत वर्षों तक द्विवेदी जी ने सभा के घेरे में, लोगों के आग्रह करने पर भी, पदार्पण नहीं किया।[3] बहुतदिन बीत जाने पर श्यामसुन्दरदास ने पत्र लिखकर क्षमाप्रार्थना की और अपने अपराधों का मार्जन कराया।[4] बलवान् समय ने लोगों का मनोमालिन्य दूर कर दिया। जब द्विवेदी जी १९३१ ई० की जनवरी में काशी पधारे तब नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें अभिनन्दन-पत्र दिया। कुछ दिन बाद शिवप्रजन सहाय ने प्रस्ताव किया कि द्विवेदी जी की सत्तरवीं वर्षगाठ के शुभ अवसर पर उनके अभिनन्दनार्थ एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय।[5]

---

१. यह आलोचना काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित कतरनों में देखी जा सकती है।

२. काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित 'कौटिल्यकुठार', का अन्तिम अवच्छेद इस प्रकार है—

"'आपने अपने ही मुंह से अपने क्षत्रियत्व की घोषणा की है। यह बड़ी खुशी की बात है। इस वर्णाश्रमधर्म-हीन युग में कौन ऐसा अधम होगा, जिसे यह सुनकर आनन्द न हो कि आप अपना धर्म समझते हैं। हम आप को क्षत्रियकुलावतंस मानकर रघु, दिलीप, दशरथ, युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र और कर्ण की याद दिलाते हैं, और बड़े ही नम्रभाव से प्रार्थना करते हैं, कि हमारे लेखों में कही गई मूल बातों का रघु की तरह उदारता-पूर्वक युधिष्ठिर की तरह धर्मज्ञता-पूर्वक और हरिश्चन्द्र की तरह सत्यतापूर्वक विचार करें, और देखें, कि ब्राह्मणों के साथ आपने कोई काम ऐसा तो नहीं किया, जो इन क्षत्रिय शिरोमणियों को स्वर्ग में खटके। जिन ब्राह्मणों के लिए क्षत्रियों का यह सिद्धान्त था कि "मारत हू पा परिय तिहारे" उन्हीं ब्राह्मणों को सभा से निकालने की तजवीज़ में आप ने सहायता दी या नहीं? उन्हीं ब्राह्मणों की किताब का मुकाबला करने में आपने दूने से कुछ ज़ियादह शब्दों को प्रायः तिगुना बढ़ाया था नहीं? ब्राह्मणों की लिखी हुई पुस्तक उन्हीं को न दिखाना आपने न्याय्य समझा या नहीं? उन्हीं ब्राह्मणों के द्वारा की हुई सभा की सेवापर ख़ाक डालकर आपने उनसे चिट्ठियों तक का महसूल वसूल करके सभा की आमदनी बढ़ाई या नहीं? ..यदि आप को सचमुच ही पश्चात्ताप हो तो कहिए—पुनन्तु मां ब्राह्मणपादरेणवः। उस समय यदि आप के सारे अपराध सदा के लिए भुला कर क्षमापूर्वक आपका दृढालिंगन न करें तो आप उस दिन से हमें ब्राह्मण न समझिए।

३. राय कृष्णदास को द्विवेदी जी का पत्र २.१२.१९१०, 'सरस्वती', भाग ४५, सं० ४, पृ० ४९६

४ द्विवेदी जी के पत्र सं १९३ काशी नागरी प्रचारिणी सभा कार्यालय

५ त्रिवेदी ग्रन्थ भूमिका पृ

फाल्गुन सं० १९९८ में सभा ने द्विवेदी-अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन निश्चित करके अपनी गुणग्राहकता और हृदय की विशालता दिखलाई। सामग्री एकत्र की गई इंडियन प्रेस ने ग्रन्थ को निःशुल्क छापकर अपनी मैत्री और उदारता का परिचय दिया। वैशाख, शुक्ल ४, सं० १९९० को अभिनन्दनोत्सव सम्पन्न हुआ। अभिनन्दन के समय कुछ लोगों ने इस बात का भी प्रयत्न किया कि द्विवेदी जी काशी न जायँ और उत्सव असफल रहे। प्रत्येक विघ्न व्यर्थ सिद्ध हुआ। यहीं पर यह भी कह देना समीचीन होगा कि श्यामसुन्दर दास चाहते थे कि काशी विश्वविद्यालय द्विवेदी जी को डाक्टर की उपाधि दे। उत्सव के समय उन्होंने द्विवेदी जी से कहा कि आप अपना भाषण मालवीय जी की वक्तृता के पश्चात पढ़िए। अनुशासन-पालक द्विवेदी जी ने बिगड़ कर कहा कि यह कार्यक्रम में नहीं है। रामनारायण मिश्र से ज्ञात हुआ कि द्विवेदी जी के वक्तव्य का प्रभाव मालवीय जी पर अच्छा नहीं पड़ा।[1] कदाचित् इसीलिए द्विवेदी जी को डाक्टर की उपाधि नहीं मिली।

अभिनन्दनोत्सव के समय द्विवेदी जी ने एक बन्द लिफाफा सभा को दिया था और आदेश किया था कि यह लिफाफा और पत्रों के कुछ बंडल मेरे देहावसान के उपरान्त खोले जायँ। सभा ने उनकी आज्ञा का पालन किया। द्विवेदी जी का स्वर्गवास होने पर लिफाफा और बंडल खोले गए। लिफाफे में दो सौ रुपए थे जो द्विवेदी जी के निर्देशानुसार सभा के छोटे नौकरों को पुरस्कार और वेतन के रूप में वितरित कर दिए गए।[2] द्विवेदी जी के पत्र सभा के कार्यालय में आज भी सुरक्षित हैं।

जिस सभा ने द्विवेदी-कृत आलोचनाओं की निन्दा की थी, 'सरस्वती' को जलता हाकर भी जिसने उससे अपना सम्बन्ध तोड़ देने का कठोर आदेश किया था और अपनी पत्रिका में सरस्वती' की कविता को 'मही' कहकर उसकी प्रतिकूल आलोचना की थी, उसी सभा ने अपने आलोचक, दोषदर्शक महावीर प्रसाद द्विवेदी के अभिनन्दन की आयोजना की और उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। साहित्य-देवता के एकान्त उपासक की यथोचित अर्चना करके उसने अपने को, द्विवेदी जी और हिन्दी-संसार को धन्य प्रमाणित किया। जिस द्विवेदी जी ने एक दिन नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट की भयंकर आलोचना की थी अपनी टेक निभाने के लिये 'अनुमोदन का अन्त' करके सभा और 'सरस्वती' का सम्बन्ध विच्छिन्न कर दिया था, सभा द्वारा दी गई चेतावनी, उसके पत्र और कोर सिद्धान्त

---

१ श्यामसुन्दरदास की 'मेरी कहानी', सरस्वती, अगस्त, १९४१ ई०, पृ० १४९।

२. लेखकों के लिए दातव्य पुरस्कार पर ही द्विवेदी जी ने इतना प्रतिबन्ध लगाया था—

यह बात नहीं जचती

की छीछालेदर की थी, उसी द्विवेदी जी ने नागरी प्रचारिणी सभा को अपनी समस्त साहित्यिक सम्पत्ति का सच्चा उत्तराधिकारी समझा, अपना गृहपुस्तकालय, 'सरस्वती' की स्वीकृत-अस्वीकृत रचनाओं की हस्तलिखित मूल प्रतियां, समाचारपत्रों की साहित्यिक वादविवाद-सम्बन्धी कतरनें, पत्र आदि बहुत कुछ सामग्री सभा को दान करके अपना और सभा का गौरव बढ़ाया।

द्विवेदी जी और सभा के सम्बन्ध का इतिहास वस्तुतः द्विवेदी जी और श्यामसुन्दरदास—दो साहित्यिक महारथियों—के सम्बन्ध की कहानी है जिनके पारस्परिक प्रेमप्रदेश में ही नहीं संग्रामक्षेत्र में भी रस की धारा दृष्टिगत होती है। उनके संघर्ष की धारा असुन्दर प्रतीत होती हुई भी वास्तव में सुन्दर, पावन और कल्याणकारिणी है। उनके विवाद सामयिक थे, उनमें किसी भी प्रकार की नीचता या दुर्भाव नहीं था। इसके अकाट्य प्रमाण हैं—सभा द्वारा द्विवेदी जी का अभिनन्दन, सभा को दिया गया द्विवेदी जी का दान [१] और उससे भी महत्त्वपूर्ण है इन दोनों का पत्र-व्यवहार। [२]

अभिनन्दनोत्सव में पठित आत्मनिवेदन को द्विवेदी जी ने कई खंडों में विभाजित किया था। एक खंड का शीर्षक था 'मेरी रसीली पुस्तकें'। उसमें उन्होंने अपनी दो अप्रकाशित पुस्तकों—'तरुणोपदेश' और 'सोहागरात'—की चर्चा की थी। 'सोहागरात' के विषय में उन्होंने निवेदन किया था—"ऐसी पुस्तक जिसके प्रत्येक पद में रस की नदी नहीं तो बरसाती नाला ज़रूर बह रहा था। नाम भी मैंने ऐसा चुना जैसा कि उस समय उस रस के अधिष्ठाता को भी न सूझा था। ...आजकल तो वह नाम बाजारू हो रहा है और अपने अलौकिक आकर्षण के कारण निर्धनों को धनी और धनियों को धनाधीश बना रहा है। ... अपने बूढ़े मुँह के भीतर धंसी हुई ज़बान से आप के सामने उस नाम का उल्लेख करते हुए मुझे बड़ी लज्जा मालूम होगी, पर पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए आप पंचसमाजरूपी परमेश्वर के सामने शुद्ध हृदय से उसका निर्देश करना ही पड़ेगा। अच्छा तो उसका नाम था या है—'सोहागरात'।"

द्विवेदी जी की धर्मपत्नी ने उन पुस्तकों को अश्लील समझ कर छपने नहीं दिया। उनकी मृत्यु के उपरान्त भी उन्हें प्रकाशित करने में द्विवेदी जी ने अपना और साहित्य का कलंक समझा—"मेरी पत्नी ने तो मुझे साहित्य के उस पंकपयोधि में डूबने से बचा लिया आप भी मेरे उस दुष्कृत्य को क्षमा कर दें, तो बड़ी कृपा हो।"

---

१ द्विवेदी जी के दान की पूर्ण सूची परिशिष्ट संख्या १ में दी गई है

२ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय में रक्षित पत्र सं० ७१६ से १२४ तक

सोहागरात या बहूरानी की सीख के रचयिता कृष्णकान्त मालवीय के मित्रों ने उन्हें सुझाया कि अपने निवेदन में द्विवेदी जी ने आप पर आक्षेप किया है। अभिनन्दनोत्सव के समय द्विवेदी जी ने पं० मदनमोहन मालवीय को बोलने का समय नहीं दिया था। सम्भवतः इस कारण भी कृष्णकान्त मालवीय द्विवेदी जी से असन्तुष्ट थे। उन्होंने १५ जून १९३३ ई० के 'भारत' में 'मेरी रसीली पुस्तकें' लेख लिखा जिसमें द्विवेदी जी की उक्तियों का खंडन किया—"....द्विवेदी जी की इन बातों को पढ़कर विद्वानों की दृष्टि में हिन्दी के विद्वानों का मान कम होगा, वे कहेंगे कि ये कहां पड़े हुये हैं। संसार के साहित्य को ये पाप और पंकपयोधि समझते हैं।" द्विवेदी जी इस अवसर पर यह सब बहकर जब कि चारों ओर से विद्वानों की दृष्टि उनकी ओर फिरी हुई थी, हिन्दी-साहित्यसेवियों की हंसी न कराते, उन्हें कूपमंडूक न सिद्ध करते तो अच्छा था। हिन्दी वाले जिन्हें आचार्य कहकर पूजते हैं, उसके विचार ये हैं, यह जानकर संसार क्या कहेगा?"

मालवीयजी का यह आक्षेप अतिरंजित और असंगत था। अपनी 'सोहागरात' के प्रति द्विवेदी जी को किसी भी प्रकार की दृढ़ीभूत धारणा रखने का अधिकार था। और उनकी पुस्तक को देखे या उसके विषय में ज्ञान प्राप्त किए बिना उसकी आलोचना करना मालवीय जी की अनधिकार चेष्टा थी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि उनकी 'सोहागरात' प्रकाशित हो जाती तो वे साहित्य के पंकपयोधि में डूब जाते। यदि मालवीय जी उनकी पुस्तक देख लिए होते तो इस प्रकार की लोचनहीन आलोचना कदापि न करते।

द्विवेदीजी ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। २४ २५ जून, ३३ ई० के 'भारत' में उन्होंने 'क्षमाप्रार्थना' प्रकाशित की जो आद्योपान्त व्यंग्योक्तियों और व्यक्तिगत आक्षेपों से व्याप्त थी। 'सोहागरात या बहूरानी की सीख' के नामकरण, उसके लेखक के उद्देश्य आदि की आलोचना तीखी अतएव अप्रिय, किन्तु सत्य थी। बारम्बार क्षमाप्रार्थना करके अपने को मूर्ख और मालवीय जी को विद्वान्, अपने को टकापंथी और उनको त्यागशील आदि कहकर उन्हें लज्जित करने का अमोघ प्रयास किया। २.७.३३ई० के 'भारत' में मालवीय जी ने 'क्षमाप्रार्थना का वितंडावाद' प्रकाशित किया। उस प्रत्युत्तर में उन्होंने द्विवेदी जी के क्षमाप्रार्थना ढंग की उचित आलोचना करके अन्त में निवेदन किया—"मैंने जो कुछ लिखा उसके लिए मैं आप से विनीतभाव से क्षमा मांगता हूँ। ...आशा है आप उदारता से विचार करेंगे और यह सब लिखने के लिए मुझे क्षमा कर देंगे अब इस सम्बन्ध में मैं कुछ लिखूंगा भी नहीं।"

द्विवेदी जी ने उनकी प्रार्थना मौनभाव से स्वीकार कर ली

द्विवेदी जी के साहित्य सम्मेलन सम्बन्धी पत्र व्यवहार से सिद्ध है कि लोगों के बारम्बार आग्रह करने पर भी उन्होंने सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकृत नहीं किया[१] उनके निवेदन को अस्वीकृत करते हुए द्विवेदी जी तारों के पेटेन्ट उत्तर दिया करते थे– अस्वस्थता के कारण स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। क्या सम्मेलन के लिए द्विवेदी जी सर्वदा ही अस्वस्थ रहे? जो व्यक्ति अस्वस्थ रहकर भी असाधारण और घोर परिश्रम द्वारा 'सरस्वती' का इतना सुन्दर सम्पादन कर सकता था, क्या वह सम्मेलन के सभापतित्व के लिए अपना कुछ समय और शक्ति नहीं दे सकता था? उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, 'सरस्वती' का कार्य ही उनकी शक्ति से अधिक था, आदि कारण यदि निराधार नहीं तो गौण अवश्य थे। उनके पत्र की निम्नांकित रूपरेखा ध्यान देने योग्य है––

"....मेरे सिवा किसी अन्य व्यक्ति के आसीन होने से सभापति के आसन का यथेष्ट गौरव न होगा–इत्यादि आपकी उक्तियां भ्रमजात नहीं तो कौतूहलवर्द्धक अवश्य है। यदि मैं भूलता नहीं तो कलकत्ते में पहले भी सम्मेलन हो चुका है और उस सम्मेलनका अधिपति कोई और ही था पर न तो कलकत्ते में हिन्दीप्रेमी निराश ही हुए, न हिन्दी साहित्य की लाज ही गई और न बंगला के विद्वानों की दृष्टि में सम्मेलन के सभापति के पद का गौरव कम हुआ। अपनी इस धारणा के प्रतिकूल मुझे तो किसी का कोई लेख या किसी का कोई वक्तव्य पढ़ने या सुनने को नहीं मिला। मुझे तो सब तरफ से सफलता ही सफलता के समाचार मिले। अतएव आप का भय निर्मूल जान पड़ता है।...स्वागतकारिणी सभा खुशी से किसी अन्य व्यक्ति को सभापति वरण करे।

सम्मेलन के सभापति का पद प्राप्त करने के लिए अपने मनोनीत सज्जनों के पक्षपातियों में, गत वर्ष तक, परस्पर व्यंग्यवचनों की बौछार, अशिष्टाचार, आक्षेप-प्रक्षेप और यदाकदा गाली गलौज तक होता आया है। ईश्वर ने बड़ी कृपा की जो मेरा नैरोग्य नाश करके मुझे ऐसे पद की प्राप्ति के योग्य ही न रक्खा।

विनेय

महावीर प्रसाद द्विवेदी"[२]

इस पत्र के अन्तिम दो वाक्य विशेष महत्व के हैं। उनसे स्पष्ट प्रमाणित है कि सम्मेलन

---

१. क. नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित पत्र-व्यवहार का बंडल।
ख. द्विवेदी जी के पत्र और अनेक पत्रों की रूप-रेखाएँ,
" " " संख्या ३४, ३५, ४७, आदि, नं० ८० सभा कार्यालय काशी।

२ द्विवेदी जी के पत्र की रूप रेखा १० २ २१ ई० पत्र ,
काशी नागरी प्रचारिणी सभा

के उपयुक्त दूषित वातावरण के प्रति द्विवेदी जी के मन में अत्यन्त घृणा थी। इस प्रकार के विडम्बनापूर्ण बाजारू जीवन और उसकी थुक्का फजीहत से दूर रहकर वे एकान्त भाव से साहित्यसेवा करना चाहते थे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का तेरहवां अधिवेशन कानपुर में होने वाला था। द्विवेदी-जी सार्वजनिक भीड़भड़क्के और सभा-समाजों से विरक्त जीव थे। उन्हें साहित्य-सम्मेलन के जनसम्पर्क में खींच लाना सहज न था। स्वागतकारिणी समिति का अध्यक्ष बनाने के विचार से लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि उन्हें मनाने गए। यद्यपि 'आर्यमित्र' के सम्पादक वाजपेयीजी ने आर्यसमाज की ओर से द्विवेदी जी के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा और छापा था तथापि उदार-हृदय द्विवेदी जी ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। उन लोगों के विशेष आग्रह पर किसी प्रकार अनुमति दे दी।[1]

३० मार्च, १९३३ ई० को उन्होंने स्वागताध्यक्ष-पद से अपना भाषण पढ़ा। शैली की दृष्टि से उनका यह भाषण उनकी समस्त रचनाओं में अपना निजी स्थान रखता है जिसके समकक्ष उनका कोई अन्य लेख या भाषण नहीं आ सका है। उनकी भाषा और शैली का आदर्श इसी में है। आरम्भ में उपचार और कानपुर की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहने के अनन्तर उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य की सभी प्रधान आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के उपायों की ओर हिन्दी-जगत् का ध्यान आकृष्ट किया।

साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों में बहुत दिनों से द्विवेदी जी का अभिनन्दन करने की चर्चा चल रही थी। श्रीनाथ सिंह ने प्रस्ताव किया कि प्रयाग में एक साहित्यिक मेले का आयोजन करके उसमें द्विवेदीजी का अभिनन्दन किया जाय।[2] श्री चन्द्र शेखर और कन्हैयालाल जी ऐड-वोकेट ने उसका समर्थन किया।[3] सन् १९३२ ई० की ४ सितम्बर की बैठक में गोपाल शरण सिंह, कन्हैयालाल धीरेन्द्र वर्मा, रामप्रसाद त्रिपाठी आदि ने मेले का निश्चय किया।[4] द्विवेदी जी ने अपनी राय मेले के विरुद्ध दी।[5] इसका समाचार सुनकर उन्हें कष्ट भी हुआ।[6] इस मेले को उन्होंने अपना उपहास समझा और रोकने की आज्ञा दी।[7] बहुत वादविवाद और

---

१. 'सरस्वती', भाग ४०, संख्या २, पृष्ठ १५०।
२. 'भारत', ११. ८. ३२ ई०।
३. साप्ताहिक 'प्रताप', २८. ८. ३२ ई० और 'लीडर', ८. ९. ३२ ई०।
४. 'प्रताप', ९ ९. ३२ ई०।
५. दौलतपुर में रक्षित देवीदत्त शुक्ल का पत्र, २०. १०. ३२ ई०।
६. दौलतपुर में रक्षित श्रीनाथ सिंह का पत्र, २८. १०. ३२ ई०।
७. दौलतपुर में रक्षित कन्हैयालाल का पत्र ३० १० ३२ ई०

लिखा-पढ़ी के पश्चात उन्होंने अपनी सम्मति दे दी [1]।

४.५.६. मई, १९३३ ई० को मेले का उत्सव मनाया गया। पं० मदनमोहन मालवीय ने उद्घाटन और डा० गंगानाथ झा ने सभापतित्व किया। सी० वाइ० चिन्तामणि, जस्टिस उमाशंकर वाजपेयी आदि महान व्यक्ति भी मंच पर विराजमान थे। अपने भाषण में डा० झा ने द्विवेदी जी को अवरुद्ध कंठ से अपना गुरु स्वीकार किया और उनका चरण-स्पर्श करने के लिए झुक पड़े। द्विवेदी जी झट कुर्सी छोड़कर अलग जा खड़े हुए। समस्त जनता इस दृश्य को मन्त्रमुग्ध की भाँति देखती रही। आवेग शान्त होने पर द्विवेदी जी ने कहा—"भाइयो, जिस समय डाक्टर गंगानाथ झा मेरी ओर बढ़े, मैंने सोचा, यदि पृथ्वी फट जाती और मैं उसमें समा जाता तो अच्छा होता।"[2]

पश्चिमीय देशों के लिए यह मेला कोई नूतन वस्तु भले ही न हो परन्तु हिन्दी-संसार के लिए तो यह निराला दृश्य था। हिन्दी-प्रेमियों ने तो इस मेले का आयोजन किया था अपने साहित्य के अनन्य पुजारी द्विवेदी जी की पूजा करने के लिए परन्तु अपने वक्तव्य में द्विवेदी जी ने इसका कुछ और ही कारण बतलाया—"आप ने कहा होगा—बूढ़ा है, कुलद्रुम है, आधि-व्याधियों से व्यथित है, निःसहाय है, सुतदार और बन्धु-बान्धवों से रहित होने के कारण निराश्रय है। लाओ, इसे अपना आश्रित बना लें। अपने प्रेम, अपनी दया और अपनी सहानुभूति के सूचक इस मेले के साथ इसके नाम का योग करके इसे कुछ सान्त्वना देने का प्रयत्न करें, जिससे इसे मालूम होने लगे कि मेरी भी हितचिन्तना करने वाले और शान्तिदान का सन्देश सुनाने वाले सज्जन मौजूद हैं"।[3] द्विवेदी जी अपनी शालीनता और सृजुता की रक्षा के लिए चाहे जो कुछ कहें, द्विवेदी-मेले के प्रबन्धकों ने इस अभूतपूर्व योजना द्वारा अपने साहित्य-प्रेम का परिचय देकर हिन्दी का मस्तक ऊँचा किया।

कवि-सम्मेलन के अवसर पर 'कुछ छिछोरे छोकरों'[4] के विघ्न करने पर भी मेले की सफलता में कोई अन्तर नहीं पड़ा। द्विवेदी जी के आदेशानुसार 'मातृभाषा की महत्ता' विषय पर एक निबन्ध-प्रतियोगिता की गई और उनका प्रदत्त सौ रुपए का पुरस्कार ९ मई, ३४ ई० को सैयद अमीर अली मीर को प्रदान किया गया।[5]

---

१. क. दौलतपुर में रक्षित कन्हैयालाल का पत्र ६. ११. ३२ ई०।
ख. मेले के समय द्विवेदी जी का भाषण, पृष्ठ ८।

२. 'सरस्वती', भाग ४०, संख्या २, पृष्ठ १६४।

३. मेले के अवसर पर द्विवेदी जी का भाषण, पृ० ६।

४. भारत १ ६ ३३ ई०

५. भारत १६ ५ ३४ ई०

अपने शिमला अधिवशन म हिन्दी-साहित्य ने द्विवेदी जी का साहित्य वाचस्पति' की उपाधि दी।[1]

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी की साहित्यिक कृतिया अधोलिखत है--

पद्य:

अनूदित

१. विनय-विनोद—रचनाकाल १८८६ ई०, भर्तृहरि के 'वैराग्यशतक' का दोहो में अनुवाद।
२. विहार-वाटिका—१८९० ई०, संस्कृत वृत्तो मे जयदेव के 'गीतगोविन्द का संक्षिप्त भावानुवाद।
३. स्नेहमाला—१८९० ई०, भर्तृहरि के 'शृंगारशतक' का दोहो मे अनुवाद।
४. श्रीमहिम्नस्तोत्र—१८८५ ई० मे अनूदित किन्तु १८९१ ई० मे प्रकाशित, संस्कृत के 'महिम्नस्तोत्रम्' का संस्कृत वृत्तो मे सटीक हिन्दी अनुवाद।
५. गंगालहरी—१८९१ ई०, पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' का सवैयो मे अनुवाद।
६. ऋतुतरंगिणी—१८९१ ई०, कालिदास के 'ऋतुसंहार' की छाया लेकर 'देवनागरी-छन्दों मे षड्ऋतु वर्णन'।

उपर्युक्त कृतियों की द्विवेदी-लिखित भूमिकाओं से सिद्ध है कि उन्होंने मूल संस्कृत रचनाओं की काव्यमाधुरी का आस्वाद कराने और हिन्दी मे सस्कृत वृत्तो का प्रचार कराने के लिए ही ये अनुवाद प्रस्तुत किए।

७. सोहागरात—(अप्रकाशित) १९०० ई०, अंग्रेज कवि बाइरन के "ब्राइडल नाइट" का छायानुवाद।
८. कुमारसम्भवसार—१९०२ ई०, कालिदास के 'कुमारसम्भवम्' के प्रथम पाच सर्गों का पद्यात्मक साराश। खडीबोली पद्य में कालिदास के भावों की व्यंजना का आदर्श उपस्थित करने के लिए ही द्विवेदी जी ने इस अनुवाद-पुस्तक की रचना की थी।

मौलिक

१. देवी-स्तुति-शतक—१८९२ ई०, गणात्मक छन्दो मे चंडी की स्तुति।
२. कान्यकुब्जलीलातम्—१८९८ ई०, कान्यकुब्ज-समाज पर तीखा व्यंग्य।
३. समाचारपत्रसम्पादकस्तव:—१८९८ ई०, सम्पादकों पर आक्षेप।
४. नागरी—१९०० ई०, नागरी-विषयक चार कविताओं का संग्रह।

१ साहित्य सम्मेलन का पत्र मिती सौर १ ५ १९९५ दौलतपुर में रक्षित

५ काव्यमंजूषा १६०३ ई० १८६७ ई० से १६०२ ई० तक रचित संस्कृत और हिन्दी की मौलिक फुटकल कविताओं का संग्रह ।

६. कान्यकुब्ज-अबला-विलाप—१६०७ ई०, कान्यकुब्ज-समाज की विवाह-सम्बन्धी कुप्रथाओं पर आक्षेप ।

७. सुमन—१६२३ ई०, 'काव्यमंजूषा' का संशोधित संस्करण ।

८. द्विवेदी-काव्यमाला—१६४० ई०, द्विवेदी जी की उपर्युक्त रचनाओं और प्रायः अन्य समस्त कविताओं का संग्रह ।

६ कविता-कलाप—१६०६ ई०, द्विवेदी जी द्वारा सम्पादित, महावीरप्रसाद द्विवेदी, राय देवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम 'शंकर', कामता प्रसाद गुरु और मैथिली शरण गुप्त की कविताओं का प्रायः सचित्र संग्रह ।

गद्य

अनूदित

१ भामिनी-विलास—१८६१ ई०, संस्कृत-कवि पंडितराज जगन्नाथ की संस्कृत पुस्तक 'भामिनी-विलास' का समूल अनुवाद । यह द्विवेदी जी की प्रारंभिक गद्यभाषा का एक सुन्दर उदाहरण है ।

२ अमृत-लहरी—१८६६ ई०, उक्त पंडितराज के 'यमुनास्तोत्र' का समूल भावानुवाद ।

'भामिनी-विलास' और 'अमृत-लहरी' की भूमिकाओं से स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने केवल हिन्दी जानने वालों को मूल संस्कृत रचनाओं की सरस वाणी की आनन्दानुभूति कराने के लिए ही ये अनुवाद किए । सौन्दर्य की दृष्टि से इन कृतियों का कोई महत्त्व नहीं है किंतु द्विवेदी जी की भाषा के विकास का अध्ययन करने में ये विशेष उपयोगी हैं । आज व्याकरण की दृष्टि से असंगत कही जाने वाली तत्कालीन अनेक व्यापक प्रवृत्तियों का इन रचनाओं में दर्शन होता है ।

३ बेकन-विचार-रत्नावली—१८६६ ई० में लिखित और १६०१ ई० में प्रकाशित, अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक बेकन के निबन्धों का अनुवाद ।

बेकन के ५६ निबन्धों में से २३ को द्विवेदी जी ने यह कह कर छोड़ दिया है कि उनका विषय वस्तुतः ऐसा है जो एतद्देशीय जनों को तादृश रोचक नहीं है । उनका यह कथन युक्तियुक्त नहीं है । 'Of Ambition, Of Fame' आदि निबन्ध पर्याप्त सुंदर तथा उपयोगी हैं । और अनूदित होने चाहिएँ थे । पादटिप्पणी में दिए गए ऐतिहासिक नामों के संक्षिप्त विवरण और पुस्तकान्त में व्यक्तिवाचक नामों की सूची ने अनुवाद की उपयोगिता को और भी बढ़ा

दिया है वक्तव्य के निबन्धों और संस्कृत के सुभाषित श्लोकों का एकवाक्यता दिखलाने लिए प्रत्येक निबन्ध के शीर्ष पर एक या दो श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं। इन श्लोकों निबन्धों की भाँति विचारात्मक सामग्री नहीं है, ये विचारों के निष्कर्षमात्र हैं।

४ शिक्षा—१९०६ ई०, प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर की 'एजूकेशन' नामक पुस्तक के अनुवाद। उस समय समूचे देश में शिक्षा की दुर्दशा थी। मराठी, बंगला आदि में तो इस विषय पर ग्रन्थरचना हो रही थी किन्तु हिन्दी इससे वंचित थी। मौलिक रचनाओं की प्रतीक्षा न करके द्विवेदी जी ने अनुवाद के द्वारा ही इस अभाव की पूर्ति का प्रयास किया। इस ग्रन्थ में बुद्धि, शरीर और चरित्र की समंजस शिक्षा की विस्तृत विवेचना की गई है। ठीक ठीक अर्थग्रहण कराने के लिए अनुवादक द्विवेदी ने व्याख्या के बीच में ही व्यक्तिवाचक नामों का कुछ परिचय भी दे दिया है। उन्होंने जिन नामों को परिवर्तनीय समझा है उनके स्थान पर हिन्दी-भाषियों के परिचित भारतीय नामों का प्रयोग किया है। अपने विचारों को पुष्टि और प्रामाणिक अभिव्यक्ति करने के लिए आवश्यकतानुसार अपने यहाँ के प्राचीन तथा अर्वाचीन उदाहरणों की योजना की है। मूल लेख के गूढ़ भावों को उन्होंने 'अर्थात्' आदि के प्रयोगों द्वारा सविस्तार समझाने की चेष्टा की है। पारिभाषिक कठिन शब्दों को या तो निकाल दिया है या आवश्यकतानुसार उस अवच्छेद के आशय को मनमानी शब्दों द्वारा व्यक्त किया है।

५ स्वाधीनता—१९०७ ई० जॉन स्टुअर्ट मिल के 'ऑन लिबर्टी' निबन्ध का अनुवाद इस ग्रन्थ में प्रस्तावना और मूल लेखक की जीवनी के पश्चात् विचार और विवेचना की स्वाधीनता, व्यक्तिविशेषता, व्यक्ति पर समाज के अधिकार की सीमा और इनके प्रयोग की समीक्षा है। मिल के दीर्घ जटिल और क्लिष्ट वाक्यों के स्थान पर द्विवेदी जी के वाक्य छोटे, सरल और सुबोध हैं। इस भावानुवाद की भाषा उर्दूमिश्रित हिन्दी और शैली वक्तृतात्मक तथा 'अर्थात्' आदि प्रयोगों से व्याप्त है।

६ जल चिकित्सा—१९०७ ई०, जर्मन लेखक लुई कोने की जर्मन पुस्तक के अंगरेजी अनुवाद का अनुवाद।

७ हिन्दी-महाभारत—१९०८ ई०, संस्कृत-'महाभारत' की कथा का हिन्दी रूपान्तर।

८. रघुवंश—१९१२ ई०, कालिदास के रघुवंश' महाकाव्य का हिन्दी गद्य में भावार्थबोधक अनुवाद

९ वेणी-संहार—१९१३ ई०, संस्कृत-कवि भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' नाटक का आख्यायिका के रूप में अनुवाद।

१० कुमार-सम्भव —१९१५ ई० कालिदास के 'कुमार-सम्भव' का अनुवाद

११ मेघदूत १९१७ ई० कालिदास के मेघदूतम् का गद्यात्मक अनुवाद

१२. किरातार्जुनीय—१९१७ ई०, भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' का गद्यानुवाद।

उपर्युक्त उत्तम और लोकप्रिय काव्यों के गद्यानुवाद का उद्देश था तिलिस्मी, जासूसी और ऐयारी आदि उपन्यासों के कुप्रभाव को रोकना और आख्यायिका-रूप में सुन्दर पठनीय सामग्री देकर हिन्दी पाठकों की पतनोन्मुख रुचि का परिष्कार करना। ये अनुवाद असंस्कृतज्ञ हिन्दी-पाठकों को कालिदास भारवि, भट्टनारायण आदि महाकवियों की रचना, विचार-परम्परा और वर्णनवैचित्र्य के साथ ही साथ भारत की प्राचीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक व्यवस्था से भी परिचित करते हैं। ये मनोरंजक भी हैं और ज्ञानप्रद भी।

इनकी ऐतिहासिक एवं साहित्यिक विशिष्टता तथा महत्ता का ज्ञान तुलनात्मक समीक्षा द्वारा ही हो सकता है। जिस समय द्विवेदी जी ने 'रघुवंश' का अनुवाद किया था उस समय हिन्दी में उसके चार अनुवाद विद्यमान थे। लाला सीता राम तथा पंडित सरयू प्रसाद मिश्र के पद्यबद्ध और राजा लक्ष्मण सिंह एवं पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्र के गद्यात्मक। ये अनुवाद भाषा और भाव सभी दृष्टियों से हीन थे।[1] किरातार्जुनीय का भाषान्तर करते समय द्विवेदी जी ने श्रीनारायण चिंतले एण्ड कम्पनी के मराठी, बाबू नवीन चन्द्र दास के बंगला, मेहरा हरिलाल नरसिंह राम व्यास के गुजराती और श्री गुरुनाथ विद्यानिधि भट्टाचार्य के बंगला-

---

१ उदाहरणार्थ—

कालिदास का मूल श्लोक था—

तौ स्नातकैर्बन्धुमता च राज्ञा
पुरन्ध्रिभिश्च क्रमशः प्रयुक्तम्।
कन्याकुमारौ कनकासनस्था-
वार्द्राक्षतारोपणमन्वभूताम्॥
'रघुवंश', ७, २८।

राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवाद किया—

सोने के आसन पर बैठे हुए इन दूल्हा-दुलहिन ने स्नातकों का और बान्धवों सहित राजा का और पतिपुत्रवालियों का बारी बारी से आले धान बोना देखा।

ज्वालाप्रसाद ने अनुवाद किया—

सोने के सिंहासन पर बैठे हुए वह वर और बधू स्नातकों और कुटुम्बियों सहित राजा का तथा पति और पुत्र वालियों का क्रम क्रम से गीले धान बोना देखते हुए।

द्विवेदी जी का अनुवाद—

इसके अनन्तर सोने के सिंहासन पर बैठे हुए वर और बधू के सिर पर रोचनारंजित गीले अक्षत डाले गए। पहले स्नातक गृहस्थों ने अक्षत डाले फिर बन्धुबान्धवों सहित राजा ने फिर पतिपुत्रवती पुरस्त्रियों ने।

हिन्दी अनुवादों का अवलोकन किया था इस हिन्दी अनुवाद की भी दशा अत्यन्त शोचनीय थी।[1]

द्विवेदी जी के इन अनुवादों की भाषा प्राञ्जल और बोधगम्य, शब्दस्थापना गौण तथा भाव ही प्रधान है। भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के छोड़ने और जोड़ने में उन्होंने स्वच्छन्दता से काम लिया है। आबालवृद्धवनिता सबके पठनयोग्य बनाने के लिए विशेष शृंगारिक स्थलों का या तो परित्याग कर दिया है या परिवर्तित रूप में प्रकारान्तर से उल्लेख किया है।[2] विशिष्ट संस्कृत-पदावली के कारण चमत्कारपूर्ण श्लोकों के अनुवाद में मूल की सरसता की रक्षा नहीं हो सकी है।[3] भाषान्तर के इस असम्भव कार्य के लिए अनुवादक तनिक भी दोषी नहीं है। एकाध स्थलों पर द्विवेदी जी द्वारा किया गया अर्थ सुन्दर नहीं जचता।[4] फिर भी, इसके कारण, उनके अनुवादों की महत्ता और उपयोगिता में

---

१. यथा—

गोगण शेषरात्रि के विचरण स्थान से प्रत्यावर्तन करने वेग से भूपथ में दौड़ नहीं सकती थीं ' .....।

२. यथा—'प्रियानितम्बोचितसन्निवेशः' (रघुवंश, ६, ७), दुर्योधन और भानुमती का विलास (वेणीसंहार, अंक २) आदि छोड़ दिए गए हैं।

३ यथा—ननोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नो नुन्नो ननुन्नेनो नान्नेनो नुन्ननुन्ननुत ॥ १५, १४ ।
देवाकानिनि कावादे वाहिकाम्बम्बकाहि वा ।
काकारे भभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि ॥ १५, २५ ।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः ॥ १५, ५२ ।

४. यथा—कालिदास की मूल पंक्ति थी—

हरिश्चक्रेण तेनास्य कंठे निष्कमिवार्पितम् ।
कु० स०, सर्ग २ ।

द्विवेदी जी ने अर्थ किया—

"कंठ काट देना तो दूर रहा वह चक्र वहाँ पर वैसे ही कुछ देर चिपका रहा और तारक के कंठ का आभूषण बन गया।"

चक्रसुदर्शन का तारक के कंठ में चिपक कर निष्क (कंठहार) की भाँति आभूषण बनना सर्वथा असंभव और असंगत जंचता है। इसमें कोई सौंदर्य नहीं है। उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—

तारक के कंठ को काटने में असमर्थ चक्रसुदर्शन उसके कंठ के चारों ओर टकराता रहा। इस टक्कर से उत्पन्न चिनगारियों ने तारक के कंठ में चमकता हुआ हार सा पहना दिया।

कालिदास के इसी भाव को सुस्पष्ट करते हुए माघ ने लिखा

कोई अन्तर नहीं पड़ता

१३ प्राचीन पंडित और कवि १९१८ ई०, अन्य भाषाओं के लेखों के आधार पर भवभूति आदि प्राचीन कवियों और पंडितों का परिचय।

१४. आख्यायिका-सप्तक—१९२७ ई०, अन्य भाषाओं की आख्यायिकाओं की छाया लेकर लिखित सात आख्यायिकाओं का संग्रह।

मौलिक

१. तरुणोपदेश—१८९४ ई० अप्रकाशित और दौलतपुर में रक्षित कामशास्त्र पर उपदेशात्मक ग्रन्थ।

२. हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना—१८९९ ई०।

३ नैषधचरितचर्चा—१९०० ई०, श्रीहर्षलिखित 'नैषधीयचरितम्' नामक संस्कृत-काव्य की परिचयात्मक आलोचना।

४ हिन्दी कालिदास की समालोचना—१९०१ ई०, लाला सीतारामकृत 'कुमारसम्भव भाषा, 'मेघदूत भाषा' और 'रघुवंश भाषा' की तीखी समालोचना।

५ वैज्ञानिक कोष—१९०१ ई०।

६. नाट्यशास्त्र—१९०३ ई० में लिखित किन्तु १९१० ई० में प्रकाशित पुस्तिका।

७. विक्रमाकदेवचरितचर्चा—१९०७ ई०, संस्कृत-कवि बिल्हण के 'विक्रमाकदेवचरितम्' की परिचयात्मक आलोचना।

८. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति—१९०७ ई०।

९. सम्पत्तिशास्त्र—१९०७ ई०।

इस ग्रन्थ में द्विवेदी जी ने सम्पत्ति के स्वरूप, वृद्धि, विनिमय, वितरण और उपयोग एवं व्यावसायिक बातों, साख, बैंकिंग, बीमा, व्यापार, कर तथा देशान्तरगमन की विस्तृत व्याख्या और समीक्षा की है। अंग्रेजी, मराठी, बंगला, गुजराती और उर्दू के अनेक ग्रन्थों से सहायता लेने पर भी उन्होंने मौलिक ढंग से विषयविवेचन किया है। अतिविस्तार, क्लिष्टता और जटिलता के भय से उन्होंने सम्पत्तिशास्त्र-ज्ञाताओं के वादविवाद की समीक्षा नहीं की है और पश्चिमीय सिद्धान्तों को वहीं तक माना है जहाँ तक उन्हें भारतकेलिए लाभदायक समझा है। आज भी, हिन्दी-साहित्य के इतना आगे बढ़ जाने पर भी, द्विवेदी जी का 'सम्पत्तिशास्त्र' पूर्ववत् उपादेय और पठनीय है।

वहन्छिलानिष्ठुर — दिक्कीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विष ।
जगत्प्रमोद्य न चक्र ि शिशुपालवध' सर्ग १

१०. कौटिल्य-कुठार—१९०७ ई०, अप्रकाशित और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित।

११. कालिदास की निरंकुशता—१९११ ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित।

१२. हिन्दी की पहली किताब—१९११ ई०
१३. लोअर प्राइमरी रीडर
१४. अपर प्राइमरी रीडर
१५. शिक्षा-सरोज
१६ बालबोध या वर्णबोध
१७ जिला कानपुर का भूगोल

} बालोपयोगी तथा स्कूली रीडरें

१८. अवध के किसानों की बरबादी।

१९ वनिता-विलास—१९१८ ई०, 'सरस्वती' में समय समय पर प्रकाशित विदेशी और भारतीय नारियों के जीवन-चरितों का संग्रह।

२०. औद्योगिकी—१९२० ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

२१. रसज्ञरंजन—१९२० ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित साहित्यिक लेखों का संग्रह। इस संग्रह का दूसरा लेख श्रीयुत विद्यानाथ (कामता प्रसाद गुरु) का है।

२२. कालिदास और उनकी कविता—१९२० ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

२३ सुकवि-संकीर्तन—१९२२ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित कवियों और विद्वानों के जीवन-चरित।

२४. तेरहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (कानपुर अधिवेशन) के स्वागताध्यक्ष-पद से भाषण, १९२३ ई०।

२५ अतीत-स्मृति—१९२३-२४ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

२६ साहित्य-सन्दर्भ—१९२४ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

२७. अद्भुत-आलाप— ,, ,, ,, ,,

२८ महिला-मोद—१९२५ ई०, स्त्रियोपयोगी लेखों का संग्रह।

२९. आध्यात्मिकी—१९२६ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

३०. वैचित्र्य-चित्रण— ,, ,, ,, ,,

३१. साहित्यालाप— ,, ,, ,, ,,

३२ विज्ञ-विनोद— ,, ,, ,, ,,

३३ कोविद-कीर्तन—१९२७ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित विद्वानों के संक्षिप्त जीवन-चरितों का संग्रह।

३४ विदेशी विद्वान् १९२७ ई० 'सरस्वती' में प्रकाशित विद्वानों के संक्षिप्त जीवन चरितों

का संग्रह

३५. प्राचीन-चिन्ह—'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

३६. चरित-चर्या—१९२७ ई० 'सरस्वती' में प्रकाशित जीवनचरितों का संग्रह।

३७. पुरावृत्त— ,, ,, ,, लेखों ,,

३८ दृश्य-दर्शन—१९२८ ई० ,, ,, ,, ,,

३९. आलोचनाजलि— ,, ,, ,, ,, ,,

४०. समालोचनासमुच्चय— ,, ,, ,, ,, ,,

४१. लेखांजलि— ,, ,, ,, ,, ,,

४२. चरित-चित्रण—१९२९ ई० ,, ,, जीवनचरितों ,,

४३. पुरातत्त्व प्रसंग— ,, ,, ,, लेखों ,,

४४. साहित्य-सीकर— ,, ,, ,, ,, ,,

४५. विज्ञानवार्ता—१९३० ई० ,, ,, ,, ,,

४६. वाग्विलास—१९३० ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

४७. सकलन—१९३१ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों का संग्रह।

४८ विचार-विमर्श—१९३१ ई०, 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों और टिप्पणियों का संग्रह।

४९ आत्म-निवेदन—१९३३ ई०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा किए गए अभिनन्दन के अवसर पर।

५० भाषण—१९३३ ई०, प्रयाग में आयोजित द्विवेदी मेले के अवसर पर।

कुल रचनाएँ—८१[1]

---

१ द्विवेदी जी की रचनाओं की सूची प्रस्तुत करने में निम्नांकित सूचियों का विशेष ध्यान रखा गया है—

'हंस' के 'द्विवेदी-अभिनन्दनांक' में शिव पूजन सहाय ने द्विवेदी जी की रचनाओं की एक सूची प्रस्तुत की है। उसमें उन्होंने लिखा है कि मैंने अपनी और यज्ञदत्त शुक्ल बी० ए० की सूची मिलाकर द्विवेदी जी के पास भेजी थी और उसमें द्विवेदी जी ने यत्र तत्र संशोधन भी किया। शिव पूजन सहाय का एतत्सम्बन्धी पत्र (२७. ३. ३३ ई०) दौलत-पुर में रक्षित है वह संशोधित सूची 'हंस' के उपर्युक्त अंक में इस प्रकार दी गई है—

पद्य

१. देवी-स्तुति
२. विनय-विनोद
३ महिम्न-स्तोत्र
४ गंगा लहरी
५ स्नेह-माला
६ विहार-वाटिका
७ काव्य मंजूषा
८ कुमार-सम्भव-सार

९ कविता-कलाप (संपादित)

१०. सुमन (काव्य-मंजूषा का संशोधित-संस्करण)

११ अमृत-लहरी—यमुना लहरी का अनुवाद।

गद्य

१ भामिनी-विलास

२. बेकन-विचार रत्नावली

३. हिन्दी कालिदास की समालोचना

४. हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना

५. अतीत-स्मृति

६. स्वाधीनता

७. शिक्षा

८. सम्पत्तिशास्त्र

९. नाट्यशास्त्र

१० हिन्दी भाषा की उत्पत्ति

११. हिन्दी-महाभारत

१२. रघुवंश

१३. मेघदूत

१४. कुमारसंभव

१५. किरातार्जुनीय

१६. नैषधचरित चर्चा

१७. विक्रमाकदेवचरितचर्चा

१८. कालिदास की निरंकुशता

१९. आलोचनाजलि

२०. आख्यायिका-सप्तक

२१. कोविद-कीर्तन

२२ विदेशी-विद्वान

२३. जलचिकित्सा

२४. प्राचीन-चिन्ह

२५. चरित-चर्या

२६. पुरावृत्त

२७. लोअर प्राइमरी रीडर

२८ अपर प्राइमरी रीडर

२९. शिक्षा-सरोज रीडर ५ भाग

३०. बालबोध-या वर्णबोध प्राइमर

३१. जिला कानपुर का भूगोल

३२ आध्यात्मिकी

३३. औद्योगिकी

३४. रसज्ञरंजन

३५. कालिदास

३६. वैचित्र्य-चित्रण

३७. विज्ञान-वार्ता

३८. चरितचित्रण

३९ विज्ञ-विनोद

४०. समालोचना-समुच्चय

४१ वाग्विलास

४२. साहित्य-सन्दर्भ

४३ वनिता-विलास

४४ महिला-मोद

४५ अद्भुत-आलाप

४६. सुकवि-संकीर्तन

४७. प्राचीन पंडित और कवि

४८. संकलन

४९. विचार विमर्श

५०. पुरातत्त्व-प्रसंग

५१ साहित्यालाप

५२ लेखांजलि

५३ ५४ दृश्य-दर्शन

५५. अवध के किसानों की बरबादी ५६. कानपुर के साहित्य-सम्मेलन में स्वागताध्यक्षपद

५७ अभिनन्दन के समय आत्मनिवेदन में भाषण

इस सूची में द्विवेदी जी की सभी अप्रकाशित तथा अनेक प्रकाशित रचनाएं छोड़ दी गई हैं। इसकी प्रामाणिकता इस बात में है कि इसमें परिगणित सभी कृतियां द्विवेदी जी की ही हैं।

दूसरी आलोच्य सूची प्रेम नारायण टंडन-कृत 'द्विवेदी-मीमांसा' की है—

१ विनय-विनोद २ विहार-वाटिका

३ स्नेहमाला ४ ऋतु-तरंगिणी

५ गंगा-लहरी ६ देवी-स्तुति-शतक

७ महिम्न-स्तोत्र ८ कुमार-सम्भव-सार

९ काव्य-मंजूषा १० कविता-कलाप

११ सुमन १२ अमृत लहरी

१३ बेकन-विचार-रत्नावली १४ सोमिनी-विलास

१५ नैषधचरितचर्चा १६ हिन्दी कालिदास की समालोचना

१७ हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना

१८ वैज्ञानिक कोष १९ नाट्यशास्त्र

२० जलचिकित्सा २१ शिक्षा

२२ स्वाधीनता २३ विक्रमांकदेवचरितचर्चा

२४ हिन्दी भाषा की उत्पत्ति २५ हिन्दी महाभारत

२६ संपत्तिशास्त्र २७ कालिदास की निरंकुशता

२८ रघुवंश २९ कुमारसंभव

३० मेघदूत ३१ किरातार्जुनीय

३२ आलोचनाञ्जलि ३३ आख्यायिका सप्तक

३४ कोविद-कीर्तन ३५ विदेशी-विद्वान्

३६ प्राचीन-चिन्ह ३७ चरित-चर्या

३८ पुरावृत्त ३९ लोअर प्राइमरी रीडर

४० अपर प्राइमरी ४१ शिक्षा-संग्रह

४२ बालबोध या वर्णबोध ४३ जिला कानपुर का भूगोल

४४ आर्यामिक्री ४५ ओद्योगिकी

तीन अप्रकाशित पुस्तकें

१. तरुणोपदेश.

हिन्दी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई थी जो तरुणों को स्वास्थ्य, संयम और ब्रह्मचर्यपालन का मार्ग दिखाकर उन्हें अनिष्ट कृत्यों से बचा सके। १८९४ ई० में 'तरुणोपदेश' की रचना करके द्विवेदी जी ने इस अभाव की सुन्दर पूर्ति की। परन्तु 'रसीली' और 'अश्लील' समझी जाने के कारण यह पुस्तक छपी नहीं। २१० पृष्ठों की हस्तलिखित पुस्तक ४ अधिकरणों में विभाजित है। सामान्याधिकरण के ७ परिच्छेदों में तारुण्य, पुरुषों में क्या क्या स्त्रियों को प्रिय होता है, विवाहकाल, दाम्पत्यसंगम, इच्छानुकूल पुत्र अथवा कन्योत्पादन, अपत्यप्रतिबन्ध और सन्तान न होने के कारण, वीर्याधिकरण के तीन परिच्छेदों में वीर्यवर्णन, ब्रह्मचर्य की हानियाँ और अतिप्रसंग की हानियां, अनिष्टविद्याधिकरण के चार परिच्छेदों में निषिद्ध मैथुन, हस्तमैथुन, वेश्यागमन-निषेध तथा मद्यप्राशन

---

४६ रसज्ञरंजन	४७ कालिदास
४८ वैचित्र्य-चित्रण	४९ विज्ञान-वार्ता
५० चरितचित्रण	५१ विज्ञ-विनोद
५२ समालोचना-समुच्चय	५३ वाग्विलास
५४ साहित्य-सन्दर्भ	५५ वनिता-विलास
५६ सुकवि-संकीर्तन	५७ प्राचीन पंडित और कवि
५८ सकलन	५९ विचार-विमर्श
६० पुरातत्व-प्रसंग	६१ साहित्यालाप
६२ लेखांजलि	६३ साहित्य-सीकर
६४ दृश्य-दर्शन	६५ अवध के किसानों की बरबादी
६६ वक्तृत्व कला	६७ आत्म-निवेदन
६८ वेणीसंहारनाटक	६९-७० स्पेन्सर की ज्ञेय और अज्ञेय मीमांसायें

इस सूची के भी कुछ दोष समालोच्य हैं। लेखक ने द्विवेदी जी की किसी भी अप्रकाशित रचना का उल्लेख नहीं किया है। द्विवेदी जी की अनेक रचनाएं छोड़ दी गई हैं। कहीं कहीं रचना का नाम भी गलत दिया गया है, यथा 'वक्तृत्वकला' और 'कालिदास' इन दोनों के मुखपृष्ठ पर क्रमशः 'भाषण' और 'कालिदास और उनकी कविता' नाम दिए हुए हैं। स्पेंसर की ज्ञेय और अज्ञेय मीमांसाओं के अनुवादक द्विवेदी जी नहीं हैं। उनके लेखक लाला कन्नोमल हैं।

इन दो सूचियों के अतिरिक्त काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 'रूपाभ', 'साहित्यसन्देश' आदि में अनेक स्थलों पर द्विवेदी जी की रचनाओं की सूची दी गई है किन्तु वे सभी सर्वथा अपूर्ण और अनालोच्य हैं। इन अपूर्ण सूचियों ने भी पूर्ण सूची प्रस्तुत करने में बड़ा [illegible] की है

और रोगाधिकरण के चार परिच्छेदों में अनिच्छित वीर्यपात, मूत्राघात, उपदंश एवं नपुंसकत्व का विवेचन किया गया है। तरुणों के लिए ज्ञातव्य सभी बातों का बोधगम्य भाषा में प्रतिपादन हुआ है।

संस्कृत ग्रन्थों में स्त्रियों की वयःसन्धि पर तो बहुत कुछ है परन्तु पुरुषों पर अत्यल्प। प्रस्तुत ग्रन्थ में द्विवेदी जी ने पुरुषों के वर्णन में 'नैषधचरित', 'सहृदयानन्द', विक्रमांकदेव-चरित' आदि काव्यों से भी पर्याप्त उदाहरण दिए हैं। वात्स्यायन, डा० गंगादीन, डा० धन्व-तरि आदि भारतीय एवं डा० फाउलर, डा० सिक्स्ट, राबर्ट डेल ओवन आदि पश्चिमीय विद्वानों के मतों को भी यथास्थान उद्धृत किया है। पूरे ग्रन्थ में आद्योपान्त ही अश्लीलता का नाम नहीं है। इस ग्रन्थ की भाषा और शैली द्विवेदी जी की आरम्भिक रचनाओं को-सी है।

२. सोहागरात.

अप्रकाशित 'सोहागरात' द्विवेदीजी की विशेष उल्लेखनीय अनूदित कृति है। यह अंगरेज कवि बाइरन की 'ब्राइडल नाइट' का छायानुवाद है। "पहले ही पहल पति के घर आई हुई एक बाला स्त्री का उसकी मैत्रिणी को पत्र है।" इस पचास पद्यों के पत्र में नव-विवाहिता शशी ने अपनी अविवाहिता सखी कलावती के प्रति सोहागरात में की गई छः बार की रति का प्रस्तावनासहित आद्योपान्त सविस्तार वर्णन किया है। यह वही 'सोहागरात' है जिसकी चर्चा द्विवेदी जी ने अभिनन्दन के समय आत्मनिवेदन में की थी और जिसको लेकर कृष्णकान्त मालवीय ने निरर्थक और अनुचित विवाद उठाया था। यह रचना इतनी अश्लील है कि इसके उद्धरण देने में अत्यन्त संकोच हो रहा है। और ऐसा करना द्विवेदी जी के प्रति अन्याय होगा। यह तो सच्चरित्र, संयमशील और आदर्श द्विवेदी जी की कृति ही नहीं प्रतीत होती। पुस्तकान्त में द्विवेदी जी ने लिखा है--

देखो दो वेदों का पढ़नेवाला भी यह कहता है--
सुख भोगो, दुनिया में आकर कौन बहुत दिन रहता है?

३ कौटिल्यकुठार.

साहित्यिक संस्मरण के सन्दर्भ में प्रस्तुत ग्रन्थ की चर्चा भी हो चुकी है। इस ग्रंथ के आरम्भ में राय देवी प्रसाद द्वारा अंगरेजी में लिखी हुई एक संक्षिप्त भूमिका है। शेष पुस्तक तीन खंडों में विभक्त है--

क सभा की सभ्यता

ख वक्तव्य

ग परिशिष्ट

द्विवेदी जी क चरित्र आर उनकी शैली के अध्यवन की दृष्टि स यह रचना विशेप महत्व-पूर्ण है । स्थान स्थान पर द्विवेदी जी ने अपने क्रोध और उग्रता की अभिव्यक्ति की है। इस पुस्तक में उनकी वक्तृतात्मक और व्यंग्यात्मक शैलिया अपनी ओजस्विता की सीमा पर पहुँच गई हैं। 'भापा और भापासुधार' अध्याय में व्याख्यात इन शैलियों की सभी विशिष्टताएं इसमें व्याप्त हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ का अन्तिम अवच्छेद पृष्ठ ७१ पर उद्धृत किया जा चुका है।

चौथा अध्याय

कविता

'कविता करना आप लोग चाहे जैसा समझें हमें तो एक तरह दुस्साध्य ही जान पड़ता है। अज्ञता और अविवेक के कारण कुछ दिन हमने भी तुकबन्दी का आयास किया था। पर कुछ समझ आते ही हमने अपने को इस काम का अनधिकारी समझा। अतएव उस मार्ग से जाना ही प्रायः बन्द कर दिया।"[1]

द्विवेदी जी की उपर्युक्त उक्ति में शालीनोचित कोरी नम्रता ही नहीं सत्यता भी है। श्रेष्ठ काव्य की स्थायी प्रदर्शिनी में उनकी कविताओं का ऊंचा स्थान नहीं है। उनके निबन्धों को 'बातों के संग्रह' कहने वाले उनकी कविताओं को भी एक अज्ञ की तुकबन्दी कह सकते हैं। द्विवेदी जी ने स्वयं भी उन्हें काव्य या कविता न कहकर तुकबन्दी या पद्य ही माना है।[2] परन्तु आधुनिक हिन्दी काव्य के इतिहास में उनकी कविताओं के लिए एक विशिष्ट पद

---

१. द्विवेदी जी की उक्ति, 'रसज्ञरंजन' पृ० २०।

२. 'सुमन' की भूमिका में उसके प्रकाशन की चर्चा करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

"परन्तु स्वयं द्विवेदी जी महाराज इस ओर से उदासीन थे। जब मैंने इसके लिए उनसे प्रार्थना की तब उन्होंने इसे व्यर्थ का परिश्रम कहकर मुझे इस काम से विरत करना चाहा। गुरुजनों के साथ विवाद करना अनुचित समझ कर मैंने उनकी बात का विरोध न करके अपनी बात का अनुरोध बारम्बार किया। झूठ क्यों कहूं, मन ही मन विरोध भी किया। द्विवेदी जी महाराज को कुछ भी जानने का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है उन्हें ज्ञात है कि वे कितने कृपालु और वत्सल हैं। इच्छा न रहने पर भी वे बालहठ को न टाल सके। मुझे किसी तरह आज्ञा मिल गई। परन्तु फिर भी एक प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वह इस तरह—

मुझे अपने कोई पद्य पसंद नहीं।"'आप की सलाह है, इसमें चुनकर भेजता हूं। नाम पुस्तक का आप ही रख दीजिए। नाम में पद्य हो, काव्य या कविता नहीं। नाम बिल्कुल ही महत्वहीनतासूचक होना चाहिए।"' एक छोटी सी भूमिका आप ही लिख दीजिए। पद्यों की तारीफ में कुछ न कहिए।

ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिन्दी में बोलचाल की भाषा का जो स्रोत उमड़ रहा है और कवितागत भाव में जो परिवर्तन दिखाई दे रहा है, उसका उद्गम और मार्गनिर्देश इन रचनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। क्या यही एक कारण इनके प्रकाशित किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है?

मैथिलीशरण गुप्त"

सुमन ▸ भूमिका

सुरक्षित रहेगा सौंदर्यमूलक आलोचना के आधार पर नहीं किन्तु जीवनीमूलक और ऐतिहासिक समीक्षा की दृष्टि से।

निस्सन्देह द्विवेदी जी की कविता में वह काव्यसौन्दर्य नहीं है जिसके बल पर वे जयदेव पंडितराज जगन्नाथ या मैथिली शरण गुप्त की भाँति गर्व करते।[1] उनकी कविता में वह विशेषता भी नहीं है जो उन्हें कालिदास, तुलसी या हरिऔध की भाँति विश्व सिद्ध कर सके।[2] उन्हें अपनी कविता के सफल होने की आशा भी नहीं थी, अन्यथा वे भी भवभूति आदि की भाँति अपने सन्देहसकुल चित्त को किसी न किसी प्रकार अवश्य समझा लेते।[3]

क्षेमेन्द्र ने काव्यशास्त्र का अध्ययन करने वाले शिष्यों के जो तीन प्रकार 'कविकंठाभरण' में बताए हैं उसके अनुसार द्विवेदी जी अल्पप्रयत्नसाध्य और कृच्छ्रप्रयत्नसाध्य की मिश्रकोटि में रखे जा सकते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं की रचना कालिदास आदि की भाँति यश-प्राप्ति की लालसा से नहीं की।[4] उनमें धावक आदि प्राचीन एवं रेडियो और सिनेमा के

---

१. क. यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकथासु कुतूहलम्
मधुरकोमलकान्तपदावलिं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥
जयदेव, 'गीतगोविन्द'।

ख. माधुर्यपरमसीमा सारस्वतजलधिमथनसम्भूता।
पिबतामनल्पसुखदा वसुधायां मम सुधाकविता॥
जगन्नाथ, 'भामिनीविलास'।

ग. ये प्रासाद रहें न रहें पर अमर तुम्हारा यह साकेत।
मैथिली शरण गुप्त, 'साकेत'।
कर्म-विपाक कंस की मारी दीन देवकी सी चिरकाल।
लो अबोध अन्तःपुरि मेरी अमर यही माई का लाल॥
मैथिली शरण गुप्त, 'द्वापर'।

२. क क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहाद्डुडुपेनास्मि सागरम्॥ 'रघुवंश'।

ख. कवि न होउं नहिं चतुर कहाऊं। या—'कवित विवेक एक नहिं मोरे।'
'रामचरितमानस'।

ग. मेरी मतिबीन तो मधुर ध्वनि पैहै कहां, पुरी बीनवारी, जो न तेरी बीन बजिहै।
'रसकलस'

३. ये नाम केचिदिह न. प्रथयन्त्यवज्ञां, जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा, कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी॥
भवभूति, 'मालतीमाधव'।

४ क मन्द कवियश प्रार्थी गमिष्याम्यु रघुवंश
ख मानस-भवन में जिसकी उतारें आरती

भक्त अर्वाचीन कवियों की धनकामना भी न थी [1] और न उनकी काव्यनिधि धना तुलसी आदि की भाँति स्वान्तःसुखाय ही हुई थी। उनकी अधिकांश कविताओं का प्रयोजन है 'कान्तासम्मिततयोपदेश'। अपने कवि-जीवन के आरम्भिक वर्षों में हिन्दी-पाठकों को संस्कृत की काव्यमाधुरी का आस्वाद कराने, संस्कृत के सुन्दर वर्णवृत्तों को हिन्दी में प्रचलित करने और अतिशृंगारिक काव्यों को सबके पढ़ने योग्य बनाने के लिए उन्होंने संस्कृत के 'वैराग्य-शतक', 'गीतगोविंद', 'शृंगारशतक', 'महिम्नस्तोत्र', 'ऋतुसंहार' और 'गंगास्तवन', के छन्दो-बद्ध अनुवाद किए। बाद की रचनाओं में सुधारक का स्वर विशेष प्रधान है। उनमें उनका उद्देश गद्य और पद्य की भाषा एक करके साहित्यसामग्री को समाजव्यापी बनाना रहा है। कवि द्विवेदी पर संस्कृत और मराठी का प्रभाव एवं खड़ी बोली तथा हिन्दू-संस्कृति के प्रति पक्षपात की प्रवृत्ति सर्वत्र ही स्पष्ट है।

द्विवेदी जी की काव्यकसौटी पर एकबार उनकी कविताओं को परख लेना सर्वथा समीचीन होगा। उन्होंने कविता की कोई मौलिक परिभाषा न देकर संस्कृतसाहित्य-शास्त्रियों के काव्यलक्षणों का निष्कर्ष मात्र निकाला है—

सुरम्यरूपे! रसराशिरंजिते! विचित्रवर्णाभरणे! कहाँ गई?
अलौकिकानन्ददविधायिनी! महाकवीन्द्रकान्ते! कविते! अहो कहाँ?
सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे?
शरीर तेरा सब शब्दमात्र है, नितान्त निष्कर्ष यही यही, यही॥[2]

उनके गद्यनिबन्ध—'कवि बनने के सापेक्ष साधन', 'कवि और कविता', 'कविता' आदि—भी उपर्युक्त लक्षण की पुष्टि करते हैं।[3] कविता को कान्ता का उपमेय मानना संस्कृत के साहित्यकारों की परम्परागत साधारण बात है।[4] संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने 'शरीर तावद्-

---

भगवान, भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती॥ 'भारत-भारती'।

१. धावक
"धावकादीनामिव धनम्"
'काव्यप्रकाश', प्रथम उल्लास, दूसरी कारिका की वृत्ति।

२. द्विवेदी—काव्यमाला, पृ० २९१ और २९५।

३. 'रसज्ञरंजन', पृ० २०, ३० और ५०।

४. क. 'अनेन वागर्थविदामलंकृता बिभाति नारीव विदग्धमंडला'।
भामह, ३, ५७।

ख. यामिनीवेन्दुना मुक्ता नारीव रमणं बिना।
लक्ष्मीरिव ऋते त्यागाच्छो वाणी भाति नीरसा॥
रुद्रभट्ट श्रृंगारतिलक'

दृष्टाप्यव्यच्छिन्ना परावली'[1] आदि उक्तियों के द्वारा काव्य के शरीर का उल्लेख किया है। आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, विश्वनाथ आदि ने बहुत पहले ही रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया था।[2] आनन्दवर्धन, पंडितराज जगन्नाथ आदि ने काव्यगत रम्यता को उसकी कांति माना है।[3] 'विविक्तवर्णाभरणासुलक्षणा'[4] आदि प्राचीन कथनों के आधार पर ही द्विवेदी जी ने अलंकृत वर्णों को कविताकान्ता का आभरण कहा है। अभिनव गुप्त, मम्मट, पंडितराज आदि ने अपने साहित्यग्रन्थों में रस की अलौकिकता की विवेचना की है।[5] द्विवेदी जी ने पंडितराज जगन्नाथ के काव्यलक्षण को ही सर्वमान्य घोषित किया है।[6]

रस की दृष्टि से द्विवेदी जी की कविताओं में काव्यसौंदर्य ढूंढने का प्रयास निष्फल होगा। उनके 'विनयविनोद' में शान्त तथा 'विहारवाटिका', 'स्नेहमाला', 'कुमारसम्भवसार' और 'सोहागरात' में शृंगाररस की व्यंजना हुई है। इन अनुवादों की रसात्मकता का श्रेय मूल रचनाकारों को ही है। द्विवेदी जी की मौलिक रचनाओं में केवल 'बालविधवाविलाप' ही रसानुभूति कराने में समर्थ है। इसमें अंकित बालविधवा की कारुणिक दशा का चित्र निस्सन्देह मर्मस्पर्शी है—

उच्छिष्ट, रूक्ष अरु नीरस अन्न खैहौं,
चांडालिनीव मुख बाहर मूँदि जैहौं।
गालिप्रदान निशिवासर नित्य पैहौ,
हा हन्त! दुःखमय जीवन यों बितैहौ॥
'रंडे! तुही अवसि मत्सुत लील खाई'
त्वन्मातु नाथ! जब तर्जिह यों रिसाई।

ग यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।
'ध्वन्यालोक', प्रथम उद्योत, चतुर्थ कारिका।

१. दंडी 'काव्यादर्श', १, ६।

२ क. 'ध्वन्यालोक', प्रथम उद्योत, कारिका ५ और उसी पर अभिनव गुप्त का लोचन।
ख. 'साहित्यदर्पण', प्रथम परिच्छेद, तीसरी कारिका।

३. क. 'ध्वन्यालोक', प्रथम उद्योत, चौथी कारिका।
ख. 'रसगंगाधर', प्रथम आनन, पृ० ४।

४. भारवि, 'किरातार्जुनीय'

५. 'काव्य-प्रकाश', पृ० ५१ और 'रसगंगाधर', पृ० ४।

६. "साहित्यदर्पण' के मत में 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' और सर्वमान्य 'रसगंगाधर' में 'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम्' इस प्रकार की की गई है।'
हिन्दी कालिदास की ' पृ० ६७

ह्वै है इहै जब मदीय ममताधिकाई
पृथ्वी फटै त्वरित जाउ तहा समाई ॥[1]

कविता कवि की प्रत्यक्ष अथवा स्मृतिजन्य अनुभूति का रमणीयार्थप्रतिपादक शब्दचित्र है। अपनी अनुभूति को पाठक की अनुभूति बना देने में ही कवि की सफलता है। काव्य का आनन्द लेने के लिए पाठक या श्रोता में सहृदयता और अध्ययन के विशेष भाव तथा स्वगतत्व एवं परगतत्व के विशेष अभाव की नितान्त आवश्यकता है। सौन्दर्य की दृष्टि से द्विवेदी जी की कविताओं को इतिवृत्तात्मकमात्र कहना हृदयहीनता है। उनकी सभी रचनाएं आद्योपान्त पढ जाइए, उनमें रति, करुणा, हास्य, निर्वेद, जुगुप्सा, क्रोध आदि भावों की विविधता है। इन विविध भावों के ऊपरी तल के नीचे एक अन्तःसलिला सरस्वती की धारा भी है—हिन्दी के प्रति उनका अमायिक और सात्विक पूजाभाव। यही उनकी कविताओं का स्थायी भाव है।[2] किसी भी कारण से सही, कवि को जहा कहीं से जो कुछ भी मिला है उसे उसने मातृभाषा के मन्दिर मे श्रद्धा के साथ चढ़ा दिया है।

'समाचारपत्रसम्पादकस्तव', नागरी तेरी यह दशा' आदि रचनाएँ हिन्दी को ही विषय मानकर लिखी गई है। अन्य विषयों पर लिखी गई 'आशा', 'विधिविडम्बना' आदि कविताओं में भी द्विवेदी जी का कवि हिन्दी को नही भूला है। 'आशा, का गौरवगान करने के पश्चात् अन्त में उसने हिन्दी की राजाश्रयप्राप्ति की ही प्रार्थना की—

कछू प्रार्थना है हमारी सुनीजै.
जगद्धात्रि आशे ! कृपाकोर कीजै।
सबै देन की देवि ! सामर्थ्य तेरी,
यही धारणा है सविस्वास मेरी ॥
गुणग्राम की आगरी नागरी है,
प्रजा की जु सन्मानसोजागरी है।
मिलै ताहि राजाश्रयश्लेमकारी,
यही पूजियौ एक आशा हमारी ॥[3]

'विधिविडम्बना' में उसने विधाता की अन्य भूलों का निदर्शन करके अन्त में, अपनी हिन्दी-हितकामना के कारण ही, हिन्दी-साहित्य की दुर्दशा के प्रति विधाता की अनन्यतम अपटुता का निर्देश किया—

---

१. 'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० २१३, २१४।
२ यहां पर स्थायी' शब्द अपने शाब्दिक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है
३. द्विवेदी पृ० २२२

शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनको नहीं विचार,
लिखवाता है उनके करसे नए नए अखबार ।[1]

और फिर मातृभाषाद्रोहियों की सृष्टि बन्द करने के लिए प्रार्थना की है —

विधे ! मनोज्ञमातृभाषा के द्रोही पुरुष बनाना छोड़ [2]

मातृभाषाभक्त कवि हिन्दी-हितैषियों के प्रति भी अपने आभार और प्रसन्नतासूचक मनोवेगों को व्यक्त किए बिना न रह सका—

तोसों कहौं कछु कवे ! मम ओर जोवौ ।
हिन्दी दरिद्र हरि तासु कलंक धोवौ ।[3]

इस प्रकार की रचनाओं में काव्यकला का अभाव होने पर भी तत्कालीन संकटापन्न हिन्दी के पुजारी कवि के छलरहित हृदय की अमायिक और धार्मिक व्यञ्जना जीवनीमूलक आलोचना की दृष्टि से अपना निजी सौंदर्य रखती है ।

'विनयविनोद', 'विहारवाटिका' आदि आरम्भिक अनुवादों में उन्होंने समर्थ साहित्य-सेवी बनने की तैयारी की है । संस्कृत के महिम्नस्तोत्र' और 'गंगास्तवन' के अनुपम काव्य का आस्वाद केवल हिन्दी जानने वालों को कराने के लिए उनके हिन्दी-अनुवाद किए ।[4] 'ऋतुतरंगिणी' और 'देवीस्तुति-शतक' द्वारा संस्कृतयोग्य छन्दों में ही काव्यकथन करके देव-नागरी भाषा के काव्यों की पुस्तकमालिका में 'गणात्मक वृत्तों के अभाव की पूर्ति' करने का प्रयास किया ।[5] हिन्दी कविता में कालिदास के भावों की अभिव्यक्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिए 'कुमारसम्भव' का अंशानुवाद किया ।[6] मौलिक रचनाओं में उनके सहृदय कविहृदय की व्यंजना अनेक स्थलों पर बड़ी ही मनोहर हुई है । निम्नांकित पंक्तियों में

---

१. 'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० २६१ ।
२. ,, ,, ,, ,,
३. 'द्विवेदी-काव्यमाला', पृष्ठ २६२ ।
४. 'महिम्नस्तोत्र' और 'गङ्गालहरी' की भूमिका के आधार पर ।
५. 'ऋतु-तरंगिणी' और 'देवीस्तुतिशतक' की भूमिका के आधार पर ।
६. " हिन्दी कालिदास की समालोचना' लिखने के अनन्तर जब किसी ने उनसे ये व्यंग्यात्मक शब्द कहे कि भला आप ही कुछ लिखकर बतलाइए कि हिन्दी कविता में कालिदास के भाव कैसे प्रकट किए जाय तब नमूने के तौर पर द्विवेदी जी ने कुमारसंभव के आरम्भ के पाँच सर्गों का अनुवाद कर 'कुमारसंभवसार' के नाम से प्रकाशित किया ।"
—पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल,
सरस्वती', भाग ४० पृष्ठ २०३

अभिन्न-पीड़ित जना का करुणाकारक चित्र विशेष मर्मस्पर्शी है

लोचन चले गए भीतर कहँ, कंटक सम कच छाए।
कर में खप्पर लिए अनेकन जीरण पट लपटाए।
मांसविहीन हाड़ की ढेरी, भीषण भेष बनाए,
मनहु प्रबल दुर्भिक्ष रूप बहु धरि विचरत सुख पाए॥
शक्ति नहीं जिनके बोलन की, तकि तकि मुँह फैलावै,
सीक समान पेर लीन्हे बहु, रोवन गोबर खावै।
गुठुली खान हेत वेरन की, ढूँढ़त सोउ न पावै,
पग पग चलै गिरै पग पग पर, आरत नाद सुनावैं॥[1]

'कान्यकुब्ज-लीलामृतम्' का पहला ही पद पार्वती कान्यकुब्ज ब्राह्मण की हृदयसंवादी रूपरेखा खींच देता है—

सदैवशुक्लारुणपीतवर्णपाटीरपंकावृतसर्वभाल!
आभूतलालम्बिदुकूलधारिन! हे कान्यकुब्जद्विज! ते नमोस्तु॥[2]

'काककूजितम्' में दुष्टों के हृदय में स्थित ईर्ष्या और निन्दाभाव की सुन्दर निबन्धना की गई है, यथा—

त्वं पंचमेन विरुतं विजहीहि नूनं
वक्तुं वसंतसमयेपि न तेधिकारः।
सम्प्रत्यहं दशसु दिक्षु सदा सहर्षं
तारस्वरेण मधुरेण रवं करिष्ये॥[3]

साहित्यमर्मज्ञों ने निर्विवादरूप से ध्वनि को श्रेष्ठकाव्य माना है। द्विवेदी जी की कविता में व्यंग्यार्थ की सुन्दरता भी कम नहीं है। 'कान्यकुब्जलीलामृतम्', 'ग्रन्थकारलक्षण' आदि में काक्वाक्षिप्त व्यंग्य की मनोहरता है, यथा—

इसी सम्बन्ध में 'सुदर्शन'-सम्पादक माधवप्रसाद मिश्र ने द्विवेदी जी को लिखा था—

"लाला सीताराम के आयुष्मान् को धन्य है जिसकी बात पर आपने अपनी प्रतिभा का निदर्शन तो दिखाया। पर इतने तर्जन गर्जन और आस्फालन का यही फल न हो कि आप इसे यों ही अधूरा छोड़ दें।"

—द्विवेदी जी के पत्र, संख्या ११८३, काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा का कार्यालय।

१. 'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० १७५।
२ १८१
३ २८६

अहो दयालुत्वमत पर किं
यथेहित यद्द्रविण गृहीत्वा ।
निन्द्यानपि त्वं विमलीकरोषि
तदीयकन्याकरपीडनेन ॥[1]

'गर्दभकाव्य', 'बलीवर्द', 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं', जम्बुकी न्याय', 'टेस् की टाँग आदि में अन्योक्तियो या अप्रस्तुतविधानो के द्वारा प्रस्तुत विषय का हास्यमिश्रित व्यंग्यपूर वर्णन है, उदाहरणार्थ—

हरी घास खुरखुरी लगै अति, भूसा लगै करारा है,
दाना भूलि पेट यदि पहुंचै काटै अस जस आरा है ।
लच्छेदार चीथड़े, कूड़ा जिन्हें बुहारि निकारा है,
सोई सुनो सुजान शिरोमणि, मोहनभोग हमारा है ॥[2]

सदसद्विवेकहीनता के कारण सुन्दर रचनाओं का बहिष्कार और असुन्दर का स्वागत करने वाले सम्पादक का उपर्युक्त व्यंग्यशब्दचित्र बडी सफलता से अंकित किया गया है । गर्दभ में सम्पादक का आरोप करके लक्षणा के सहारे अभीष्ट भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है। (हरी घास=सरस और सुन्दर रचनाएं, भूसा=नीरस रचनाएं, दाना=सारगर्भित लेख आदि, चीथडे···=रद्दी रचनाएं मोहनभोग=ग्रहणीय प्रिय वस्तु) । आदरणीय और महान् अभ्यागत के मानापमान का ध्यान न करनेवाले अभिमानी पुरुष के उपमानरूप मे बलीवर्द का स्वीकार भी सुन्दर हुआ है—

गज भी जो आवै तुम उसकी ओर न आंख उठाते हौ,
लेटे कभी, कभी बैठे हौ, कभी खड़े रह जाते हौ ।[3]

निम्नांकित पंक्तियों में शब्द और अर्थ दोनो का चमत्कार लोकोत्तर है —

इन कोकिलकंठी कामिनियों ने जो मधुर गीत गाये,
सुधासदृश कानो से पीकर वे मुझको अति ही भाये ।
इनका यह गाली गाना भी चित मे जब यों चुभ जाता,
यदि ये कहीं और कुछ गातीं विना मोल मै बिक जाता ॥[4]

---

१. द्विवेदी काव्यमाला', पृ० १८२ ।
२. ,, ,, ,, २१६ ।
३. ,, ,, ,, २७५ ।
४. ,, ,, ,, ४५१ ।

कान्तलक्ष्मी कामिनियां गीतगाय सुधासदृश आदि में अनप्रास का लालित्य के मानस सुखकर की व्यंजना के लिए कानों में पीकर में प्रयुक्त प्रयोजनवती लक्षणा सुन्दर है। 'मधुर गीत' को 'सुधासदृश' मानकर कवि ने ठीक समय पर उपमा अलंकार का ग्रहण किया था और 'कानों में पीकर' में उचित समय पर उसका त्याग कर दिया। उसे दूर तक व्यर्थ ही खींचा नहीं। यदि वे नारियां गाली के बदले कवि के प्रति प्रणयनिवेदन के गीत गातीं तो वह आत्मसमर्पण कर देता। गाती गाना', 'चुभ जाता' तथा 'और कुछ' की ध्वनि ने पद के सौन्दर्य को और भी उत्कृष्ट बना दिया है।

उनकी कविता में कहीं अलंकार-विधान के सहारे काव्यसौंदर्य की सृष्टि की गई है, यथा—

> अभी मिलेगा व्रजमंडलान्त का सुभुक्त भाषामय वस्त्र एक ही।
> शरीरसंगी करके उसे सदा, विराग होगा तुझको अवश्य ही॥
> इसीलिए ही भवभूतिभाविते! अभी यहां हे कविते! न आ, न आ॥
> बता तुही कौन कुलीन कामिनी सदा चहेगी पट एक ही वही॥[1]

वह खड़ीबोली का निर्माणकाल था। उसके पद्यों में कवित्व नहीं आ रहा था। व्रज-भाषा के समर्थक इस बात को लेकर आलोचना की धूम बाँधे हुए थे। इस भाव की भूमिका में कवि ने उत्प्रेक्षालंकार की योजना की है। सुन्दर वेषभूषा में सहजप्रवृत्ति रखने वाली कुलीन कामिनी एक ही सुभुक्त वस्त्र पर जीवननिर्वाह नहीं कर सकती। कामिनी से कविता की उपमा परम्परागत होते हुए भी नवीन विशेषणों के कारण अधिक मनोहर हो गई है। कहीं मानव-हृदय की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति ने कवित्व की सृष्टि की है, उदाहरणार्थ—

> हे भगवान! कहाँ सोये हो? विनती इतनी सुन लीजै,
> कामिनियों पर करुणा करके कमले? जरा जगा दीजै।
> कनवजियों में घोर अविद्या जो कुछ दिन से छाई है,
> दूर कीजिए उसे दयामय! दो सौ दफे दुहाई है॥[2]

नारी स्वभावतः कोमलता और करुणा की मूर्ति होती है। सजातीय के प्रति सहानुभूति रखना भी स्वाभाविक ही है। इसी कारण कामिनियों के कल्याणार्थ भगवान् को जगाने के लिए कवि ने कमला से प्रार्थना की है। कहीं हास्य का पुट देकर कवि-समय के सहारे रमणीय पंक्तियों की रचना की गई है, यथा—

---

१ त्रिवेणी पृ० २१४
२ " ७२७

जरा देर के लिए समझिए, आप षोडषी कारी हैं,
(क्षमा कीजिए असभ्यता को हम ग्रामीण अनारी हैं)।
मान लीजिए नयन आपके कानों तक बढ़ आये हैं,
पीन-पयोधर देख आपके कुञ्जर-कुभ लजाये हैं ॥[1]

द्विवेदी जी की भाषा और भावव्यञ्जना के सात्विक और शिष्ट होने पर भी उनकी कविता में एकाध स्थलों पर ग्राम्यता और अश्लीलता का दोष आ ही गया है। अधोलिखित पद में वे अभिमानी व्यक्ति के मुखदर्शन की अपेक्षा वृषभ के अंडकोष का अवलोकन करना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं—

मैं कुबेर, मैं ही सुरगुरु हूँ, मेरा ही सब कहीं प्रमाण,
यह घमण्ड रखने वालों का मुखदर्शन है पापनिधान।
तदपेक्षा हे वृषभ ! तुम्हारा पीवर अंडकोष समुदाय,
अवलोकन करना अच्छा है, सच कहते हैं भुजा उठाय ॥[2]

अपनी उन्नीसवीं शती की रचनाओं, विशेषकर 'विहार-वाटिका', 'स्नेहमाला' और 'ऋतुतरंगिणी' में ही द्विवेदी जी ने बरबस अलङ्कार-योजना की चेष्टा की है।[3] 'ऋतुतरंगिणी' में तो आद्योपान्त ही शब्दालङ्कार ठूँस ठूँस कर भरे गए हैं। कहीं कहीं अलङ्कारसौंदर्य लाने के लिए भाव की निर्दयतापूर्वक हत्या कर दी गई है। भावाभिव्यञ्जन में असमर्थ यमकच्छटामयी पदावली का एक उदाहरण निम्नांकित है—

सुविच कैरव कैरव राजहीं।
रुत सना रसना रस लाजहीं ॥
सुनत सारस सारस गान हीं
बधिक बान नवान न तानहीं ॥[4]

---

१. 'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० ४३८।
२. ,, ,, ,, २७६।
३. उदाहरणार्थ—

सुधा बाहा थाहा सुथल अवगाहा हरि नबै।
प्रिया भाई लाई हियहि सुख पाई छकि जबै ॥
कही बामा श्यामा मुदित अभिरामा रस भरे।
गहौ बाँही नाहीं करि कि कर जाहीं कर करे ॥

'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० २२।

४ द्विवेदी ' पृ० ६३

यदि पुस्तक की पादटिप्पणी में शब्दार्थ न दिया गया होता तो उपर्युक्त पंक्तियों में निहित कवि के अभिप्राय का अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कोई न समझ पाता। यह अलङ्कारदोष उनकी प्रारंभिक हिन्दी-रचनाओं तक ही सीमित है। इस अलङ्कारप्रेम का कारण संस्कृत-कवियों, विशेष कर अश्वघाटीकार पंडितराज जगन्नाथ, और हिन्दी-कवि केशवदास का प्रभाव ही है। द्विवेदी जी की संस्कृत और खड़ीबोली की कविताओं में अनायास ही सन्निविष्ट उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, श्लेष, अनुप्रास आदि अलंकार अपने नाम को वस्तुतः सार्थक करते हैं, यथा--

क्व मामनादृत्य निशान्धकारः पलाय्य पापः किल याम्यतीति।
ज्वलन्निवक्रोधभरेण भानुरंगाररूपः सहसाविरासीत्॥[1]

अन्धकार ने सूर्य का कभी अपमान नहीं किया, वह कभी भागा नहीं और सूर्य उसके प्रति क्रोध में कभी जला नहीं। फिर भी हेतूत्प्रेक्षा के सहारे कवि ने विलीन होते हुए अन्धकार और प्रभातकालीन रक्तिम सूर्य का रमणीयार्थप्रदिपादक चित्राकन किया है। ज्यों ज्यों चन्द्रमा की छाया बढ़ती जा रही थी त्यों त्यों सूर्य का तेज मन्द पड़ता जा रहा था। इस दृश्य को लेकर द्विवेदी जी ने निम्नांकित पद में सुन्दर अर्थान्तरन्यास किया है--

छायां करोति वियति स्म यदा यदेन्दुः,
श्यामप्रभां वितनुते स्म तदा तदार्कः।
आपत्सु दैवविनियोगकृतागमासु,
धीरोपि याति वदने किल कालिमानम्॥[2]

अधोलिखित पंक्तियों में श्लेष और अनुप्रास का मनोहर चमत्कार है--

सुरम्यरूपे! रसराशिरंजिते! विचित्रवर्णाभरणे! कहाँ गई?
अलौकिकानन्दविधायिनी! महाकवीन्द्रकान्ते! कविते! अहो कहाँ॥[3]

पहली पंक्ति में 'र', 'ण' और 'व' की तथा दूसरी में 'क' और 'न' की आवृत्ति के कारण पद में अधिक लालित्य आ गया है। कान्तारूपिणी कविता के लिए श्लिष्ट विशेषणों का प्रयोग भी मनोहर है। जिस प्रकार कान्ता सुरम्यरूपा (रमणीय रूपवाली), रसराशिरंजिता (सुन्दर अनुराग के भावों से भरी हुई), विचित्रवर्णाभरणा (रंगविरंगे आभूषणों से सजी हुई) अलौकिकानन्दविधायिनी (असाधारण आनन्द देनेवाली) और कवीन्द्रकान्ता (कवियों के काम

---

१. 'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० १६६।
२ " २०६
३ " २६१

की वस्तु) है, उसी प्रकार कविता भी सुरम्यरूपा (रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाली शब्दस्वरूपा), रसराशिरंजिता (शृंगार आदि रसों से पूर्ण), विचित्रवर्णा सरणी (अनेक प्रकार के चित्रमय शब्दालंकारों से समन्वित), अलौकिकानन्दविधायिनी (लोकोत्तर चमत्कार की सृष्टि करनेवाली) और कवीन्द्रकान्ता (महाकवियों की अभिप्रेत) वस्तु है।

कवित्वसौन्दर्य का उपस्थापन करने के लिए कल्पना की ऊँची उड़ान अनिवार्य नहीं है। द्विवेदी जी के यथार्थवादी पदों में भी कहीं कहीं उत्तम काव्यचमत्कार है—

केचिद्वधूवदनचन्द्रविलोकनाय, केचिद्धनस्य हरणाय परस्य केचित्
कूलेययुर्ग्रहणदुष्परिणामदु खनाशाय सन्निकटवर्तिजलाशयस्य ॥[1]

ग्रहण आदि अवसरों पर मेलों में जाने वाले सज्जन और असज्जन लोगों का यह चित्र परम स्वाभाविक है। कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जो अमायिक धर्मभावना से प्रेरित होकर स्नानादि के निमित्त जाते हैं। प्रायः दुष्टजनों की ही अधिकता रहती है जो पाप-भावना से प्रेरित होकर उस अवसर का दुरुपयोग करते हैं।

द्विवेदी जी की 'विनय-विनोद', 'विहार-वाटिका', 'स्नेहमाला' आदि आरंभिक कृतियों में ओज और प्रसाद गुणों की न्यूनता होते हुए भी माधुर्य की मनोहरता है।[2] उनमें भी कहीं कहीं प्रसन्नता दिखाई पड़ जाती है।[3] ऋतुतरंगिणी में प्रासादिकता का सार्वत्रिक अभाव है। उनकी संस्कृत और खड़ीबोली की कविताएं व्यापक रूप से प्रसादगुण-सम्पन्न हैं, यथा—

किं विद्यया किं तव कर्षणेन व्यापारवृत्त्या किमु चापि भृत्या
जयत्यहो स श्वशुरालयस्थे त्वं कल्पवृक्षायसि यं सदैव ॥[4]

अथवा—

नित्य असत्य बोलने में जो तनिक नहीं सकुचाते हैं,
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर बड़े बड़े उग आते हैं ?

---

१. 'द्विवेदी-काव्यमाला'. पृ० २०४।

२. उदाहरणार्थ—

बसन आसन आसनि दास के,
बिलग पी रस की हँसि हाँस के।
दृग लसै बिलसै अलसै गही,
सुमनहार बिहार बिहाय ही

घोर घमडी पुरुषों की क्यों टेढी हुई न लंक ?
चिन्ह देख जिसमें सब उनको पहचानते निशंक ॥ [1]

उपर्युक्त पंक्तियों में व्यंग्य का बहुत कुछ चमत्कार है। संस्कृत-श्लोक में उन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों पर आक्षेप किया गया है जो विद्याध्ययन, खेती, व्यापार या नौकरी न करके अपनी समृद्धि को कल्पवृक्ष समझते और उसी के धन से सानन्द जीवन-यापन करते हैं। हिन्दी-पद में मिथ्यावादियों के सिर पर सींग उगवाने और घमंडियों की कटि टेढी करा देने की कवि-कल्पना निस्सन्देह चमत्कारकारिणी है। परन्तु द्विवेदी जी की अधिकांश कविताओं में अर्थ की अतिशय प्रकाशता होने के कारण प्रसन्नता का यह गुण दोष बन गया है।[2] 'आगे चले बहुरि रघुराई'-जैसे नीरस किन्तु स्पष्ट पद पद-पद पर मिल सकते हैं।[3]

पद्य-निबन्धों की वर्णनात्मकता और अतिप्रकाशता के कारण द्विवेदी जी की कविताएं प्रायः इतिवृत्तात्मक हैं। उनकी सभी पद्यकृतियां कविता नहीं हैं। इन इतिवृत्तात्मक रचनाओं में भी स्थान स्थान पर कवित्व है। यह उपर्युक्त विवेचन और उद्धरणों से प्रमाणित है। उनकी कविताओं की इतिवृत्तात्मकता और नीरसता के अनेक कारण हैं। द्विवेदी जी ने अपनी अधिकांश कविताओं की रचना अराजकता-काल में की थी, द्विवेदी-युग में नहीं। उस समय हिन्दी-साहित्य के भीतर और बाहर सर्वत्र ही अराजकता थी। भूमिका में वर्णित राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि आन्दोलन कवियों की एकान्त साधना में बहुत कुछ बाधक हुए। एक ओर तो यह दशा थी और दूसरी ओर द्विवेदी जी का ज्ञानसम्बल संस्कृत-साहित्य और पुरानी परिपाटी के पंडितों के अध्यापन पर ही अवलम्बित था। उनका

---

१ द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० २६० ।

२ नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो,
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः ।
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चित्,
सौभाग्यमेति महाकवधूकुचाभः ॥ —राजशेखर ।

३. यथा—

घर में सबको भाती है यह, पति का चित्त चुराती है यह ।
सखियों में जब आती है यह, मधु मीठा टपकाती है यह ॥
'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० ३७८ ।

या—

शरीर ही से पुरुषार्थ चार, शरीर की है महिमा अपार ।
शरीररक्षा पर ध्यान दीजै शरीरसेवा सब छोड कीजै ॥
द्विवेदी पृ० ४१४

मैं एक संस्कृत पढ़ लिखे दहाता के कृपमंडूक न से ऊपर नहीं उठ सका था अनध्याय अनभ्यास और अस्थिति के कारण व परम्परागत हिंदी का यमापा ब्रज और अवधी पर अधिकार नहीं कर सके थे। इसी कारण उनके भावों में सचाई और सुन्दरता के होते हुए भी उनकी रचनाओं में कविता का लालित्य नहीं आ पाया। आगे चलकर जिस प्रकार द्विवेदी जी ने मैथिलीशरण गुप्त आदि का गुरुत्व किया यदि उसी प्रकार उन्हें भी कोई गुरु मिल गया होता तो बहुत सम्भव था कि वे भी एक अच्छी कोटि के कवि हो गए होते।

सम्पादक द्विवेदी की ज्ञानभूमिका का असाधारण रूप से विस्तार हुआ किन्तु उसके साथ ही उनके कर्तव्य की परिधि भी अनन्तरूप से विस्तृत हो गई। अर्धशिक्षित हिन्दी-पाठकों को शिक्षित करना था। हिन्दी के प्रति उदासीनों को हिन्दी का प्रेमी बनाना था। पथभ्रष्ट समाज, लेखकों और पाठकों को प्रशस्त मार्ग पर लाना था। हिन्दी-साहित्य को दूषित करने वाले कूड़ाकरकट को साफ करना था। अभिव्यंजन में असमर्थ हिन्दी को प्रौढ़, संस्कृत और परिष्कृत रूप देना था। तिरस्कृत देवनागरी लिपि और हिन्दी-भाषा की उचित प्रतिष्ठा करनी थी। विपन्न हिन्दी-साहित्य को सम्पन्न बनाने के लिए विविधविषयक साहित्यकारों के निर्माण की आवश्यकता थी। इस प्रकार की सर्वतोमुख आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए द्विवेदी जी के कवि को, अपना निजत्व खोकर, शिक्षक, उपदेशक, आलोचक, सुधारक और निर्माता बन जाना पड़ा। वह काव्यभाषा खड़ीबोली का शैशवकाल था। अभिव्यंजना का निर्बल माध्यम कलासौन्दर्य धारण ही नहीं कर सकता। इसीलिए खड़ीबोली की तत्कालीन रचनाओं में कविता की अभीष्ट रमणीयता न आ सकी। द्विवेदी-युग का प्रथम चरण योग्य माध्यम-निर्माण की साधना में ही व्यतीत हो गया।

द्विवेदीसम्पादित 'सरस्वती' में प्रकाशित कविताओं का काव्योचित संशोधन इस बात का साक्षी है कि द्विवेदी जी में भी कविप्रतिभा थी। गोपाल शरण सिंह की मूल पंक्तियां थीं --

> मधुपपंक्ति नित पुष्पप्रेमधारा में बहती
> या वह अति अनुरक्त और पर भी है रहती।[1]

द्विवेदी जी ने उसका संशोधन किया--

> मधुपपंक्ति जो पुष्पप्रेमरस में नित बहती,
> आम्रमंजरी पर क्या वह अनुरक्त न रहती?

रस', 'आम्रमंजरी' और प्रश्नवाचक चिन्ह की योजना ने इस पद को निस्सन्देह सरस, मार्मिक

---

१. 'माता की महिमा', 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियां, १९१४ ई०. काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा के में रक्षित

और अधिक भावाभिव्यंजक बना दिया है। उनकी गद्य में भी कहीं कहीं काव्य की रमणीयता मिलती है।[1] यत्र तत्र सरस, रमणीय और कवित्वमय होने पर भी ये कविताएं द्विवेदीजी को कवि के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित नहीं कर सकतीं। इनका वास्तविक महत्व छन्द, भाषा और विषय की दृष्टि से है।

विधान की दृष्टि से द्विवेदी जी की कविताओं के पाँच रूप हैं — प्रबन्ध, मुक्तक, प्रबन्धमुक्तक, गीत और गद्यकाव्य। उन्होंने खंडकाव्य या महाकाव्य के रूप में कोई काव्यरचना नहीं की। उनकी प्रबन्धात्मक कविताओं को पद्यप्रबन्ध कहना ही अधिक युक्ति-युक्त है। ये रचनाएं भी दो प्रकार की हैं—कथात्मक और वस्तुवर्णनात्मक। कथात्मक पद्यप्रबन्धों में गद्य की लघु कहानी की भांति किसी नन्हे-से यथार्थ या कल्पित कथानक का उपन्यास किया गया है, यथा 'सुतपंचाशिका' 'द्रौपदी-वचन-बाणावली,' 'जंबुकीन्याय', 'टेसू की टाँग' आदि। ये पद्य खंडकाव्य के भी संक्षिप्त रूप हैं। वस्तुवर्णनात्मक पद्यप्रबन्धों में बिना किसी कथानक के किसी वस्तु या विचार का प्रबन्धकाव्य की भाँति कुछ दूर तक निर्वाह किया गया है और फिर कविता समाप्त होगई है, यथा 'भारततुर्भिक्ष' 'समाचारपत्रसंपादकस्तव' 'गर्दभकाव्य' 'कुमुदसुन्दरी' आदि। द्विवेदी जी की अधिकांश कविताएं इसी वर्ग की हैं। भारतेन्दुयुग और द्विवेदीयुग में पद्यप्रबन्धों की अपेक्षाकृत अधिकता का प्रधान कारण उन युगों की हलचल और खड़ीबोली की अप्रौढ़ता ही है। मुक्तकों की काव्यमाधुरी लाने के लिए अपरिपक्व खड़ीबोली की गागर में सागर भरना असम्भव था। खण्डकाव्य या महाकाव्य लिखने के लिए पर्याप्त अवकाश की आवश्यकता थी। बहुधंधी कवि इन परिस्थितियों के ऊपर न उठ सके।

द्विवेदी जी के काव्यविधान का दूसरा रूप मुक्तक है। उनकी मुक्तक रचनाओं के मूल में दो प्रधान प्रवृत्तियां काम करती रही हैं—सौन्दर्यमूलक और उपदेशात्मक। 'विहारवाटिका', 'स्नेहमाला' आदि अनुवादों और 'प्रभातवर्णनम्', 'सूर्यग्रहणम्' आदि मौलिक रचनाओं का उद्देश्य सौन्दर्यनिरूपण ही था।[2] 'शिवाष्टकम्', 'कथमहं नास्तिकः' आदि आत्म-निवेदनात्मक कविताओं में भी भावसौन्दर्य का चित्रण होने के कारण सौन्दर्यमूलक प्रवृत्ति की ही प्रधनता

१. यथा—
राय कृष्णदास को लिखित पत्र १५. ६. ३०।
'सरस्वती', भाग ४५, खण्ड २, संख्या ४, पृ० ४६६।

२. यथा— सुपक्व जम्बूफल गुच्छकारी, इतै उठी श्याम घटा करारी।
महाविषो ——— बाला उतै परी मूर्छित ह्वै बिहाला॥
'ऋतुतरंगिणी', द्विवेदी पृ० ८५

है। उपदेशात्मक मुक्तका म नीति आदि का उपदेश देने के लिए मुक्त विचारा की निबन्धना की गई है, यथा-विनय-विनोद, 'विचार करने योग्य बातें' आदि।[1] द्विवेदी जी की कविता के तीसरे रूप प्रबन्ध मुक्तको में एक ही वस्तु या विचार का वर्णन होने के कारण प्रबन्धता और प्रत्येक पद दूसरे से मुक्त होने के कारण मुक्तत्व दोनो ही एक साथ हैं, उदाहरणार्थ—'विविधविडम्बना', 'ग्रन्थकार-लक्षण' आदि। भारतेन्दुयुग मे चली आने वाली समस्यापूर्ति की प्रवृत्ति ने द्विवेदी जी को मुक्तकरचना के प्रति प्रभावित नहीं किया। सम्भवतः इसका वास्तविक कारण यह है कि वे तादृश समस्यापूरक कवि-समाजो के निकट संपर्क मे कभी रहे ही नहीं।

कतिपय गीतों ने द्विवेदी जी की कविता का चौथा रूप प्रस्तुत किया। मौलिकता की दृष्टि से इन गीतो के चार प्रकार हैं। 'भारतवर्ष[2]' मे वे संस्कृत के 'गीत गोविन्द' से, 'वन्देमातरम्[3]' मे बंगला से और 'सरगौ नरक ठेकाना नाहि[4]' मे लोक-प्रचलित आल्हे से प्रभावित हैं। इस अंतिम गीत में प्रबन्धता होते हुए भी लोकप्रचलितगेयता के कारण इसकी गणना गीतो के अन्तर्गत की गई है। कहीं कहीं उन्होंने भारतीय परम्परा का ध्यान किए बिना ही स्वतन्त्र रूप से भी गीतों की रचना की है। 'टेसू की टांग' और 'महिला परिषद् के गीत' इसी प्रकार के हैं। इनकी लय पर उर्दू का बहुत कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है।[5]

---

१. यथा— यौवन वन नव तन निरखि मूढ अचल अनुमानि।
हठि जग कारागार मँह परत आपदा आनि॥
—'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० ५।

२. यथा— इष्टदेव आधार हमारे, तुम्हीं गले के हार हमारे,
मुक्ति मुक्ति के द्वार हमारे, जै जै जै जै देश॥
जै जै सुभग सुवेश॥
'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० ४५४।

३. यथा— मलयानिल मृदु मृदु बहती है, शीतलता अधिकाती है,
सुखदायिनि वरदायिनि तेरी, मूर्ति मुझे अति भाती है।
वन्देमातरम्॥
—'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० ३८३।

४. होत बनिअई आई हमरे, को अब तुमसे झूठ बताय,
हमहूँ घिउ बरसन ब्यांचा है छोटी बडी बजारन जाथ।
हियां की बातें हियै रहि गई, अब आगे का सुनौ हवाल,
गाउँ छोड़ि हम सहर सिधायन लागेन लिखै चुटकुला ख्याल॥
'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० ३८८।

५. यथा— विद्या नहीं है, बल नही है, धन भी नहीं है,
क्या से हुआ है क्या यह गुलिस्तान हमारा

शरीर की दृष्टि से यह गात दो प्रकार के हैं—एकछन्दोमय और मिश्रछन्दोमय उदाहरणार्थ मरगौ नरक ठेकाना नाहिं मेरे प्यारे हिंदुस्तान' आदि एक छन्दोमय और भारतवर्ष' आदि मिश्र छन्दोमय हैं। द्विवेदी जी की कविता का पाचवा रूप गद्य-काव्य है। 'समाचार-पत्रों का विराट रूप' और 'प्लेगराजस्तव' इसी रूप की रचनाएं हैं। इन गद्यकाव्यों में न तो संस्कृत-गद्यकाव्यों की-सी कवि-कल्पना का उत्कर्ष ही है और न हिन्दी-गद्य-काव्यों की-सी धार्मिक भाव-व्यञ्जना। किन्तु ये हिन्दी-गद्यकाव्य के प्रारम्भिक रूप हैं अतएव इनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

द्विवेदी जी ने 'विनयविनोद' की रचना अभ्यासार्थ और स्वान्तःसुखाय ही की थी। तब हिन्दी की न्यूनतापूर्ति की भावना उनमें न थी। हिन्दी के परम्परागत दोहा का ही प्रयोग उन्होंने उसमें किया। मराठी और संस्कृत के अध्ययन ने उन्हें संस्कृत-वृत्तों की ओर प्रवृत्त किया। 'विहारवाटिका' में हिन्दी के दोहा और हरिगीतिका के कुछ पदों के अतिरिक्त सारी पुस्तक संस्कृत के स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलम्बित, वंशस्थ, शिखरिणी, भुजंगप्रयात मालिनी, मन्दाक्रान्ता, नाराच, चामर, वसन्ततिलका, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा इन्द्रवज्रा और इन्द्रवंशा में ही हैं। 'स्नेहमाला' में उन्होंने फिर दोहोंका ही प्रयोग किया किन्तु आगे चलकर 'महिम्नस्तोत्र' के अधिकांश पद शिखरिणी, मालिनी, भुजंगप्रयात, तोमर और प्रज्झाटिका छन्दों में ही रचे गये। 'ऋतुतरंगिणी' की रचना उन्होंने वसंततिलका, मालिनी, द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा में की। 'गंगालहरी' में सवैयों का ही विशेष प्रयोग हुआ किन्तु उनकी आगामी कृति 'देवीस्तुतिशतक' आद्योपान्त वसन्ततिलका में ही लिखी गई। इस गणना का अभिप्राय केवल यह सिद्ध करना था कि अपने कविजीवन के आरम्भिक काल में द्विवेदी जी ने संस्कृत के छन्दों की ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया था। उस युग की प्रवृत्ति की दृष्टि से यह बात अनुपेक्षणीय जंचती है। आगे चलकर भी उन्होंने 'शिवाष्टकम्', 'प्रभातवर्णनम्', 'काककूजितम्' आदि में भी गणात्मक छन्दों का प्रयोग किया। वस्तुतः छन्द के क्षेत्र में द्विवेदी जी की देन गणात्मक छन्दों की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण है। हिन्दी-साहित्य में केशवदास ने इस ओर ध्यान दिया था। उनके पश्चात् हिन्दी-कवियों ने छन्द की इस प्रणाली के प्रति विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखलाई। द्विवेदी जी ने इन छन्दों का प्रयोग करके हिन्दी में इनकी विशेष प्रतिष्ठा की। इस प्रकार 'प्रियप्रवास' आदि गणात्मक-छन्दोमय काव्यों की भूमिका प्रस्तुत हुई। कवि द्विवेदी की अपेक्षा युगनिर्माता द्विवेदी ने इस दिशा में भी अधिक कार्य किया। संस्कृत-छन्दों के अतिरिक्त उन्होंने उर्दू, बंगला, अंगरेजी आदि के तथा स्वतन्त्र छन्दों के प्रयोग और प्रचार के लिए भिन्न कवियों को

प्रोत्साहित किया। उनके प्रयास के फलस्वरूप खड़ीबोली इन छन्दों की सुन्दरता से भी सम्पन्न हुई। इसकी प्रमाणसम्मत विवेचना 'युग और व्यक्तित्व' अध्याय में आगे चलकर की गई है।

भाषा की दृष्टि से द्विवेदी जी के कविता-काल के तीन विभाग किए जा सकते हैं—

क. १८८६ ई० से १८९२ ई० तक।
ख. १८९७ ई० से १९०२ ई० तक।
ग. १९०२ ई० के उपरान्त।

'विनयविनोद' (१८८६ ई०), 'विहारवाटिका'(१८९० ई०), 'स्नेहमाला'(१८९० ई०), 'महिम्नस्तोत्र' (१८९१ ई०), 'ऋतुतरंगिणी' (१८९१ ई०), 'गंगालहरी' (१८९१ ई०), और 'देवीस्तुतिशतक' (१८९२ ई०) ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं। उनका यह काल प्रायः अनुवादों का ही है। उस समय हिन्दी की काव्यभाषा संक्रान्ति की अवस्था में थी। भारतेन्दुकृत खड़ीबोली के प्रयोगों के पश्चात् श्रीधर पाठक आदि ने खड़ीबोली का व्यवहार प्रचलित रखा। अयोध्याप्रसाद खत्री आदि के खड़ीबोली-आन्दोलन ने भी हलचल मचादी थी। तत्कालीन ब्रजभाषा के कवि उसका कोई सर्वसम्मत आदर्श रूप उपस्थित न कर सके। इसका भी कुछ न कुछ प्रभाव द्विवेदी जी पर अवश्य पड़ा होगा। द्विवेदी जी ने संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद प्रायः संस्कृत-छन्दों में ही किए। उनका हिन्दी-भाषा और साहित्य का ज्ञान भी अपरिपक्व था अतएव उनकी उपर्युक्त प्रारम्भिक रचनाओं की भाषा का रूप काव्यमय और निखरा हुआ नहीं है।[1]

द्वितीय काल में उन्होंने ब्रजभाषा, खड़ी बोली और संस्कृत तीनों ही को कविता का माध्यम बनाया। १९०२ ई० में प्रकाशित 'काव्यमंजूषा' इसी प्रकार की कविताओं का संग्रह है।

---

१. क. यथा—

विधाता है कैसो रचत अद्य लोके किमि सुई।
धरे कैसी देही, सकल किन वस्तू निरमई॥
कुतर्कैं हैं मूर्खा कहि खुइमि माया भ्रम परे।
न जाने ऐश्वर्यों सकत नहिं जो खण्डन धरे॥

—'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० १६६।

ख दूषित भाषा के संबंध में द्विवेदी जी का निम्नांकित निवेदन अवेक्षणीय है—

"इसमें बहुत सा संस्कृत वाक्य प्रयोग होने से रोचकता में विरोध हुआ है परन्तु असाधारण छन्द होने के कारण नियतस्थान में शुद्ध हिन्दी शब्द की योजना नहीं हो सकी। इस न्यूनता का मुझे बड़ा खेद है।"

ऋतुतरङ्गिणी की भूमिका

उनकी 'संस्कृत पदावली विशेष प्रसन्न धारा हक तथा का पालित है [1] सरस्वती-सम्पादनके पूर्व द्विवेदी जी ने भाषा-संस्कार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था इसीलिए उनकी खड़ी-बोली की तत्कालीन रचनाओं की भाषा को ब्रज, अवधी आदि के पुट ने विकृत कर दिया है।[2] १६०२ ई० में 'कुमारसम्भव-सार' के द्वारा उन्होंने काव्य-भाषा के रूप में खड़ीबोली की विशेष प्रतिष्ठा की।[3] यत्र तत्र ब्रजभाषा, अवधी या तोड़े मरोड़े हुए शब्दों का प्रयोग उसके महत्व को घटा नहीं सकता।[4] उनकी काव्य भाषा में मुहावरों और कहावतों का अभाव-सा है। लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता या चित्रात्मकताका समावेश भी नगण्य ही है। तथापि हिन्दी-काव्य-भाषा के एकातपत्र सिंहासन पर खड़ीबोली को आसीन कर देने का प्रायः समस्त श्रेय सम्पादक-द्विवेदी को ही है।[5] उन्होंने स्वयं तो सरल, प्रांजल, प्रवाह-युक्त और व्याकरण-सम्मत खड़ीबोली में पद्यात्मक रचनाएँ की ही, अपने आदर्श, उपदेश और प्रोत्साहन से अन्य कवियों को भी खड़ीबोली में कविता लिखने के लिए प्रेरित किया। इसका विस्तृत विवेचन 'युग और व्यक्तित्व' अध्याय में यथास्थान किया गया है।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में, विविध आन्दोलनों के कोलाहल में, भी संस्कारजन्य धार्मिक भावना ने नवयुवक द्विवेदी के हृदय को विशेष प्रभावित किया। भारतेन्दु-युग की धार्मिक कविता में भक्ति-काल की परम्परा का निर्वाह, जनता की धार्मिक भावना का प्रतिबिम्ब

---

१. प्रभातवर्णनम्', 'समाचारपत्रसम्पादक स्तवः' आदि कविताएं उदाहरणीय हैं, यथा—

कुशेशयैः स्वच्छजलाशयेषु
वधूमुखाम्भोजदलैर्गृहेषु।
वनेषु पुष्पैः सविधुः सपर्यां
तत्पादयोः स्पर्शनया कृतार्थीत्॥

—'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० १६६।

२. यथा— 'दिखा पड़ैहै तव रम्यरूपता' आदि

—'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० २६१।

३.— क्यों तुम एकादश रुद्र अधोमुख सारे?
हैं गये कहां हुंकार कठोर तुम्हारे?
क्या तुमसे भी बलवान देवगण कोई
जिसने तुम सब की आज प्रतिष्ठा खोई?॥

—'द्विवेदी-काव्यमाला', पृ० २१५।

४ यथा— 'लगाय' सर्ग १, पद २६, 'प्रणमामी' सर्ग ६, पद ३, 'जाला' सर्ग २, पद ४, 'टपकै है' सर्ग ५, पद ६७ आदि।

५ उसी काल में ठेठ अवधी में लिखित और जनवरी १६०६ ई० की सरस्वती' में प्रकाशित सरगौ नरक टकाना माहिं भाषाविषयक एक है

और उपदेशक का स्वर स्पष्ट है द्विवदा जा सस्कृत की काव्य सरसता और भावपूर्ण स्तुति की ओर विशप आकृष्ट हुए 'महिम्नस्तोत्र' और 'गगालहरी' इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। संस्कृत के परमेश्वरशतक, सूर्यशतक, चंडीशतक आदि की पद्धति पर दैहिक तापों से मुक्ति पाने के लिए उन्होने १८६२ ई० मे 'देवीस्तुतिशतक' की रचना की। धर्मों के परस्पर संघर्षकाल में भी वे मतमतान्तर और धार्मिक वाद-विवाद से दूर ही रहे। उनकी रचनाएँ युग की धार्मिक भावना मे परे और एकान्त भक्तिप्रधान है। उनमे आराध्य देवता का स्तवन और उसके प्रति आत्मनिवेदन है। उनका यह निवेदन कहीं तो निजी कल्याण भावना से और कही लोककल्याण भावना से अनुप्राणित है। उदाहरणार्थ 'देवीस्तुतिशतक' मे उन्होने अपने अमंगलनाश के लिए और अन्य कविताओं में स्थान स्थान पर देश, जाति, समाज आदि के मंगल के लिए देवी-देवताओं एवं ईश्वर मे प्रार्थना की है।[1]

शोकार्त बालविधवाओं की दयनीय दशा मे अभिभूत द्विवेदी जी ने हिन्दू-धर्म की कठोर रूढियों के विरुद्ध लेखनी चलाई और विधवाविवाह को धर्मसंगत बतलाया।[2] टीकाधारी कट्टर कान्यकुब्जो ने क्रोधान्ध होकर उन्हे नास्तिक तक कह डाला। 'कथमहं नास्तिकः' द्विवेदी जी के उसी आहत हृदय की धार्मिक अभिव्यक्ति है। उस एक ही रचना मे उनकी धार्मिक भावनाओं का समन्वय है। परम्परागत धर्माचार के नाम पर बालविधवाओं को बलात् अविवाहित रखना समाज की मूढता, हठधर्म, दम्भ, धर्माडम्बर और नृशंसता है। ईश्वर की प्रसन्नता मूर्तिपूजन, गंगास्नान या सविध सन्ध्योपासन मे नहीं है। सत्यनिष्ठा मे ही मंत्रजप की पावनता, सज्जनो के प्रति भक्तिभाव मे ही भगवद्भक्ति, उनकी पूजा मे ही देवपूजा और प्राणिमात्र के प्रति दया तथा परोपकार मे ही निखिल व्रतों का फल एवं शाश्वत शान्ति है। एकमात्र करुणा ही समस्त सद्धर्मो का सार है।

भारतेन्दुयुग से ही हिन्दीकवि-समाज असाधारण मानवता से साधारण समाज की ओर आकृष्ट होता आ रहा था। काल की इस अनिवार्य गति का प्रभाव द्विवेदी जी पर भी पडा। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा समाजसुधार का भी प्रयास किया। वे चाहते थे कि भारतीय समाज अपनी सभ्यता-संस्कृति को अपनावे, साहित्यकार सच्चे ज्ञान का प्रसार करें, समाज की

---

१ यथा— किए विलम्ब प्रलय पूरी इत ह्वैहै तब पछितैहौ,
स्वकर बनाये को बिगारि के अंत ताप हिय पैहौ।
नहि नहि अस कदापि करिहौ नहि, दयादृष्टि तुम दैहौ,
प्रणतपाल यहि काल उबारन ऐहौ, ऐहौ, ऐहौ ॥
द्विवेदी ' पृ० १८१

२ द्विवदी क ' पृ० २१०

धार्मिक दृष्टि उदार और व्यापक तथा उसका हृदय मानवता के प्रति सहानुभूति से पूर्ण था। उनकी सामाजिक भावना चार विशिष्ट रूपों में व्यक्त हुई। कहीं तो उन्होंने पीड़ित और दयनीय वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखलाई,[१] कहीं समाजसुधार का स्पष्ट उपदेश दिया,[२] कहीं धार्मिक कट्टरपंथियों तथा साहित्यिक बंचकों आदि का व्यंग्यात्मक उपहास किया[३] और कहीं समाज के पथभ्रष्ट हठधर्मियों की कठोर भर्त्सना की।[४]

भारतेन्दुयुग ने समाज की अधोगति के विविध चित्र अंकित किए थे। यज्ञ, श्राद्ध, जातिपाँति, वर्णाश्रमधर्म, स्त्रीशिक्षा, छुआछूत, अन्धविश्वास, धर्मपरिवर्तन, विधवाविवाह, बालविवाह, गोरक्षा, विदेशगमन, मूर्तिपूजा आदि पर लेखनी चलाई थी। सबको सब कुछ कहने की चाट थी। कवियों की रूढ़िवादिता या सुधारवादिता के कारण उनकी रचनाओं में सहानुभूति की अपेक्षा आलोचनाप्रत्यालोचना का ही स्वर अधिक प्रधान था। द्विवेदी जी ने समाज के सभी अंगों पर लेखनीचालन नहीं किया, किसी एक विषय पर भी बहुत सी रचनाएँ नहीं की। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के धर्माडम्बर, बालविधवाओं की दुरवस्था और ठहरौनी की कुप्रथा ने उन्हें विशेष प्रभावित किया। 'कान्यकुब्जलीलामृतम्' में पाखंडी समाज का चित्रण भारतेन्दु-युग की सामाजिक कविताओं की आलोचना-पद्धति पर किया गया है। 'बालविधवाविलाप', 'कान्यकुब्जअबलाविलाप' और 'ठहरौनी' में बालविधवाओं और अबलाओं के प्रति समानुभूति की निदर्शना परवर्ती द्विवेदी-युग की सामाजिक कविता की विशेषता है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में देश और स्वदेशी पर रचित कविताओं में निहित भावनाओं

---

१ उदाहरणार्थ—'भारतदुर्भिक्ष', 'त्राहि नाथ त्राहि' आदि कविताएं 'द्विवेदीकाव्यमाला', में संकलित।

२. यथा—
हे देश! सप्रण विदेशज वस्तु छोड़ो,
सम्बन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरन्त उनसे मुंह आज से ही,
कल्याण जान अपना इस बात में ही॥
'द्विवेदीकाव्यमाला', पृ० ४२३।

३. यथा— 'जन्मभूमि', 'ग्रन्थकारलक्षण', कर्तव्यपञ्चदशी आदि 'द्विवेदीकाव्यमाला' में संकलित।

४. यथा—
क्यों है तुझे पट विदेशज देश भाये?
क्यों है तदर्थ फिरता मुंह नित्य बाये?
तूने किया न मन में कुछ भी विचार,
धिक्कार भारत तुझे शत कोटि बार
पृ० ४२२

के क्रमिक इतिहास की रूपरेखा इस प्रकार है। भारतेन्दु-युग के कुछ कवियों ने भारत के अतीत गौरव की ओर संकेत करके अभिमान का अनुभव किया, देश की दयनीयता का चित्रांकन करके उसे दूर करने के लिए भगवान् से प्रार्थना की। द्विवेदी-युग के अधिकांश कवियों ने अतीत की अपेक्षा वर्तमान पर ही अधिक ध्यान दिया, भगवान् से सहायतार्थ प्रार्थना करने के साथ ही आत्मबल का भी अनुभव किया। वर्तमान क्रान्तिवादी युग तो प्रस्तुत समस्याओं को लेकर अपने ही बल पर संसार को उलट देने के लिए कटिबद्ध है। इस विकास-क्रम में द्विवेदी जी की कविताएं भारतेन्दुयुग और द्विवेदीयुग की मध्यस्थ शृंखला की भाँति हैं। शासकों के गुणगान और भारत के सहायतार्थ ईश्वर से प्रार्थना करने में वे भारतेन्दु-युग के साथ हैं। किन्तु अतीत को छोड़कर वर्तमान के ही चित्र खींचने में वे भारतेन्दु-युग से एक पग आगे बढ़कर द्विवेदी-युग की भूमिका में खड़े हुए हैं।

द्विवेदी जी की राजनैतिक या राष्ट्रीय कविभावना चार रूपों में व्यक्त हुई है। पहला रूप शासकों के गुणगान का है। 'कृतज्ञताप्रकाश' आदि रचनाओं में कुछ सुविधाएं देने वाली सरकार की मुक्तकंठ से प्रशंसा और हर्ष की इतनी असंवृत अभिव्यक्ति की है मानो किसी बच्चे को अभीष्ट खिलौना मिल गया हो। परन्तु ये कविताएं द्विवेदीयुग के पूर्व की हैं। अपने जीवन के आरम्भिक वर्षों में द्विवेदी जी विदेशी सरकार के भक्त थे—यह बात 'चरित और चरित्र' अध्याय में सप्रमाण कही जा चुकी है। इसके दो प्रधान कारण परिलक्षित होते हैं—एक तो भारतेन्दु-युग से चली आनेवाली राजभक्ति की परम्परा और दूसरे अंग्रेजों द्वारा देश में स्थापित की गई शान्ति तथा उन्हें प्रसन्न करके हिन्दी के लिए कुछ प्राप्त करने की भावना। राजनैतिक कविता के दूसरे रूप में द्विवेदी जी ने देश की वर्तमान अधोगति के प्रति क्षोभ प्रकट किया है।[1] इस सम्बन्ध में एक विशेष अवेक्षणीय बात यह है कि उन्होंने भारतेन्दु की सुकरियों या द्विवेदीयुग के राष्ट्रीय कवियों की भाँति अंग्रेजों को देश की दुर्दशा का कारण नहीं माना है और इसीलिए कहीं भी उनके अत्याचारों का निरूपण नहीं किया है। उनकी राजनैतिक कविता का तीसरा रूप भारत के गौरवगान का है। इस भाव की अभिव्यक्ति मुख्यतः चार रूपों में हुई है। कहीं तो उन्होंने भारत के अतीत वैभव की महिमा का वर्णन

---

१. यथा—

यदि कोई पीड़ित होता है,
उसे देख सब धर रोता है।
देशदशा पर प्यारे भाई
आई कितनी बार रुलाई

किया है,[1] कहीं देवरूप में उसकी प्रतिष्ठा की है,[2] कहीं उसके रमणीय प्राकृतिक दृश्यों का रूपांकन किया है[3] और कहीं देश तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति सरल प्रेम की व्यंजना की है।[4] पाचवें रूप में कवि द्विवेदी की स्वतंत्रता की आकांक्षा का व्यक्तीकरण हुआ है। यह अभिव्यक्ति प्रधानतया पाँच प्रकार से हुई है। कहीं देश के कल्याण के लिए देवीदेवताओं की दुहाई दी गई है,[5] कहीं उत्थान के लिए देशवासियों को विनम्र प्रोत्साहन दिया गया है,[6] कहीं अतीत की तुलना में वर्तमान का चित्रण करके भविष्य सुधारने की चेतावनी दी गई[7] है, कहीं राष्ट्रीय जागृति के लिए मेलजोल का राग अलापा गया है[8] और कहीं देश के उद्धार के लिए बाहुबल से क्रान्ति कर देने का संकेत किया गया है।[9]

---

१. यथा— जहां हुए व्यास मुनि प्रधान, ।
रामादि राजा अति कीर्तिमान ।
जो थी जगत्पूजित धन्यभूमि
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥ 'द्विवेदी-काव्यमाला' पृ० ४०६ ।

२. यथा— इष्टदेव आधार हमारे
तुम्हीं गले के हार हमारे,
जै जै जै जै देश। 'द्विवेदी-काव्यमाला' पृ० ४५४ ।

३ यथा— वह जंगल की हवा कहां है ? वह इस दिल की दवा कहां है ?
कहां टहलने का रमना है ? लहरा रही कहां जमुना है ?
वह मोरों का शोर कहां है ? श्याम घटा घनघोर कहां है ?
कोयल की मीठी तानों को , सुन सुख देते थे कानों को ?
'द्विवेदी-काव्यमाला' पृ० ३६१ ।

४. यथा—'जन्म भूमि' में, 'द्विवेदी-काव्यमाला' में संकलित ।

५. यथा— आलस्य, फूट, मदिरा, मद दोष सारे,
छाये यहां सब कहीं टरते न टारे ।
हे भक्तवत्सल ! उन्हें उनसे बचाओ,
हस्तारविन्द उनके सिर पै लगाओ। 'द्विवेदीकाव्यमाला' पृ०३६२।

६. यथा 'द्विवेदी-काव्यमाला' में संकलित 'जन्मभूमि' में ।

७ यथा 'द्विवेदी-काव्यमाला' में संकलित 'आर्यभूमि' और 'देशोपालम्भ' में ।

८ उदाहरणार्थ—
हिन्दू मुसलमान ईसाई, यश गावें सब भाई भाई,
सबके सब तेरे शैदाई, फूलो फलो स्वदेश ।
'द्विवेदी-काव्यमाला' 'पृ०४५३, ४५४ ।

९. यथा कवि—हे स्वतंत्रते ! जन्म तुम्हारा कहां ? बता यह प्रश्न हमारा ।
स्वतंत्रता शूर देशहित तजते नहीं प्राण जन्म मेरा है वहाँ
द्विवेदी पृ० ४२०

हिन्दी-भाषा और साहित्य के पुजारी द्विवेदी जी हिन्दी की दीन दशा से विशेष प्रभावित थे। साहित्यसम्बन्धी विषयों पर लिखित उनकी कविताएं तत्कालीन साहित्य का बहुत कुछ आभास देती हैं। उनमें कहीं मायावी सम्पादकों की वंचक लीलाओं का निरूपण है,[1] कहीं हिन्दीभाषियों द्वारा नागरी के त्यागे जाने और विदेशी भाषाओं के अपनाए जाने पर खेदप्रकाश है,[2] कहीं सरकारी कार्यालयों, कचहरियों आदि में हिन्दी को उचित स्थान दिलाने के लिए निवेदन है,[3] कहीं संस्कृत बंगला, मराठी, अँगरेजी आदि के सामने हिन्दी की हीनता, तुकबंदी की अलंकारवादिता, कवित्वहीन पद्यरचना और समस्यापूरकों तथा खड़ीबोली के विरोधी व्रजभाषाभक्तों की विडम्बना से व्यथित कविहृदय का व्यक्तीकरण है,[4] कहीं यशोलोलुप, ईर्ष्यालु, चोर और अपंडित हिन्दी ग्रन्थकर्ताओं की यथार्थ झाकी है,[5] कहीं कविता का अंगभंग करने वाले हिन्दीपद्यकारों के प्रति क्रोध, शोक तथा उपहास की व्यंजना है[6] और कहीं हिन्दी को आश्रय देने के लिए देशी नरेशों से विनय की गई है।[7] यही प्राग्द्विवेदीयुग—अराजकता-युग—का चित्र है। 'समय नहीं है', 'मुझे लिखना नहीं आता' आदि बहानों के आधार पर विदेशीभाषाप्रेमी हिन्दुओं और हिन्दीभाषियों को हिन्दीसेवा के पथ का पथिक बनाने के लिए ही युगनिर्माता द्विवेदी ने 'संदेश' की रचना की।

रविवर्मा आदि चित्रकारों के चित्रों ने हिन्दीकवियों का ध्यान विशेष आकृष्ट किया। उन चित्रों की वस्तु पर द्विवेदी जी ने स्वयं कविताएं लिखीं और दूसरों से भी लिखवाईं। द्विवेदी-सम्पादित 'कविताकलाप' इसी प्रकार की कविताओं का संग्रह है। द्विवेदी जी की 'रम्भा', 'कुमुद-सुन्दरी', 'महाश्वेता', 'उषास्वप्न' आदि चित्रपरिचयात्मक रचनाओं का आलम्बन पौराणिक या आधुनिक युग की नारी है। आदर्श नारियों के चरित्र अंकित करके वे भारतीय नारी-समाज को सुधारना और सरल, परिष्कृत तथा मंजी हुई पद्यभाषा खड़ीबोली की प्रतिष्ठा एवं प्रचार करना चाहते थे। रविवर्मा के चित्रों का गुणानुवाद भी इन रचनाओं का उद्देश जान पड़ता है। द्विवेदी जी ने हिन्दी-हितैषियों की प्रशंसा में और अवसर-विशेष पर भी अनेक कविताएं लिखीं।[8] 'बलीवर्द', 'काकक्रजितम्', 'जम्बुकी-न्याय', 'टेसू की टाग'

---

१ यथा— द्विवेदी-काव्यमाला' में संकलित 'समाचारपत्रसम्पादकस्तवः' में।
२. ,, ,, 'नागरी तेरी यह दशा' में।
३ ,, ,, 'नागरी का विनयपत्र' में।
४ ,, ,, 'हे कविते' में।
५. यथा— द्विवेदी-काव्यमाला' में संकलित 'ग्रन्थकारलक्षण' में।
६. ,, ,, , 'स्वप्न' में।
७ प्रार्थना' में
८ चक्र कवितायें आदि

आदि में व्यक्तिगत आक्षेप भी है किन्तु इसका विवेचन उचित नहीं प्रतीत होता।

द्विवेदी जी के प्रकृतिवर्णन में वस्तु की नवीनता नहीं है। 'ऋतुतरंगिणी', 'प्रभात-वर्णनम्', 'सूर्यग्रहणम्', 'शरत्सायंकाल', 'कोकिल', 'वसन्त' आदि कविताओं में उन्होंने प्रकृति के रूढ़िगत विषयों को ही अपनाया है। उनका महत्व विधानशैली की दृष्टि से है। वस्तुतः द्विवेदी जी प्रकृति के कवि नहीं हैं। प्रकृति पर उन्होंने कुछ ही कविताएं लिखी हैं जिनका न्यूनाधिक महत्व ऐतिहासिक आलोचना की दृष्टि से है। भाव की दृष्टि से उनकी कविताओं में कहीं तो प्रकृति का भावचित्रण हुआ है और कहीं रूपचित्रण। भावचित्रण में उन्होंने प्रकृतिगत अर्थ का ग्रहण कराने का प्रयास[1] और रूपचित्रण में प्रकृति के दृश्यों का चित्र-सा अंकित किया है।[2] सौन्दर्य की दृष्टि से द्विवेदी जी ने प्रकृति के कोमल और मधुर रूप को ही देखा है, उसके उग्र और भयंकर रूप को नहीं जैसा कि सुमित्रानन्दन पन्त ने अपने 'परिवर्तन'[3] में किया है। 'ऋतुतरंगिणी' में ग्रीष्म का वर्णन यथार्थ होने के कारण द्विवेदी जी की उग्रताविषक प्रवृत्ति का द्योतक नहीं हो सकता। निरूपित और निरूपयिता की दृष्टि से द्विवेदी जी के प्रकृति-वर्णन में केवल दृश्य-दर्शक सम्बन्ध की व्यंजना हुई है, तादात्म्य-सम्बन्ध की नहीं। यही कारण है कि उनकी प्रकृतिविषयक कविताओं में गहरी अनुभूति की अपेक्षा वर्णनात्मकता ही अधिक है। विधान की दृष्टि से उन्होंने प्रकृति-निरूपण दो प्रकार से किया है—प्रस्तुत-विधान और अप्रस्तुत-विधान। उदाहरणार्थ—'ऋतुतरंगिणी' आदि में प्रकृतिचित्रण ही कवि का लक्ष्य रहा है किन्तु 'काककूजितम्' आदि में अप्रस्तुत काक आदि के चित्रण के द्वारा कवि ने प्रस्तुत दुष्टों के चरित्रचित्रण का ही प्रयास किया है। विधान की दृष्टि से उन्होंने प्रकृति का चित्रण दो रूपों में किया है— उद्दीपनरूप में और आलम्बनरूप में। रीतिकालीन परम्परा ने प्रकृति के विविध दृश्यों को शृंगार के उद्दीपनरूप में ही प्रायः अंकित किया था। जगमोहन सिंह और श्रीधरपाठक उसके आलम्बन-पक्ष की ओर भी प्रवृत्त हुए। प्राकृतिक दृश्यों का आलम्बनरूप में चित्रांकन करके द्विवेदी जी ने इस

---

१. यथा—कुमुदपुष्पसुवाससुवासिता, बकुलचम्पकगन्धविमिश्रिता।
मृदुल वात प्रभात भये बहै, मदनवर्द्धक अर्द्धकला कहै॥
'द्विवेदी-काव्यमाला' पृ० ८२।

२. यथा—क्व मामनादृत्य निशान्धारः पलाय्य पाप. किल यस्तीति।
ज्वलन्निव क्रोधभरेण भानुरंगाररूप. सहसाविरासीत्॥
'द्विवेदी काव्यमाला' पृ० १६६।

३ आधुनिक कवि २ में संकलित

प्रणाली को और आगे बढाया [1] इसी काव्यभूमिका में गोपाल शरण सिंह, राम नरेश त्रिपाठी रामचन्द्र शुक्ल, सुमित्रानन्दन पन्त आदि ने आलम्बनरूप में प्राकृतिक दृश्यों का अर्थग्रहण और बिम्बग्रहण कराया।

---

१. यथा—

विशुष्क पत्र द्रुम में अनेका, धंसे धंसे कीचक एक एका।
अनन्त जीवान्तक दुःखदाई, दशों दिशा पावक देत लाई॥

'द्विवेदी काव्यमाला' पृ० ८०।

या – ममाचिरात् सम्भविता समाप्तिः शुचा हृदीनीव विचिन्तयन्ती।
उषः प्रकाशप्रतिभामिषेण विभावरी पांडुरतां बभार॥

'द्विवेदी क० पृ० १६८

पांचवां अध्याय

आलोचना

पश्चिमीय साहित्य में समालोचना का अर्थ किया जाता है रचना के विषय के इतिहास, सौंदर्यसिद्धान्त, रचनाकार की जीवनी आदि की दृष्टि से रचना के गुणदोष और रचनाकार की अन्तर्वृत्तियों तथा प्रवृत्तियों का सूक्ष्म विवेचन। संस्कृत-साहित्यकारों ने इस अर्थ में न तो आलोचना ही की है और न उस शब्द का ही प्रयोग किया है। हिन्दी में प्रचलित समालोचना, समालोचन, आलोचना और आलोचन एक ही अर्थवाचक शब्द हैं। ये शब्द संस्कृत के होते हुए भी अंगरेजी के 'क्रिटिसिज़्म' के समानार्थी हैं। समीक्षा और परीक्षा भी आलोचन के पर्याय हैं। 'क्रिटसिज़्म' के लिए इन शब्दों के चुनाव का आधार क्या है? अपने 'ध्वन्यालोकलोचन' में अभिनवगुप्तपादाचार्य ने लिखा है—

"अपने लोचन (ज्ञान या मन) द्वारा न्यूनाधिक व्याख्या करता हुआ मैं काव्यालोक (ध्वन्यालोक) को जनसाधारण के लिए विशद (स्पष्ट) करता हूँ।"[1]

'चन्द्रिका" (ध्वन्यालोक पर लिखी गई व्याख्या) के रहते हुए भी लोचन के बिना लोक या ध्वन्यालोक का ज्ञान असम्भव है। इसीलिए अभिनवगुप्त ने प्रस्तुत रचना में (पाठकों की) आँखें खोलने का प्रयास किया है।"[2]

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि लोचन लोचक द्वारा भावक को दिया गया वह ज्ञानलोचन है जिसकी सहायता से वह लोचित रचना का उचित भावन कर सके। परीक्षा और समीक्षा शब्द भी इसी अर्थ की पुष्टि करते हैं। संस्कृत के लक्षणग्रन्थों का नामकरण भी इसी अर्थ की भूमिका पर आलम्बित दिखाई देता है। आनन्दवर्धन, मम्मटाचार्य, शारदा-

---

१. यत्किंचिदप्यनुरणन्स्फुटयामि काव्य-
लोक स्वलोचननियोजनया जनस्य ॥
'ध्वन्यालोकलोचन', पृ० २।

२. किं लोचनं विना लोको भाति चन्द्रिकयापि हि।
तेनाभिनवगुप्तोऽत्र लोचनां मोचन व्यधात्॥
पृ० १६४

तनय, जयदेव, विश्वनाथ आदि के ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश, [illegible], 'चन्द्रालोक', 'साहित्यदर्पण' आदि शब्द लोचन के उपर्युक्त अर्थ के ही समर्थक हैं 'सम्' और 'आ' उपसर्गों के सहित लोचन ही समालोचन है। व्याकरण, दर्शन, इतिहास आदि-विषयक ग्रन्थों की समालोचना भी समालोचना ही है। समालोचना की चाहे जो भी परिभाषा की जाय, उसका निम्नांकित लक्षण सर्वव्यापक है--साहित्यिक समालोचना वह रचना है जो आलोचित साहित्यिक कृति के अर्थ या बिम्ब का भली भाँति ग्रहण करने में पाठक, श्रोता या दर्शक की सहायता करे।

इस उद्देश की दृष्टि से संस्कृत ही नहीं, हिन्दी-साहित्य में भी छः प्रकार की आलोचना-पद्धतियां दिखाई देती हैं।

१. आचार्य-पद्धति
२. टीका-पद्धति
३. शास्त्रार्थ-पद्धति
४. सूक्ति-पद्धति
५. खंडन-पद्धति
६. लोचन-पद्धति[1]

द्विवेदी जी की आलोचना भी इन्हीं छः वर्गों के अन्तर्गत होती है।

संस्कृत के आचार्य अपने लक्षणग्रन्थों में काव्यादि के लक्षणों का निरूपण करते थे। जिन लक्ष्यग्रन्थों को वे उत्कृष्ट समझते थे उन्हें रस, अलंकार आदि के सुन्दर उदाहरणों के रूप में और जिन्हें निकृष्ट समझते थे। उन्हें अधम काव्य या दोषों के उदाहरणों के रूप में उद्धृत करके उनके गुणदोषों की यथोचित समीक्षा करते थे। 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदि इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं। हिन्दी-आचार्यों ने अपने रीतिग्रन्थों में मम्मट आदि का अनुकरण न करके पंडितराज जगन्नाथ आदि का अनुकरण किया--सिद्धान्त-निरूपण में दूसरों की रचनाओं के स्थान पर अपनी ही रचनाओं के उदाहरण दिए और दोष-प्रकरण की अवहेलना कर दी। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में भी संस्कृत की आचार्यपद्धति पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए--जैसे गुलाब राय का 'नवरस', कन्हैया लाल पोद्दार का 'काव्य-

---

१. पंडित रामचन्द्र शुक्ल को संस्कृत-साहित्य में आलोचना के केवल दो ही ढंग दिखाई पड़े हैं--आचार्यपद्धति और सूक्तिपद्धति। उनका यह मत है कि 'समालोचना का उद्देश हमारे यहां गुणदोष-विवेचन ही समझा जाता रहा है।'

हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ ६ ० ६३।

शुक्ल जी का यह चिन्तय निर्णय अंशत सत्य है

कल्पद्रुम अनुनदास फड़िया का भारती भूषण अयोध्यासिंह उपाध्याय का रस कलस आदि। इस पद्धति में सिद्धान्तनिरूपण ही प्रधान और उदाहृत रचनाएं गौण हैं। अतएव यह पद्धति वस्तुतः आलोचना की पीठिका है।

'रसज्ञरंजन', 'नाट्यशास्त्र' आदि आलोचनाएं द्विवेदी जी ने आचार्यपद्धति पर की हैं। उनकी आचार्यपद्धति और संस्कृत की परम्परागत आचार्यपद्धति में रूप का ही नहीं आत्मा का भी अन्तर है। सिद्धान्त का निरूपण करते समय उन्होंने संस्कृत-आचार्यों की भांति सगुण या दुष्ट रचनाओं का न तो उद्धरण दिया है और न उनका गुणदोषविवेचन ही किया है यत्र तत्र आए हुए एक दो उदाहरण अपवादस्वरूप हैं।[1] द्विवेदी जी की आचार्य-पद्धति पर की गई आलोचनाओं की पहली विशेषता यह है कि उन्होंने हिन्दी-विद्यापीठ के वास्तविक आचार्यपद से ही सिद्धान्तसमीक्षा की है। छन्द-अलंकारादिनिदर्शक के आसन से कोरा सिद्धान्तनिरूपण ही उनका ध्येय नहीं रहा है।[2] नाटक के क्षेत्र में यथार्थ नाट्यकला से अनभिज्ञ नाटककारों और 'इन्द्रसभा', 'गुलेबकावली' आदि में रुचि रखने वाले दर्शकों को प्रशस्त पथ पर लाने के लिए उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' की रचना की।[3] हिन्दी-कविता अतिशय

१. 'रसज्ञरंजन' में 'रामचरितमानस' पृ० ५१,५२,५३ और 'एकान्तावासी योगी' पृ० ४५ के उद्धरण।

२ क "छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि तो गौण बातें हुईं उन्हीं पर जोर देना अविवेकता-प्रदर्शन के सिवा और कुछ नहीं।" 'विचार-विमर्श', पृ० ४५।

ख "ये सब पूर्वोक्त भेद हमने, यहां पर वाचकों के जानने के लिए दिखा तो दिए हैं, परन्तु हमारा यह मत है कि हिन्दी में नाटक लिखने वालों के लिए इन सब भेदों का विचार करना आवश्यक नहीं। इन भेदों का विचार करके इन में से किसी एक शुद्ध प्रकार का नाटक लिखना इस समय प्रायः असम्भव भी है। देश, काल और अवस्था के अनुसार लिखे गये सभी नाटक, जिनमें मनोरंजन और उपदेश मिले प्रशंसनीय हैं। वे चाहे हमारे प्राचीन आचार्यों के सारे नियमों के अनुकूल बने हों चाहे न बने हों उनसे लाभ अवश्य ही होगा। इससे यह अर्थ न निकालना चाहिए कि नाट्यशास्त्र के आचार्यों में हमारी श्रद्धा नहीं है। हमारे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ये सब जटिल नियम उस समय के लिए थे जिस समय भरत और धनंजय आदि ने अपने ग्रंथ लिखे हैं। इस समय उनको यदि कोई परिवर्तितदशा में प्रयोग करे, और ऐसा करके, यदि वह सामाजिकों का मनोरंजन कर सके, तथा, अपने खेल के द्वारा वह सदुपदेश भी दे सके, तो कोई हानि की बात नहीं।"

'नाट्यशास्त्र', पृ० २६।

३. "नाट्यकला का फल उपदेश देना है। उसके द्वारा मनोरंजन भी होता है और उपदेश भी मिलता है। चाहे जैसा नाटक हो और चाहे जिसने उसे बनाया हो उससे कोई न कोई शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए यदि ऐसा न हुआ तो नाटककार का प्रयत्न व्यर्थ है और दर्शकों

थ गारिकता से आक्रान्त थी लोग कविता के वास्तविक अर्थ को नहीं समझ रहे थे भाषा आदि बहिरंगों को लेकर विवाद चल रहा था। ऊर्मिला-जैसी नारियों के प्रति उपेक्षा थी। सम्पादक, समालोचक, लेखक सभी अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन थे। द्विवेदी जी ने इन बातों की ओर ध्यान दिया। हिन्दी की परिस्थितियों और आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर उन्होंने आलोचनाएं कीं। 'कवि बनने के सापेक्ष साधन', 'कवि और कविता', 'कविता', 'नायिका-भेद', 'कवियों की ऊर्मिलाविषयक उदासीनता', 'उर्दूशतक', 'महिम्नशतक की समीक्षा', 'आधुनिक कविता', 'बोलचाल की हिन्दी में कविता', 'सम्पादकों, समालोचकों तथा लेखकों के कर्तव्य' आदि लेखों में स्थान स्थान पर साहित्य और आलोचना का शास्त्रीय विवेचन करते समय वे सचमुच ही आचार्य बन गए हैं।

उनकी दूसरी विशेषता यह है कि उनका सिद्धान्तनिरूपण सभी आलोचनाओं में यथास्थान बिखरा हुआ है। इसका कारण यह है कि उन्होंने संस्कृत-आचार्यों की भांति सिद्धान्तों को साध्य और लक्ष्य रचनाओं को साधन न मानकर लक्ष्य रचनाओं को भी साध्य और सिद्धान्तों को ही साधन माना है। लेखक या उसकी कृति की आलोचना करते समय जहां कहीं अपने कथन को प्रमाणित या पुष्ट करने की आवश्यकता पड़ी है वहां पर उन्होंने अपने या अन्य आचार्यों के सिद्धान्तों का उपस्थापन किया है।[1]

उनकी सिद्धान्तमूलक आलोचनाओं की तीसरी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने सिद्धान्तों को किसी वाद के बन्धन में नहीं बांधा है। वे न तो भरत, विश्वनाथ आदि की भांति रसवादी हैं, न भामहादि की भांति अलङ्कारवादी हैं, न वामन आदि की भांति रीतिवादी हैं न कुन्तक आदि की भांति वक्रोक्तिवादी हैं, न आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त आदि की भांति ध्वनिवादी हैं, न पंडितराज जगन्नाथ की भांति चमत्कारवादी हैं और न पश्चिमीय समीक्षाप्रणाली से प्रभावित आलोचक की भांति अन्तःसमीक्षावादी हैं। उनकी आलोचनाओं में सभी वादों के सार का समन्वय है। उन्होंने अपनी आलोचनाओं में व्यवहारबुद्धि से काम लिया है, किन्तु कोरे उपयोगितावादी भी नहीं हैं। उन्होंने किसी वाद का खंडन

का नेत्रव्यापार भी व्यर्थ है। जो लोग 'इन्दर-सभा' और गुलेबकावली' आदि खेल, जो पारसी थियेटर वाले आजकल प्रायः खेलते हैं, देखने जाते हैं उन्हें अपना हानि-लाभ सोचकर वहां पधारना चाहिए।"

'नाट्यशास्त्र' पृ० ५७।

१. उदाहरणार्थ, कालिदास के ग्रन्थों की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं– 'जिस साहित्य में समालोचना नहीं वह चित्रपहीन महीरुह के समान है। उसे देखकर नेत्रानन्द नहीं होता। उसके पाठ और परिशीलन से हृदय शीतल नहीं होता वह नीरस मालूम होता है"

कालिदास और उनकी कविता' पृ १११

गढन करने के लिए लेखनी नहीं उठाई। अतएव उनकी रचनाओं को किसी वाद के उपनयन से देखने का मार्ग सर्वथा अक्षत है।

साहित्य और मनुष्यत्व में बहुत गहरा सम्बन्ध है। द्विवेदी जी का कथन है कि साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसके आकलन से बहुदर्शिता बढ़े, बुद्धि की तीव्रता प्राप्त हो, हृदय में एक प्रकार की संजीवनीशक्ति की धारा बहने लगे, मनोवेग परिष्कृत हो जायं और आत्मगौरव की उद्भावना हो।[1] महाकवि इस काम को समुचित रूप से कर सकते हैं। महाकवि वस्तुतः है भी वही जिसने उच्च भावों का उद्बोधन किया है। उसे भी आचार्यों के नियमों का न्यूनाधिक अनुशासन मानना ही पड़ता है। महाकवि का काव्य उच्च, पवित्र और मङ्गलकारी होता है।[2] वह कवि के स्वान्तःसुखाय ही नहीं होता। वह परार्थ को स्वार्थ से अधिक श्रेयस्कर समझता है। उसका लक्ष्य बहुजनहिताय है।[3] अन्तःकरण में रसानुभूति कराकर उदार विचारों में मन को लीन कर देना कविता का चरम लक्ष्य है। कविता एक सुखदायक भ्रम है जिसके उपभोग के लिए एक प्रकार की भावुकता, सात्विकता और भोलेपन की अपेक्षा है।[4] कविता कवि की कल्पना द्वारा अंकित अन्तःकरण की वृत्तियों का चित्र है।[5] सुन्दर कविता का विषय मनुष्य के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। वह उसकी आत्मा और आध्यात्मिकता पर गहरा असर डालता है।[6] कवि की प्रतिभा द्वारा किया गया जीवन के सत्य का चमत्कारपूर्ण उपस्थापन आनन्द की सृष्टि करता है।[7] कवि के कल्पना-प्रधान जगत् में सर्वत्र सम्भवनीयता ढूंढना व्यर्थ है।[8] कविता और पद्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए द्विवेदी जी ने बतलाया कि वास्तव में कविकर्म बहुत कठिन है। वह पिंगलशास्त्र के अध्ययन और समस्यापूर्ति के अभ्यास का ही परिणाम नहीं है।[9] वह किसी एक ही भाषा की सम्पत्ति नहीं है।[10] उस संक्रान्ति-काल के हिन्दी-कवियों के लिए उन्होंने

---

१ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन के अवसर पर स्वागताध्यक्षपद से द्विवेदी जी द्वारा दिए गए भाषण के पृ० ३२ के आधार पर।

२. 'समालोचना-समुच्चय', 'हिन्दी-नवरत्न', पृष्ठ २२८ के आधार पर।

३. 'समालोचना-समुच्चय', 'भारतीय चित्रकला', पृष्ठ २६ के आधार पर।

४ 'रसज्ञरंजन', 'कविता', पृष्ठ ५५ के आधार पर।

५. 'रसज्ञरंजन', 'कविता', पृ० ५० के आधार पर।

६ 'विचार-विमर्श', 'आधुनिक कविता' के आधार पर।

७. 'रसज्ञरंजन', 'कवि बनने के सापेक्ष साधन', पृष्ठ २६ के आधार पर।

८. 'समालोचना-समुच्चय', 'हिन्दी नवरत्न', पृष्ठ २३८ के आधार पर।

९ 'रसज्ञरंजन', 'कवि बनने के सापेक्ष साधन', पृष्ठ २० के आधार पर।

१० [illegible]-समुच्चय उर्दू शतक', पृष्ठ १४३ के आधार पर

स्पष्ट सन्देश दिया था रस, भाव, अलङ्कार छन्द शास्त्र और नायिकाभेद से साधारणतः का बहुत ही कम उपकार हो सकता है उसका त्याग आवश्यक है इस प्रकार का साहित्य समाज की दुर्बलता का चिन्ह है। इसके न होने से साहित्य का लाभ होगा।[1] लोक-रुचि के अनुसार सहज मनोहर काव्य-रचना की अपेक्षा है जिससे जनता में नवीन कविता के प्रति अनुराग उत्पन्न हो। नवीन भाव-विचार को लेकर कल्पित अथवा सत्य आख्यान के द्वारा सामाजिक, नैतिक आदि विषयों पर काव्य-निबन्धना होनी चाहिए।

आलोचना के विषय में भी द्विवेदी जी के विचार निश्चित थे। 'हिन्दी कालिदास' की समालोचना में उन्होंने सुबन्धु की 'वासवदत्ता' के निम्नांकित श्लोक को उद्धृत करके आलोचना के अर्थ और प्रयोजन की ओर संकेत किया था--

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव संभवति।
स्वमहिमदर्शनमक्षणोर्मुकुरकरतले जायते यस्मात्॥

अपने इस विचार को उन्होंने 'कालिदास और उनकी कविता' में स्पष्ट किया है--

"कवि या ग्रन्थकार जिस मतलब से ग्रन्थरचना करता है उससे सर्वसाधारण को परिचित कराने वाले आलोचक की बड़ी ही जरूरत रहती है। ऐसे समालोचकों की समालोचना से साहित्य की विशेष उन्नति होती है और कवियों के गूढ़ाशय मामूली आदमियों की समझ में आ जाते हैं। कालिदास की शकुन्तला, प्रियम्वदा और अनसूया में क्या भेद है? उनके स्वभावचित्रण में कवि ने कौन कौन सी खूबियां रक्खी हैं? उनसे क्या क्या शिक्षा मिलती है? ये बातें सब लोगों के ध्यान में नहीं आ सकतीं अतएव वे उनसे लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। इसे थोड़ी हानि न समझिए। इससे कवि के उद्देश का अधिकांश ही व्यर्थ जाता है। योग्य समालोचक समाज को इस हानि से बचाने की चेष्टा करता है। इसी से साहित्य में उसका काम इतने आदर की दृष्टि से देखा जाता है--इसी से साहित्य की उन्नति के लिए उसकी इतनी आवश्यकता है।"[2]

परम्परागत भारतीय समालोचनाप्रणाली के भक्त होते हुए भी द्विवेदी जी ने पाश्चिमात्य नवीन प्रणाली के गुणों को अपनाया।[3] दोषदर्शन को उन्होंने बुरा नहीं समझा। उनका कथन है कि समालोचक को न्यायाधीश की भांति निष्पक्ष और निर्भय होना पड़ता है। सच्चे समालोचक को बड़े बड़े कवि, विज्ञानवेत्ता, इतिहास-लेखक और वक्ताओं की कृतियों पर

---

१. 'रसज्ञरंजन', 'नायिकाभेद', पृष्ठ ६२ के आधार पर।
२. 'कालिदास और उनकी कविता', पृ० १३।
३ प्राचीन कवियों के काव्य में ... पृ० ३

फसला सुनाने का अधिकार होता है ढग सभ्यतापूर्ण और युक्ति-सगत होना चाहिए पाडित्यसूचक आलोचना भूलों के प्रदर्शन तक ही रह जाती है। प्रमुख बात तो आलोचक की वस्तूपस्थापन-शैली, मनोरंजकता, नवीनता, उपयोगिता आदि है। जिसके कार्य या ग्रन्थ की समालोचना करनी है उसके विषय मे समालोचक के हृदय मे अत्यन्त सहानुभूति का होना बहुत आवश्यक है। लेखक, कवि या ग्रंथकार के हृदय मे घुसकर समालोचक को उसके हर एक परदे का पता लगाना चाहिए। अमुक उक्ति लिखते समय कवि के हृदय की क्या अवस्था थी, उसका आशय क्या था, किस भाव को प्रधानता देने के लिए उसने वह उक्ति कही थी—यह जब तक समालोचक को नहीं मालूम होगा तब तक वह उस उक्ति की आलोचना कभी न कर सकेगा। किसी वस्तु या विषय के सब अंगो पर अच्छी तरह विचार करने का नाम समालोचना है। वह तबतक सभव नही जब तक कवि और समालोचक के हृदय मे कुछ देर के लिए एकतान स्थापित हो जाय।[1] व्यवहार के क्षेत्र मे आकर समालोचकों को अनेक बातों का ध्यान रखना पडता है। समाज के भय की चिन्ता न करके विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक उपस्थित करने का उनमे गुण होना चाहिए। उनका कथन स्पष्ट, सोद्देश्य, तर्कसम्मत और साधिकार होना चाहिए।[2] आलोचना का लक्ष्य मत का निर्माण और रुचि का परिष्कार है। अनर्गल बातें और अत्युक्तियां तो सर्वथा त्याज्य हैं।[3] जहा पारस्परिक तुलना और श्रेष्ठता का प्रश्न हो वहा युग, परिस्थिति, व्यक्ति, लक्ष्य, कल्याणकारिता आदि पर भलीभाति विचार करना पडता है। आलोचक की तुली हुई और संयत भाषा मे गहरे चिन्तन एवं मूल्याकन का आभास मिलना चाहिए। द्विवेदी जी ने अपने उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने का भरसक प्रयास किया परन्तु युग की बहुमुखी आवश्यकताओ ने पूर्ण सफलता न पाने दी। इसकी समीक्षा आगे की जायगी।

टीकापद्धति ने सिद्धान्त की अपेक्षा आलोच्य कृति को अधिक महत्व दिया है। मल्लिनाथ आदि कोरे टीकाकार ही न थे, समालोचक भी थे। टीका लिखते समय उन्होंने कवि के आशय को तो स्पष्ट करके बता ही दिया है, उसकी उक्तियों की विशेषताएं भी बताई हैं और रस, अलङ्कार, ध्वनि आदि का भी उल्लेख किया है। इस पद्धति ने रचनागत अर्थ और व्याकरणपक्ष पर ही अधिक ध्यान दिया। सम्भवतः संस्कृत के उस उत्थान-काल मे काव्य-जैसे सरल विषय की विस्तृत आलोचना अनपेक्षित समझी गई थी। रूपकों के टीकाकारों

१. 'कालिदास और उनकी कविता', पृ० ११२।
२ 'समालोचना-समुच्चय' 'हिन्दी नवरत्न' पृ २ २११ २३३ के आधार पर
३ सम -समुच्चय' हिन्दी नवरत्न पृ० २३५ के आधार पर

ने स्थान स्थान पर शास्त्रीय दृष्टि से उनकी बहुत कुछ आलोचना की है या ग्रन्थों प्रस्तावना, सन्धियों, सन्ध्यङ्गों आदि के अवसरों पर। व्याकरण, दर्शन आदि काव्येतर विषयों की आलोचना पर्याप्त और विशद हुई, उदाहरणार्थ पंतजलि का 'महाभाष्य', 'शांकरभाष्य' आदि। इस पद्धतिकी विशेषता अर्थव्याख्या के साथ साथ रस, अलङ्कार आदि के निर्दशन मे है। हिन्दी में 'मानसपीयूष', पद्मासिंहशर्मा की 'बिहारी-सतसई', जगन्नाथदास का 'बिहारी-रत्नाकर' आदि इसी कोटि की कृतियाँ हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ समालोचक रामचन्द्र शुक्ल भी अपनी आलोचनाओं के बीच बीच में इस पद्धति पर चले बिना नही रह सके है।[1]

केवल हिन्दी जानने वालों को 'मामिनी-विलास' आदि की काव्यमाधुरी का आस्वाद कराने के लिए द्विवेदी जी ने उनके हिन्दी-भाषान्तर प्रस्तुत किए। उन अनुवादों मे आलोचनात्मक टीकापद्धति की कोई विशेषता नहीं है। संस्कृत-टीकापद्धति का उद्देश था सरल वर्णनात्मक शैली में पाठकों को आलोचित ग्रथ के अर्थ और गुणदोषका ज्ञान कराना। इस उद्देश और शैली के अनुकूल चलने वाली द्विवेदीकृत आलोचना में हम इस पद्धति के तीन विकसित या परिवर्तित रूप पाते हैं। पहला रूप है उनके द्वारा की गई काव्य-चर्चा।[2] 'नैषधचरितचर्चा' और 'विक्रमाकदेवचरितचर्चा' मे 'नैषधचरित' और 'विक्रमाकदेवचरित' की परिचयात्मक आलोचना है। काव्य के रचयिता और कथा के परिचय के साथ कहीं कहीं कवित्वमय सुन्दर स्थलों की व्याख्या भी की गई। 'कालिदास की वैवाहिकी कविता'[3] 'कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल'[4] आदि व्याख्यात्मक आलोचनाएं संस्कृत-टीकापद्धति के अधिक समीप है। दूसरा रूप है 'सरस्वती' मे प्रकाशित पुस्तक-परिचय। इसमे संस्कृत टीकापद्धति की भाति पदगत अर्थ या गुणदोषविवेचन आलोचक का लक्ष्य नहीं है। पुस्तक की परीक्षा व्यापक रूप मे की गई है। द्विवेदीलिखित व्याख्यात्मक आलोचना के तीसरे रूप में साहित्यकारों की जीवनियां हैं। 'कोविदकीर्तन

---

१ 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका में सूर की आलोचना।

२. "संस्कृत ग्रन्थों की समालोचना हिन्दी में होने से यह लाभ है कि समालोचित ग्रन्थों का सारांश और उनके गुणदोष पढ़ने वालों को विदित हो जाते है। ऐसा होने से सम्भव है कि संस्कृत में मूल ग्रन्थों को देखने की इच्छा से कोई कोई उस भाषा का अध्ययन करने लगें, अथवा उसके अनुवाद देखने की अभिलाषा प्रकट करें। अथवा यदि कुछ भी न हो, संस्कृत का प्रेममात्र उनके हृदय में अंकुरित हो उठे, तो इसमें भी थोड़ा बहुत लाभ अवश्य ही है।"

'विक्रमांकदेवचरितचर्चा', पृ० १।

३. 'सरस्वती', जून, १९०५ ई०।

४ सरस्वती अप्रैल १९११ ई०

प्राचीन मणि और कवि, 'सुकविसङ्कीर्तन आदि इसी प्रकार की आलोचना-पुस्तकें हैं संस्कृत-साहित्य में रचना की व्याख्या में रचनाकार को कोई स्थान नहीं दिया गया था। इसका कारण था उन आलोचकों का दृष्टिभेद। वे अर्थ की व्याख्या करते चले जाते थे और जहां प्रयोजन समझते थे, न्यूनाधिक आलोचना भी कर देते थे। उन आलोचकों के समक्ष एक ही प्रश्न था—आलोच्य वस्तु क्या है? उसके रचनाकार तक जाना उन्होंने निष्प्रयोजन समझा। द्विवेदी जी ने रचयिताओं की आलोचनाद्वारा उनकी कृतियों से भी पाठकों को परिचित कराया। उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'अश्वघोषकृत सौन्दरानन्द',[1] 'महाकवि भास के नाटक',[2] वेंकटेश्वर प्रेस की पुस्तकें',[3] 'गायकवाड़ की प्राच्यपुस्तकमाला'[4] आदि फुटकल लेख भी इसी कोटि में हैं।

पूर्ववर्ती समीक्षकों से असहमत होने के कारण उनके परवर्ती आलोचकों ने तर्कपूर्ण युक्तियों के द्वारा दूसरों के मत का खंडन और अपने विचारों का मंडन करने के लिए शास्त्रार्थपद्धति चलाई। इन आलोचकों ने विपक्ष के दोषों और अपने पक्ष के गुणों को ही देखने की विशेष चेष्टा की। कहीं तो समीक्षक ने तटस्थभाव से ईर्ष्यामत्सरादिरहित होकर सूक्ष्म विवेचन किया, यथा आनन्दवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' के तृतीय उद्योत में और मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' के चतुर्थ और पंचम उल्लास में। कहीं पर उसने गर्व के वशीभूत होकर पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों का खंडन और अपने विचारों का मंडन किया यथा पंडितराज जगन्नाथ ने 'रसगंगाधर' में; और कहीं पर उसने शत्रुभाव से विपक्ष का सर्वनाश करने की चेष्टा की। इस दृष्टि से महिमभट्ट का 'व्यक्ति-विवेक' अत्यन्त रोचक और निराला है। आधुनिक हिन्दी के आलोचना-साहित्य में भी 'बिहारी और देव', 'देव और बिहारी' आदि शास्त्रार्थपद्धति पर की गई रचनाएं हैं।

'चरित और चरित्र' अध्याय में यह कहा जा चुका है कि किसी विषय में विवाद उपस्थित हो जाने पर द्विवेदी जी अपने कथन को पाण्डित्य और तर्क के बल से अकाट्य प्रमाणित करके ही छोड़ते थे। आलोचनाक्षेत्र में भी उनकी यह विशेषता कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'नैषध-चरितचर्चा और सुदर्शन',[5] 'भद्दी कविता',[6] 'भाषा और व्याकरण',[7] 'कालिदास की

१ 'सरस्वती', १९१३ ई०, पृ० २८०।
२. 'सरस्वती', १९१३ ई० ,, ९३।
३ ,, १९१७ ई०, ,, १४०, १९७, २६५।
४. ,, १९१६ ई०, ,, १९३।
५. 'सरस्वती', १९०१ ई०, ,, ३४५।
६ ,, १९०६ ई० ३९३।
७

निरकुशता पर विद्वानों की सम्मतियाँ'[१] 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना'[२] आदि उनकी आलोचनाएँ शास्त्रार्थपद्धति पर की गई हैं। विपक्ष का खंडन और स्वपक्ष का मंडन करते समय उन्होंने कठोर तर्क से काम लिया है। ओज लाने के लिए उन्होंने निस्संकोचभाव से संस्कृत, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग किया है। कहीं कहीं आक्षेपों की तीव्रता असह्य हो गई है।[३] स्थान स्थान पर सन्दर्भों, सिद्धान्तों आदि का सन्निवेश करके अपने मत को पुष्ट सिद्ध करने में उन्हें सफलता मिली है।[४]

सुन्दर जँचनेवाली वस्तु की प्रशंसा करना मनुष्य का स्वभाव है। संस्कृत-काव्यों और कवियों के विषय में भी प्रशंसात्मक सुभाषित लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हुए, यथा—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

---

१. ,, १९११ ई०, पृ० १९२।

२ ,, ,, ,, १५९, २२३, २७२।

३. "अपने पहले लेख में एक जगह हमने लिखा—मन में जो भाव उदित होते हैं वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं। इस पर उम्र भर कवायददानों की सोहबत और जुबादानों की खिदमत करके नामपाने वाले हमारे समालोचकों में से एक समालोचकशिरोमणि ने दूर तक मसखरापन छाँटा है। आप की समझ में यहाँ पर सहायता गलत है। अब आप को चाहिए कि ज़रा देर के लिए जुबांदानी का चोगा उतार कर मेक्समूलर के सामने आवें। या अगर उर्दू फारसी ही के जाननेवाले आप की समझ में सर्वज्ञ हों तो इल्हामदानी का जामा पहन कर आप पंडित इक़बाल कृष्ण कौल एम० ए० के ही सामने सिर झुकावें। 'रिसाले तालीम व तरबियत' नाम की अपनी किताब के शुरू ही में पंडित साहब फ़रमाते हैं—"अशयाए खारजिया का इल्म हमको इन्हीं कुव्वतों के ज़रिए होता है। ...हवास के ज़रिए जो खयालात पैदा होते हैं...।" लेकिन दूसरों को भी कुछ समझने और उनकी बात मानने वाले जीव और ही होते हैं। बहुत तरफ की बातें फाकने का ख्याल आते ही इन जीवों को तो जूड़ी आ जाती है। वे इन्हें हजम ही नहीं होती। हजम होती है सिर्फ एक चीज़—प्रलाप। उसे वे इतना खा जाते हैं कि उगलना पड़ता है।"

सरस्वती, 'भाग ७, सं० २, पृ० ६३।

४. "योग्य समालोचक के लिए यह कोई नहीं कह सकता कि जिसकी पुस्तक की तुम समालोचना करना चाहते हो उसके बराबर विद्वत्ता प्राप्त कर लो तब तो समालोचना लिखने के लिए कलम उठाओ। होमर ने ग्रीक भाषा में 'इलियड' काव्य लिखा है। वाल्मीकि और कालिदास ने संस्कृत में अपने काव्य लिखे हैं। फिरदौसी ने फारसी में शाहनामा' लिखा है। कौन ऐसा समालोचक इस समय है जो इन भाषाओं में पूर्वोक्त विद्वानों के सदृश योग्यता रखने का दावा कर सकता हो?"

आलोचनाञ्जलि' पृ० ३

तावद्भा भारवेर्भाति नोदय
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ॥
रुचिरस्वरवर्णपदा नवरसरुचिरा जगन्मनोहरति ।
किं सा तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

अपनी तथा दूसरों की प्रशंसा में महान् कवियों और आचार्यों ने भी सूक्तियों की रच[1] हिन्दी में भी प्रशंसात्मक सूक्तियां लोकप्रचलित हुई, यथा—

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास ।
अब के कवि खद्योत सम जहं तहं करहि प्रकास ॥
कवितार्कर्त्ता तीन हैं तुलसी केसव सूर ।
कविता खेती इन लुनी कांकर बिनत मंजूर ॥
तुलसी गङ्ग दुऔ भए सुकविन के सरदार ।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार ॥
साहित्यकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः ।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता ॥

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में भी सूक्तिपद्धति पर रचनाएं हुई हैं। डाक्टर रसाल 'ढवशतक' का प्राक्कथन, 'शेषस्मृतियां' की रामचन्द्र शुक्ल-लिखित भूमिका आदि कृति धुनिक समालोचना के सांचे में ढली हुई प्रवर्द्धित, संस्कृत, गद्यमय और प्रशंसात्

क नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता ।
वृथैव दंडिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥
विज्जिका देवी

ख. कवीनामगलद्दर्पो नूनं बाणवदन्तया ।
बाणभट्ट, 'हर्षचरित' की भूमिका ।

ग. यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकथासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलिं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥
जयदेव, 'गीतगोविन्द' की भूमिका ।

घ. भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥
बाण—'हर्षचरित'

निमग्नेन क्लेशैर्मननजलधेरन्तरुदरं
मयोन्नीतो लोके ललितरसमांगाधरमणिः ।
हरन्नन्तर्ध्वान्तं हृदयमधिरूढो गुणवता—
मलंकारान सर्वानपि गलितगर्वान रचयतु ।
पण्डितराज जगन्नाथ रसगंगाधर, पृ० २१

सूक्तियां ही हैं मैत्री विज्ञापन आदि से अप्रभावित गुणवाचक आलोचना भी रचनाकार और भावकों का विशेष हित कर सकती है ।

द्विवेदी जी द्वारा सूक्तिपद्धति पर की गई आलोचनाएँ अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। 'महिषशतक की समीक्षा'-जैसे लेख 'गर्दभकाव्य' और 'बलीवर्द' का औचित्य सिद्ध करने और 'हिन्दी-नवरत्न'[1] आदि दोषान्वेषण के अयश से बचने के लिए ही लिखे गए जान पड़ते हैं। श्रीधर पाठक की 'काश्मीर-सुषमा', मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती', 'गोपालशरण सिंह की कविता' आदि की जो आलोचनाएँ द्विवेदी जी ने की हैं वे वस्तुतः प्रशंसात्मक हैं।[2] परम्परागत सूक्तिपद्धति और द्विवेदीकृत सूक्तिसमीक्षा में केवल रूप और आकार का ही अन्तर है। द्विवेदी जी की आलोचनाएं गद्यमय और विस्तृत हैं। हां, प्रभावोत्पादकता लाने के लिए कहीं कहीं प्रशंसात्मक पदों की योजना अवश्य कर दी गई है।[3] द्विवेदी जी की सूक्तियों में किसी प्रकार की मायिकता या पक्षपात नहीं है।[4] धर्मसंकट की दशा में जिस रचना की प्रशंसा करना उन्होंने अनुचित समझा उसकी आलोचना करना ही अस्वीकार कर दिया।[5]

---

१. 'सरस्वती', १९१२ ई०, पृ० ३०।

२. ये तीनों आलोचनाएँ 'सरस्वती' में क्रमशः जनवरी, १९०५ ई०, अगस्त, १९१४ ई० और सितम्बर, १९१४ ई० में प्रकाशित हुई थीं।

३. "यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन को ओक, यहीं कहुं बसत पुरन्दर॥
ऐसे ही मनोहर पद्यों में आपने 'काश्मीर-सुषमा' नाम की एक छोटी सी कविता लिखकर प्रकाशित की है काश्मीर को देखकर आपके मन में जो जो भावनाएं हुई है उनको उसमें आपने मधुमयी कविता में वर्णन किया। पुस्तक के अन्त में आपकी 'शिमलाप्रेक्षणम्' नाम की एक छोटी सी संस्कृत कविता भी है। हम कहते हैं कि—
ताहि रसिकवर सुजन अवसि अवलोकन कीजै।
मम समान मनमुग्ध ललकि लोचनफल लीजै।"
'सरस्वती', भाग ६, पृ० २।

४ "मित्रता के कारण किसी की पुस्तक की अनुचित प्रशंसा करना विज्ञापन देने के सिवा और कुछ नहीं।"
द्विवेदी जी—'विचार-विमर्श', पृ० ४५।

५. " 'साधना' उत्कृष्ट छपाई और बंधाई का आदर्श है। देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ बाबू मैथिली शरण पर और आप पर भी मेरा जो भाव है वह मुझे इस पुस्तक की समालोचना करने में बाधक है। अपनी चीज को समालोचना ही क्या? अतएव क्षमा कीजिएगा।"
दास को लिखित २१ ७ १९१८ ई० सरस्वती' भाग ४६ सं० २, प्र ८२

मनुष्य क जा लोग केवल गुण ही देख सकते हैं, उनमें केवल दोष ढूंढ़ने की भी प्रवृत्ति है। इसी सहजबुद्धि ने पंडितराज जगन्नाथकृत 'चित्रमीमांसाखण्डन' आदि को जन्म दिया। हिन्दी-समालोचनासाहित्य में कृष्णानन्द गुप्त-लिखित 'प्रसाद जी के दो नाटक' आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं। संस्कृत-साहित्य में आचार्यपद्धति में भी दूसरों का खण्डन किया गया था। परन्तु वह खंडन-पद्धति में बहुत कुछ भिन्न था। वह केवल खंडन के लिए न था। वह साध्य नहीं था, साधन था। अपने मत को भली भांति पुष्ट और आप्त सिद्ध करने के लिए विरोधी मतों का समुचित खंडन अनिवार्य था। खंडनपद्धति सोलहों आने दोषदर्शनप्रणाली है। ईर्ष्या, द्वेष आदि से रहित होकर की गई दोषवाचक आलोचना भी, दूषित और भ्रष्ट रचनाओं का प्रचार रोकने तथा साहित्यकारों को त्रुटियों और दोषों के प्रति सावधान करने लिए, साहित्य की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

संस्कृत-साहित्य में खंडनपद्धति के दो रूप मिलते हैं। एक तो आचार्यों द्वारा उन सिद्धान्तों या अर्थों का खंडन जिनको उन्होंने स्वीकार नहीं किया; उदाहरणार्थ अभिनव गुप्त-कृत भट्ट लोल्लट, श्री शंकुक और भट्ट नायक की रस-विषयक व्याख्या का दोषनिरूपण। इसका उद्देश था वास्तविक ज्ञान का प्रचार। दूसरे रूप में वह खंडन है जिसमें मत्सरादिग्रस्त आलोचक ने अपने पाण्डित्य और आलोच्यित की अज्ञता या हीनता का प्रदर्शन करने का प्रयास किया है, यथा जगन्नाथ राय का 'चित्रमीमांसा-खंडन'। इस पद्धति की विशेषता है केवल त्रुटियों या अभावों की समीक्षा। द्विवेदी जी की खंडनपद्धति दो प्रकार की है— अभाव-मूलक और दोषमूलक। पहली का उद्देश था हिन्दी के अभावों की आलोचना द्वारा उनकी पूर्ति के लिए हिन्दी-साहित्यकारों को प्रेरित करना। इसके दो रूप हैं—एक का उदाहरण है 'हिन्दी-साहित्य'[1] सरीखे व्यंग्यचित्र और दूसरी के उदाहरण 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता'[2] आदि लेख हैं जिनमें हिन्दी की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया गया है। 'हिन्दी-नवरत्न' आदि लेखों में भी यत्र तत्र आलोचना की इस पद्धति का पुट है।[3]

---

१. 'सरस्वती', १९०२ ई०, पृ० ३२।

२. 'रसज्ञरंजन' में संकलित।

३. "वे दिखलाते कि कौन कौन सी बातें होने से किसी कवि की गणना रत्न कवियों में हो सकती है। फिर कविरत्नों की कवितादीप्ति की भिन्न भिन्न प्रभाओं की मात्रा निर्दिष्ट करते, जिससे यह जाना जा सकता कि कितनी प्रभा होने से बृहत्, मध्य और लघुत्वयी में उन कवियों को स्थान दिया जा सकता है। यदि वे ऐसा करते तो उनके बतलाए हुए लक्षणों की जांच करने में सुभीता होता, तो लोग इस बात की परीक्षा कर सकते कि जिन गुणों के होने से लेखक ने कवि को कविरत्न की पदवी के योग्य समझा है वे गुण

द्विवेदी जी का दोषमूलक आलोचना के अनेक उद्देश थ , हिन्दी म बढ़ते हुए कूड़ाकर कट के संहार के लिए 'भाषा-पद्य-व्याकरण' आदि की खंडनप्रधान तीव्र आलोचना[1] की अनिवार्य अपेक्षा थी। लाला सीताराम आदि लेखकों के अनुवादों की दोषमूलक समीक्षा का लक्ष्य था कालिदासादि महान् कवियों के गौरव की रक्षा।[2] 'हिन्दी-नवरत्न' आदि की आलोचना द्वारा वे लेखकों को सुधार कर साहित्य-रचना के आदर्श मार्ग पर लाना चाहते थे।[3] 'कालिदास की निरंकुशता'-जैसी समीक्षा साहित्यमर्मज्ञों के मनोरंजनार्थ लिखी गई थी।[4] इन समालोचनाओं के शरीर भी अनेक प्रकार के थे। 'कलासर्वज्ञसम्पादक',[5] 'काशी

वैसे ही हैं या नहीं, और वे प्रस्तुत कवियों में पाये भी जाते हैं या नहीं।"

'समालोचना-समुच्चय', पृ० २०७।

१. आपने कैसे पद्य में व्याकरणविषय सिखाये हैं सो भी देख लीजिए। अनुवाद विषय पाठ आप यों पढ़ते हैं—

प्रथम स्वभाषा वाक्य को श्यामपटल पर लिखौ।
बालकगण स्वकापी पर प्रतिलेख सबै लिखौ॥
प्रथम कर्ता क्रिया कहें अन्य भाषा जानै।
प्रश्नद्वारा शब्द रचै तुल्य कारक जानै॥
क्रियापद स्थान देखि क्रियापदे प्रकाशै।
वर्ता कर्म क्रिया जोड़ि लघुवाक्य प्रकाशै॥

भगवान पिंगलाचार्य ही आपके इस छन्द का नामधाम बतावें तो बता सकते हैं, और आपके इस समग्र पाठ का अर्थ भी शायद कोई आचार्य ही अच्छी तरह बता सके।...

आपने पुस्तकादि में जो एक छोटी सी भूमिका लिखी है, उसका पहला ही वाक्य है 'मैंने यह पुस्तक बड़े परिश्रम से बनाई है और आज तक ऐसी पुस्तक भारतवर्ष में किसी से नहीं लिखी गई।' सचमुच ही न लिखी गई होगी। आपके इस कथन में ज़रा भी अत्युक्ति नहीं। भारतवर्ष ही में क्यों शायद और भी किसी देश में भी ऐसे पद्य में ऐसा व्याकरण न लिखा गया होगा।...

आचार्य जी ने अपने व्याकरण का आरम्भ इस प्रकार किया है—

श्री गुरु चरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
रचौं व्याकरण पद्य में जो दायक फल चारि॥

सो अब धार्मिक हिन्दुओं को चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए पूजापाठ, दानपुण्य छोड़कर केवल आपके व्याकरण का पारायण करना चाहिए। तुलसीदास पर जो आपने कृपा की है उसके लिए हम गोसाईं जी की तरफ से कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

'विचार-विमर्श', पृ० १८५-८६।

२. देखिए 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', पृ० ७२
३ 'समालोचना-समुच्चय', पृ० २८६।
४ देखिए 'कालिदास की निरंकुशता', पृ० ३।
५ , १९०३ ई० पृ० ३६

का साहित्य-वृत्त',[1] 'शूरवीर समालोचक'[2] आदि व्यंग्यचित्र हैं। 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना' और 'कालिदास की निरंकुशता'[3] पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। 'नायिकाभेद',[4] 'हिन्दी-नवरत्न',[5] आदि आलोचनात्मक निबन्ध हैं। 'हे कविते'[6] 'ग्रन्थकारलक्षण'[7] आदि कविताओं में भी आलोचना की प्रधानता है। 'भाषा-पद्य व्याकरण',[8] आदि की आलोचनाएं पुस्तक-परिचय के रूप में लिखी गई थीं। इन आलोचनाओं के लेखकरूप में उन्होंने अपना नाम न देकर कल्पित नामों का भी प्रयोग किया है। 'समाचारपत्रों का विराट् रूप'[9] के लेखक पंडित कमला किशोर त्रिपाठी और 'राम कहानी की समालोचना'[10] के श्री कंठ पाठक एम० ए० हैं। इन आलोचनाओं की अभिव्यंजनाशैली अपेक्षाकृत अधिक व्यंग्यात्मक, आक्षेपपूर्ण और कहीं कहीं हास्यमिश्रित है।[11] द्विवेदी-कृत खंडनात्मक, आलोचनाओं का कारण किसी प्रकार का ईर्ष्याद्वेष नहीं है। हिन्दी का सच्चा उपासक उसके मन्दिर में किसी भी प्रकार का व्यभिचार नहीं देख सका है। इसीलिए उसमें कटुता आ गई है किन्तु वह सार्थक न होकर यथास्थान है। सच तो यह है कि हिन्दी-साहित्य के ढीठ चोरों और कलंककारियों की अग्रगति को रोकने के लिए द्विवेदी जी-जैसे सैनिक समालोचक की ही आवश्यकता थी।

संस्कृत-साहित्य में आलोचना का उत्कृष्टतम रूप लोचनपद्धति में दिखाई देता है। यह पद्धति पूर्वोक्त पांचों पद्धतियों के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें आलोचक आलोच्य विषय के अर्थ को पूर्णतया हृदयंगम करके रचनाकार की अन्तर्दृष्टि की विशद समीक्षा करता है। यह टीका-पद्धति में अनेक बातों में भिन्न है। टीका-पद्धति का क्षेत्र व्यापक किन्तु दृष्टि सीमित है। उसकी पहुँच काव्य, साहित्य आदि

---

१. 'सरस्वती', १९०३ ई०, पृ० ४०६।
२. 'सरस्वती', १९०३ ई०, ,, २९५।
३ पहले लेखरूप में 'सरस्वती' १९१२ ई० पृ० ७,७५ और १०७ में प्रकाशित।
४ 'सरस्वती', १९०१ ई०, पृ० १९५।
५. ,, १९१० ई०, ,, ६९।
६. ,, १९०१ ,, १९८।
७. ,, ,, २५५।
८. ,, अगस्त १९१३ ई०।
९. ,, १९०४ ई० पृ० ३९७।
१०. ,, १९०९ ई०, ,, ४५०।
११ क हिन्दी भाग की पृ० ९
ख 'भाषा और ' 'सरस्वती' भाग ७ सं० २ पृ० ७७ और ८'

क समा विषय तक है परन्तु व रचनागत साधारण अ व्याकरण रस अलङ्कार आदि न आगे नहीं बढ़ सकी है। लोचन-पद्धति की दृष्टि रचनाकार की अन्तःसमीक्षा और तुलनात्मक आलोचना तक आगे तो बढ़ी किन्तु उसका विषय साहित्यशास्त्र तक ही सीमित रह गया। काव्यों पर इस प्रकार की आलोचनाएं नहीं हुई। सम्भवतः उन कवियों ने काव्यसर्जनी रचनाओं की विस्तृत समीक्षा को व्यर्थ समझा। संस्कृत में अभिनवगुप्त का 'ध्वन्यालोकलोचन' और 'अभिनवभारती' आदि इसी प्रकार की रचनाएं हैं। रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास आदि की समीक्षा-शैली इसी लोचन-पद्धति और पाश्चात्य समालोचना-प्रणाली का मिश्ररूप है। संस्कृत में लोचन-पद्धति पर की गई आलोचना सौन्दर्यमूलक रही है। भारतीय 'आलोचक ने आलोच्य रचना सुन्दर या असुन्दर क्यों है' इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये रचनाकार की जीवनी, विषय के इतिहास, तत्कालीन समाज आदि को दृष्टि में रखकर आलोचना नहीं की। ये विशेषताएं पश्चिमीय साहित्य ने ही हिन्दी को दी है।

'मेघदूत-रहस्य',[1] 'रघुवंश' और 'किरातार्जुनीय' की भूमिकाएं आदि लोचन-पद्धति पर द्विवेदी जी द्वारा की गई आलोचनाएं हैं इनमें उन्होंने रचना के विषय में मुख्यतः चार दृष्टियों से विचार किया है— सौन्दर्य, इतिहास, जीवनी और तुलना। सौन्दर्य-दृष्टि से उन्होंने केवल रचना के अन्तर्गत सौन्दर्य तथा उसके गुण-दोष का विवेचन किया है। इतिहास-दृष्टि से रचनाविषयक इतिहास और रचनाकाल की सामाजिक आदि परिस्थितियों की भूमिका में उसकी समीक्षा की है। जीवनी-दृष्टि से रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व, अनुभव आदि का प्रतिबिम्ब खोजते हुए उसकी आलोचना की है। तुलना-दृष्टि से उसी वर्ग की अन्य रचनाओं या रचनाकारों की तुलना में प्रस्तुत रचना या रचनाकार की उत्कृष्टता या निकृष्टता की जाँच की है। भारवि पर लिखी गई आलोचना इस पद्धति का विशिष्ट आदर्श है। उसमें उन्होंने भारवि की काव्य-कला पर उपर्युक्त सभी दृष्टियों से विचार किया है।[2] 'कालिदास के मेघदूत का रहस्य' में सौन्दर्य, 'अकबर के राजत्वकाल में

---

१. 'सरस्वती', अगस्त, १९१२ ई०।

२. उदाहरणार्थ—

क. तुलनात्मक—"शिशुपालवध के कर्ता माघ पंडित भारवि के बाद हुए हैं। जान पड़ता है, माघ ने किरातार्जुनीय को बड़े ध्यान से पढ़कर अपने काव्य की रचना की है। क्योंकि दोनों में कथावतरणसम्बन्धिनी अनेक समताएं हैं।..... "

'किरातार्जुनीय' की भूमिका, पृ० १३-१४।

ख. सौन्दर्यमूलक—"भारवि को लिखना था महाकाव्य। पर कथानक उन्होंने ऐसा चुना जिसके विस्तार के लिए यथेष्ट सुभीता न था।...आलंकारिकों की आज्ञा के पाश न फैंसने के कारण ही भारवि को कथा का अस्वाभाविक विस्तार करना पड़ा और ऐसी ऐसी विशेषताएं रखनी पड़ीं जिनसे काव्यानन्द की प्राप्ति में कमी आ जाती है।"

किरातार्जुनीय की भूमिका पृ० २७ और ३०

हिन्दी में इतिहास और गोपालशरण सिंह की कविता में जीवनी की ही दृष्टि प्रधान है लोचनपद्धति की ही नहीं अन्य पद्धतियों की आलोचनाओं में भी उन्होंने आलोच्य रचनाकार की अन्तर्दृष्टि का आवश्यकतानुसार विवेचन किया है। टीका या परिचय की पद्धति पर 'नैषधचरित' की अथवा खंडन-पद्धति पर 'हिन्दी कालिदास' या कालिदास की सौन्दर्यमूलक आलोचना करते हुए द्विवेदी जी ने रचनाकारों के भावों की तह तक जाने का प्रयास किया है।[3] हिन्दी-नवरत्न' में मिश्रबन्धुओं ने किसी सारगर्भित और तर्क-सम्मत विवेचन के बिना ही रत्नकोटि में कवियों की मनमानी आयोजना की थी। उनके आलोचन की समालोचना में द्विवेदी जी ने एक रत्न कवि की विशिष्टताओं, उसकी ऐतिहासिक और तुलनात्मक छानबीन को विशेष गौरव दिया।[4]

आलोचनापद्धतियों का पूर्वोक्त वर्गीकरण गणित का-सा नहीं है। एक पद्धति की विशिष्टताएं दूसरी पद्धति की आलोचनाओं में अनायास ही समाविष्ट हो गई हैं। उनके विशिष्ट व्यपदेश का एकमात्र कारण प्राधान्यही है। द्विवेदी जी की आलोचनाओं की उपर्युक्त समीक्षा प्राय. सौन्दर्य-दृष्टि से की गई है। केवल सौन्दर्य के आधार पर उनकी आलोचनाओं को चर्चा या परिचयमात्र कह कर टाल देना आधुनिक समालोचना की दृष्टि से बुद्धि-संगत नहीं है। उनकी आलोचनाओं का वास्तविक मूल्य ऐतिहासिक, तुलनात्मक और जीवनीमूलक दृष्टियों से आँका जा सकता है। उनकी आलोचना-पुस्तकों पर अलग से भी कुछ कह देने की आवश्यकता है।

ग. ऐतिहासिक—"भारवि के जमाने में इन बातों (अप्रासंगिक विस्तार और रचनाविषयक चातुर्य) की गणना शायद दोषों में न होती रही हो। सब प्रकार के वर्णन करना और कठिन से कठिन शब्द नित्र लिख डालना अब भी पुराने ढंग के कितने ही पंडितों की दृष्टि में दोष नहीं, प्रशंसा की बात है।"

'किरातार्जुनीय' की भूमिका, पृ० ३७।

घ. जीवनीमूलक—"उनके काव्य में दार्शनिक विचार बहुत कम, पर नैतिक विचार बहुत अधिक हैं। वे नीतिशास्त्र के बहुत बड़े पंडित थे। सम्भव है, वे किसी राजा के सभापंडित, धर्माध्यक्ष, न्यायाधीश या और कोई उच्चपदस्थ कर्मचारी रहे हों। ... जहां कहीं मौका मिला है वहां वे नीति की बात कहे बिना नहीं रहे।...राजनीतिज्ञ, नैयायिक और सुकवि होने ही के कारण भारवि ने अपनी वक्तृताओं में अपूर्व योग्यता प्रकट की है"

'किरातार्जुनीय' की भूमिका, पृ० ३३, ३४ और ३५।

१. 'समालोचना-समुच्चय में, संकलित।

२. 'विचार-विमर्श' में संकलित।

३. उदाहरणार्थ 'नैषधचरित चर्चा', पृ० १३ या 'कालिदास की निरंकुशता', पृ० २।

४ -समुच्चय पृ० २०८ २११ २३४ २३५ आदि।

जीवन के क्षेत्र में रूपरंग पंचानन की जो शक्ति है वही क्षेत्रम वह स्मृति चिन्तना तथा तुलना के रूप में प्रकट होती है। साहित्यिक जगत् में जब यह नीरक्षीरविवेक का रूप धारण करती है तब उसे हम आलोचना कहते हैं। आलोचना की सहज प्रवृत्ति युग, व्यक्ति, विषय, तत्कालीन बौद्धिक स्थिति, रूढ़ि, भावों के प्रकाशन की सुविधा, सम्प्रेषण के साधन आदि बातों के कारण विशिष्ट रूप धारण किया करती है। आलोचक की अभिरुचि उसकी मानसिक भूमिका, उसका सिद्धान्त-पक्ष, उसकी सहृदयता, उसकी सूक्ष्मदर्शिता आदि व्यक्तित्व के आवश्यक उपकरण उसकी आलोचना के आकार और प्रकार का निर्धारण करते हैं। युग की समस्याएं, समाज की आवश्यकताएं, साहित्य की कमियाँ, अच्छाइयाँ या बुराइयाँ किसी न किसी रूप में आलोचना का अंग बन ही जाती हैं। पश्चिम के विज्ञानवादी समाज ने आलोचना की व्याख्यात्मक प्रणाली को जन्म दिया। भारत के निःस्पृह, आत्मविस्मृत और सिद्धान्तवादी आलोचक ने जीवनीमूलक आलोचना की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया। आलोचना की निर्णयात्मक, प्रभावाभिव्यंजक, व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, तुलनात्मक आदि सभी प्रणालियों के पीछे युग, साहित्य आवश्यकताएं तथा व्यक्ति छिपे हुए हैं। द्विवेदी जी के युगनिर्मातृत्व को भूल कर हम उन की रचनाओं की यथार्थ परख नहीं कर सकते। युग को पहचान कर, एक उच्च आदर्श से प्रेरित हो कर, अनवरत साधना के बल पर, आजीवन तपस्या करके उस तपस्वी ने युग-निर्माण के रूप में भावी समाज को जो वस्तु दी है वह कुछ साधारण नहीं है। आज वे समस्याएं नहीं हैं। आज वह युग नहीं है। आज वे प्रश्न नहीं हैं। वर्तमान हिन्दी-साहित्य-भवन के सप्तम तल पर विराजमान समालोचक को यह भी विचारना होगा कि उसके निचले तलों के निर्माता को कितना घोर परिश्रम और बलिदान करना पड़ा था। द्विवेदी जी के प्रत्येक पक्ष को समझने के लिये सतर्कता, दृष्टि-व्यापकता और सहृदयता की आवश्यकता है।

द्विवेदी जी ने आलोचक का बाना युग-निर्माण के महान् कार्य के निर्वाह के लिए ही धारण किया था। उनकी आलोचनाओं का वास्तविक मूल्य उनके व्यक्तित्व में है। द्विवेदी जी ने आलोचनाशास्त्र पर कोई पोथा नहीं लिखा और न तो स्थूल और ठोस आलोचनात्मक ग्रन्थों ही की रचना की। युग ने उन्हें ऐसा न करने दिया। ऐसे ग्रन्थों के पढ़ने और समझने वाले ग्राहक ही नहीं थे। इसीलिए, उनकी आलोचनाओं ने सरल पुस्तिकाओं और निबन्धों का ही रूप स्वीकार किया। उस समय केवल उपदेष्टा समालोचक की नहीं, क्रियात्मक और सुधारक समालोचक की अपेक्षा थी। इसीलिये समालोचक द्विवेदी सम्पादक के आसन पर बैठे थे उनकी को उनके युग ने उत्पन्न किया उन्होंने अपने

युग को आत्मसात् किया था इसीलिए उनकी आलोचनाओं में उनके व्यक्तित्व के अतिरिक्त उनका युग भी बोल रहा है। वह युग प्राचीन और नवीन के संघर्ष का था। नवीन के प्रति उत्कट औत्सुक्य होते हुए भी उसके मन में प्राचीन के प्रति दुर्दमनीय निष्ठा थी। वह नूतन गवेषणाओं को कुतूहलपूर्वक सुनकर उनकी तुलना में अपने पूर्व पुरुषों के ज्ञान-विज्ञान की भी जाँच कर लेना चाहता था। यह संघर्ष राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी दिशाओं में व्याप्त था। द्विवेदी जी का आलोचक भी अपने युग का प्रतिनिधि है क्योंकि उसने अपनी आलोचनाओं में प्राच्य और पाश्चिमात्य दोनों ही पद्धतियों का समावेश किया है।

युग-निर्माता आलोचक द्विवेदी की प्रवृत्तियों के दो पक्ष हैं। एक ओर तो प्राचीन कवियों की आलोचना, उनकी विशेषता, प्राचीन और पाश्चात्य काव्यसिद्धान्तों का निरूपण आदि है। दूसरी ओर अस्तव्यस्तता, अनिश्चितता, दिशालक्ष्य-उद्देशशून्यता, अध्ययन, संकुचित दृष्टि, चिन्तन के अभाव, साहित्यसर्जन के लिए आपेक्षिक सच्चाई और नैतिकता की कमी, भाषा की निर्बलता, व्याकरण की अव्यवस्था, हिन्दीभाषियों की विदेशी प्रवृत्ति, मातृभाषा के प्रति निरादर, लोभ, सस्ती ख्याति, धन के लिए साहित्य-संसार में धाँधली आदि बातों को दूर कर हिन्दी-पाठकों के ज्ञानसवर्द्धन का प्रयास है। द्विवेदी जी के समक्ष हिन्दी में आलोचना की कोई परम्परागत आदर्श प्रणाली नहीं थी। भूमिका में वर्णित आलोचनाएं नाममात्र की आलोचनाएं थीं। द्विवेदी जी को अपना मार्ग निश्चित करने में बड़ी कठिनाई हुई। उन्होंने हिन्दी का हित करने के लिए संस्कृत, बँगला, मराठी, अँगरेजी आदि के साहित्यों का कठोर अध्ययन और चिन्तन किया। हिन्दी-साहित्य ने भारतीय आलोचक की दोषवाचकप्रणाली की अवहेलना कर दी थी। हिन्दी के प्रथम वास्तविक आलोचक द्विवेदी में उसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। साहित्य का सुन्दर भवन बनने के पहले वहाँ का झाड़-झंखाड़ काट डालना आवश्यक था। निर्माता द्विवेदी की प्रारंभिक आलोचनाओं को युग की आवश्यकताओं ने स्वयं ही संहारात्मक बना दिया।

१८९६ ई० के आरम्भ में 'काशीपत्रिका' में द्विवेदी जी की 'कुमारसम्भव भाषा' की समालोचना प्रकाशित हुई। उसका अन्तिम भाग 'हिन्दोस्थान' में छपा। 'ऋतुसंहार भाषा' की समालोचना १८९७ ई० के नवम्बर से १८९८ ई० के मई तक 'वेंकटेश्वर-समाचार' में छपी। १९०१ ई० में जब 'हिन्दी कालिदास' की समालोचना प्रकाशित हुई तब उसमें 'मेघदूत' और 'रघुवंश' की समालोचनाएं भी जोड़ दी गईं। हिन्दी-साहित्य में किसी एक ही रचनाकार पर लिखी गई यह पहली आलोचना-पुस्तक थी। लाला सीताराम के अनुवादों ने महाकवि कालिदास के काव्य सौन्दर्य पर पानी फेर दिया था। साहित्य पुजारी क

का यह भी कर्तव्य था कि वह सर्वसाधारण को अनुवाद की निकृष्टता और कालिदास की कविता की उत्कृष्टता के विषय में सावधान कर देता। इन आलोचनाओं से यह सिद्ध है कि आलोचक द्विवेदी ने संस्कृत-काव्यों का सम्यक् के साथ अध्ययन किया है और उनकी आलोचनाओं के सिद्धान्त-पक्ष का आधार संस्कृत साहित्य है। 'कुमार संभव,' 'ऋतुसंहार,' 'मेघदूत' और 'रघुवंश' की आलोचनाओं के आरम्भ में क्रमशः 'वासवदत्ता' ('सुबन्धु') 'श्रीकंठचरित' और 'शृंगारतिलक' (अंतिम दो में) के श्लोक द्विवेदी जी ने उद्धृत किए हैं। शास्त्राक्रमण,' 'उपमा का उपमर्द' 'अर्थ का अनर्थ' 'भाव का अभाव' दोषों की यह प्रणाली भी संस्कृत की है। आलोचक का पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व सर्वत्रही व्यक्त है।

जनता को पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिए द्विवेदी जी ने सच्ची और उचित आलोचना की। उस समय पत्र-पत्रिकाओं का नया युग था, पत्रों और पुस्तकों के नये पाठक तथा लेखक थे सभी की बुद्धि अपरिपक्व और सभी को पथप्रदर्शक की आवश्यकता थी। युग के मानसिक साहित्य की इस माँग को द्विवेदी जी ने स्वीकार किया। यही कारण है कि उनकी अधिकांश रचनाएँ पत्रिकाओं के लेखरूप में ही प्रकाशित हुई। वे सत्य की अभिव्यंजना करके उपेक्षा, निन्दा, अनादर, गाली आदि सभी कुछ सहने को प्रस्तुत थे। उनकी आलोचनाओं की प्रमुख विशेषता हिन्दी के प्रति पूजाभाव, आत्मीयता, आराधना और तप में है। कोरा आलोचक होने और अपनी साधना के बल पर युग का मानसचित्र परिवर्तित कर देने में कौड़ी-मुहर का-सा अन्तर है।

यह संयोग की बात थी कि द्विवेदी जी ने आलोचना का प्रारम्भ अनूदित ग्रन्थों से किया। भाषान्तर होने के कारण आलोचक द्विवेदी का सच्चा रूप उसमें निखर नहीं पाया। मूलग्रन्थों में वर्णित पात्र, स्थल, वस्तुवर्णन, शैली आदि को छोड़कर उन्हें यह देखना पड़ा कि मूल का पूरा पूरा अनुवाद हुआ है अथवा नहीं, कवि का भाव पूर्णतया तद्वत् आया है अथवा नहीं और भाषान्तर की भाषा दोषरहित तथा अनुवादक के अभीष्ट अर्थ की व्यंजक हुई है अथवा नहीं। उनका ध्यान भाषासंस्कार और व्याकरण की स्थिरता की ओर बरबस आकृष्ट हो गया। हिन्दी का कोई भी आलोचक एक साथ ही हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि साहित्यों का पंडित, सम्पादक, भाषासुधारक और युगनिर्माता नहीं हुआ। इसीलिए द्विवेदी जी अद्वितीय हैं। यही कारण है कि वे आज के समालोचक के द्वारा निर्धारित श्रेणी-विभाजन को स्वीकार करके अपनी आलो का विशिष्ट वर्गों में प्रतिष्ठित न कर सके यदि आधुनिक

समालोचक की कसौटी पर द्विवेदी जी की आलोचनाएं सोना नहीं जँचतीं तो इसमें द्विवेदी जी का कोई अपराध नहीं, वस्तुतः आलोचक की कसौटी ही गलत है। वह भ्रान्तिवश यह मान बैठा है कि आलोचनाएं प्रत्येक देशकाल में एक ही रूप और शैली ग्रहण करेंगी। वह इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि साहित्यिक समालोचना मौखिक या चित्रमय भी हो सकती है, टीका, भाष्य, सूक्ति, शास्त्रार्थ आदि का भी रूप धारण कर सकती है। वह अपने ही युग को अपरिवर्त्य और आप्त समझ कर दूसरे युग की भूमिका, आवश्यकताओं, व्यक्तियों और विशेषताओं को समझने में असमर्थ है।

द्विवेदी जी की आलोचनाओं में दो प्रकार के द्वन्द्व की परिणति है। एक तो बाह्य-जगत में नवीन और प्राचीन, पूर्व और पश्चिम का द्वन्द्व है और दूसरा अन्तर्जगत् में कटु सत्य तथा कोमल सहृदयता का द्वन्द्व है। इन्हीं संघर्षों के अनुरूप द्विवेदी जी की आलोचनाएं भी दो धाराओं में बंट गई हैं। एक धारा का उद्गम है सहृदयता और प्राचीनता के प्रति प्रेम जिसमें आलोचना का विषय संस्कृत-साहित्य है। दूसरी धारा नवीनता और सत्य के आकर्षण से निकली है जिसमें प्रायः सम्पादक और सुधारक द्विवेदी ने हिन्दी-साहित्य और उससे सम्बन्ध रखने वाली बातों पर आलोचनाएं की हैं। पूर्व और पश्चिम के समन्वित सिद्धान्तनिरूपण की तीसरी धारा भी कहीं कहीं दृष्टिगोचर हो जाती है। यद्यपि द्विवेदी जी की आलोचनाएं हिन्दी-पुस्तकों, 'हिन्दी कालिदास' और 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग' को लेकर प्रारम्भ हुईं तथापि उनकी भूमिकारूप में द्विवेदी जी के मस्तिष्क में संस्कृत-साहित्य का अध्ययन उपस्थित था। यह बात ऊपर कही जा चुकी है।

'कालिदास की निरंकुशता' कालिदास की समीक्षा का एक एकांगी चित्र है। उसकी रचना का उद्देश केवल मनोरंजन था। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल का निम्नांकित कथन विचारणीय है—

"द्विवेदी जी की तीसरी पुस्तक 'कालिदास की निरंकुशता' में भाषा और व्याकरण के वे व्यतिक्रम इकट्ठे किए गए हैं जिन्हें संस्कृत के विद्वान् लोग कालिदास की कविता में बताया करते हैं। यह पुस्तक हिन्दी वालों के या संस्कृत वालों के फायदे के लिए लिखी गई यह ठीक ठीक नहीं समझ पड़ता।"

पुस्तक के आरम्भ में ही अनेक बार चेतावनी दे दी थी 'जिनके विचार हमारे ही ऐसे हैं उन्हीं का मनोरंजन हम इस लेख से करना चाहते हैं इस आप केवल वाग्विलास समझिए। यह केवल आपका मनोरंजन करने के लिए है।'[१] प्रस्तुत पुस्तक के भाव संस्कृत-टीकाकारों के हैं पर उनकी उपस्थापनशैली द्विवेदी जी की है। कालिदास में द्विवेदी जी की अतिशय श्रद्धा होने पर भी इतना बवंडर उठा क्योंकि दोषदर्शन की प्रणाली हिन्दी-संसार के लिए एक अपरिचित वस्तु थी।[२]

संस्कृत-साहित्य का अध्ययन तथा परिचय कराने की भावना और मासिकपत्र के लिए सामयिक निबन्ध लिखने की आवश्यकता ने द्विवेदी जी को 'नैषधचरितचर्चा' और 'विक्रमाकदेवचरितचर्चा' लिखने के लिए प्रेरित किया। इन आलोचनाओं में द्विवेदी जी ने संस्कृत-साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने और पश्चिमीय विद्वानों के अनुसन्धान द्वारा प्राप्त संस्कृतसम्बन्धी बातों से हिन्दी-संसार को परिचित कराने का प्रयास किया है। इन आलोचनाओं में द्विवेदी जी की दो प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। पहली यह कि उनका सिद्धान्तपक्ष संस्कृत-साहित्य पर ही नहीं आश्रित है अपितु उन्होंने पश्चिम के सिद्धान्तों पर भी विचार और स्वतन्त्र चिन्तन किया है। अतएव उनका आलोचना का प्रतिमान अपेक्षाकृत व्यापक, उदार और नवीन है। उनकी दूसरी प्रवृत्ति है कवि की कविता को सुन्दरतर बनाने की चेष्टा न करते हुए उसके उदाहरण पाठक के सामने रखकरके चुप हो जाना। सम्भवतः 'कविता के अच्छे नमूने' शीर्षक को देखकर ही शुक्ल जी ने आक्षेप किया है कि पंडितमंडली में प्रचलित रूढि के अनुसार चुने हुए श्लोकों की खूबी पर साधुवाद है। खरा सत्य तो यह है कि पद्य को गद्य में परिणत करके, काव्य को बुद्धिप्रधान आकार देकर, सौन्दर्य को तार्किकता और वाग्जाल का बाना पहना देने में ही आलोचना का चरम उत्कर्ष नहीं है। सीधी सादी उद्धरणप्रणाली या सामान्य अर्थव्यंजक टीकापद्धति की भी हमारे जीवन में आवश्यकता है और इसीलिए साहित्य में उनका भी महत्व है।

'आलोचनाञ्जलि' स्वरूप और उद्देश में उपर्युक्त चर्चाओं से भिन्न है। यह सन १९०१ और १९१७ ई० के बीच लिखे गए निबन्धों का एक संग्रह है। प्रत्येक निबन्ध की अपनी विशेषता है। वे भिन्न भिन्न आवश्कताओं को ले कर लिखे गए हैं। उनकी बहुत कुछ समीक्षा विभिन्न पद्धतियों के सन्दर्भों में हो चुकी है। आगे चल कर जब द्विवेदी जी

---

१ 'कालिदास की निरंकुशता' पृ० २

२ इसकी चर्चा साहित्यिक में हो चुकी है

ा रघुवंश और 'किरातार्जुनीय' का अनुवाद किया तब कालिदास और भारवि पर आलोचनात्मक भूमिकाएँ भी लिखीं। इस प्रकार की भूमिका लिखने की प्रेरणा पश्चिमीय साहित्य के अध्ययन का फल जान पड़ती है। कालिदास पर हिन्दी में कोई पुस्तक नहीं लिखी गई थी अतएव उन्होंने 'कालिदास और उनकी कविता' प्रकाशित की।[1] यह सन् १९०५ से लेकर १९१८ ई० तक लिखे गए निबन्धों का संग्रह है। अधिकांश लेख १९११-१२ ई० के हैं।

'कालिदास और उनकी कविता' का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के लिए उस युग को ध्यान में रख लेना होगा। उस समय पाठकों की दो कोटियाँ थीं। एक में तो साधारण जनता कालिदास से नितान्त अनभिज्ञ थी और दूसरी में वे पंडित थे जो 'कौमुदी के कीड़े' और 'महाभाष्य के मतंगज' थे। वे कालिदास का एक भी शब्दस्खलन नहीं सह सकते थे और उसे सही सिद्ध करने के लिए पाणिनि, पतंजलि, कात्यायन की भी उक्तियों पर हरताल लगाने की चेष्टा करते थे।[2] समालोचकों और समालोचनाओं की दशा भी शोचनीय थी। यदि किसी सम्पादक ने किसी आलोचक की आलोचना अप्रकाशनीय समझ कर न छापी तो उसकी समालोचना होने लगी। यदि किसी पत्र ने किसी अन्य पत्र के साथ विनिमय नहीं किया तो सम्पादक पर ही वाग्बाणों की वर्षा होने लगी। फिर उस समालोचना में उसके घरद्वार, गाड़ी-घोड़े, नौकरचाकर, वस्त्राच्छादन तक की खबर ली जाने लगी।[3] पाश्चात्य विद्वानों द्वारा की गई भारतीय पुरातत्वसंबन्धी खोज ने हिन्दी-जनता को भी आकृष्ट किया। ऐतिहासिक अनुसंधान के नवीन उपनयन को पाकर दुष्टपुँजिए समालोचकों ने कालिदासादि का कालनिर्णय करके यश लूट लेने का उपक्रम किया। इस क्षेत्र में भी पदार्पण करके अज्ञान का निर्गम और ज्ञान का प्रचार करना द्विवेदी जी ने अपना कर्तव्य समझा। 'कालिदास और उनकी कविता' के आरंभिक बहत्तर पृष्ठ उनकी गवेषणात्मक और ठोस आलोचना के साक्षी हैं। इसमें उन्होंने अनेक प्राच्य और पाश्चिमात्य विद्वानों के मतों का उल्लेख, उनकी परीक्षा और अंत में अपने मत की युक्तियुक्त स्थापना की है। 'नैषधचरितचर्चा' और 'विक्रमाङ्कदेवचरित चर्चा' में द्विवेदी जी संस्कृत-साहित्य के ऐतिहासिक पक्ष के अन्वेषी होकर प्रकट हुए थे। प्रस्तुत पुस्तक में उनका वह रूप अपने चरम विकास को प्राप्त हुआ है। आद्योपान्त ही सूक्ष्म अध्ययन और गंभीर चिन्तन की छाप है। 'कालिदास की दिखाई हुई प्राचीन भारत की एक झलक' में आलोचक द्विवेदी ने अतीत और वर्तमान की विशेषताओं को लेकर कालिदास का

---

१. 'कालिदास और उनकी कविता', निवेदन।

२ , पृ १२१

३ ११२

कविता में तत्कालीन समाज की विशेषताओं को निरखा है। 'कालिदास की वैवाहिकी कविता' 'कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल' और 'कालिदास के मेघदूत का रहस्य' में द्विवेदी जी के सहृदय कविहृदय का प्रतिबिम्ब है। यह तीसरा निबन्ध तो द्विवेदी जी के हृदय का भी रहस्य है। इसमें प्रेमी-हृदय के विश्लेषण और व्याख्या के रूप में द्विवेदी जी ने अपने ही प्रेमी हृदय की अभिव्यक्ति की है। प्रेम के संसार से गहरा परिचय होने के कारण ही उनकी लेखनी से अनायास ही प्रेम की सुन्दर व्याख्याएँ निकल पड़ी हैं।[1] प्रेम की कठिनाइयों और कठोरताओं का भोगी होने के कारण ही उनका हृदय यक्ष के हृदय के समान अनुभूति कर सका है। प्रेम की अवश्यनीयता और प्रेमयोग को लेकर साहित्य में बहुत कुछ लिखा जा चुका है किन्तु सात्विकता, निर्मलता, अमायिकता और भोलेपन से ओतप्रोत द्विवेदी जी के प्रेमी हृदय का यह स्वर निराला है।[2]

संस्कृत-साहित्य पर द्विवेदी जी के द्वारा की गई आलोचनाओं के मूल में तीन प्रधान कारण थे—पुरातत्त्वसम्बन्धी अनुसन्धान में निरत वह युग, रह रह कर अतीत की ओर देखने वाला द्विवेदी जी का व्यक्तित्व और अहिन्दी-काव्यों की आलोचना द्वारा हिन्दीलेखकों की दृष्टि व्यापक बनाने की बलवती आकांक्षा। संस्कृत को लेकर आलोचना की जो शृंखला द्विवेदी जी ने चलाई वह उन्हीं के साथ लुप्त हो गई। उनके विश्राम ग्रहण करने पर हिन्दी-आलोचकों के लोचनों में अनेक वादों का मद छा गया। इसकी समीक्षा 'युग और व्यक्तित्व' अध्याय में यथास्थान की जायगी। द्विवेदी जी की आलोचनाओं की धारा संस्कृत और हिन्दी के कूलयुग्म में बही है। संस्कृत-विषयों की आलोचना करते समय हिन्दी को और हिन्दी-विषयों की आलोचना करते समय संस्कृत को वे नहीं भूले हैं। 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' हिन्दी-पुस्तक की आलोचना होते हुए भी संस्कृत से प्रभावित है। यह ऊपर सिद्ध किया जा चुका है। 'नैषधचरित', 'विक्रमाकदेवचरित', कालिदास आदि की आलोचनाएँ संस्कृत की होने पर भी हिन्दी के लिए लिखी गई हैं।

'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना' का आरम्भ भर्तृहरि की 'अहो! कष्टं मापि प्रतिदिनमधोधः प्रविशति' पंक्ति से होता है। इस उक्ति में छिपी कष्टभावना उनकी सभी खंडनप्रधान आलोचनाओं के मूल में है। 'भाषादोष', 'कवितादोष', 'मनुस्मृतिप्रकरण-दोष', 'सम्प्रदायदोष', 'व्याकरणदोष', 'स्फुटदोष'—दोषदर्शन में ही पुस्तक की समाप्ति हुई है। द्विवेदी जी को इस बात का दुख है। हिन्दी पाठकों और लेखकों के कल्याण के लिए ही

---

१. 'कालिदास और उनकी कविता', पृ १३०, १३१, १३६, १३७, १३८।

२ , उपर्युक्त पृष्ठों के अतिरिक्त १२५, १२७ १२८, १२६, १३३ १३६ १३२ १३३ १३४

विवश होकर सहारात्मक आलोचना करनी पड़ी है व कहते हैं—"हम यह जानते हैं कि किसी कृति में दोष दिखलाना बुरा है परन्तु जिसमें सबल धारण को हानि पहुंचती हो, ऐसे दोष को प्रकाश करके उनको दूर करने की चेष्टा करना बुरा नहीं है। इस प्रकार का दोषा-विष्करण यदि लाभदायक न होता तो हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट पुस्तकों और राजकीय कार्यों की समालोचना की अपराधों की तालिका में गणना करके उसके लिए भी पेनलकोड में दंड निर्धारित करती। फिर जिस लेखक के दोष दिखलाए जाते हैं, वह यदि शान्तचित्त होकर विचार करे तो समालोचना से उसका भी लाभ ही होता है, हानि नहीं होती। ऐसे अनेक लोग हैं जो अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी योग्यता का पूरा पूरा विचार किए बिना ही पुस्तकें लिखकर ग्रन्थकार बनने का गर्व हाँकते हैं। अपने दोष अपने ही नेत्रों से उनको नहीं देख पड़ते। उन्हीं को क्या मनुष्यमात्र को अपने दोष प्रायः नहीं दिखाई देते। अतएव उनके दोष उनको दिखलाने के लिए दूसरे ही की अपेक्षा होती है।"[1]

द्विवेदी जी का महान् आलोचक ठोस आलोचनात्मक ग्रन्थों का प्रणयन न कर सका। वह भाषासुधार, रुचिपरिष्कार और लेखकनिर्माण तक ही सीमित रह गया। उसने जान-बूझकर इन संकुचित सीमाओं को स्वीकार किया—युग की मांगों को पूरा करने के लिए। 'सरस्वती' उनकी इन आलोचनाओं का वाहन बनी। उसमें प्रकाशित सभी आलोचनात्मक लेखों की समीक्षा करना यहां कठिन है। 'समालोचना-समुच्चय', 'विचारविमर्श' और 'रसज्ञरंजन' में संकलित लेखों की संक्षिप्त आलोचना अवश्य अपेक्षित है। पहली पुस्तक को हम आधुनिक अर्थ में समालोचना का समुच्चय नहीं कह सकते। सामयिक पुस्तकों की परीक्षारूप में लिखे गए ये निबन्ध हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति नहीं हैं। परन्तु यह भी स्मरण रखने की बात है कि स्थायित्व और अमर यश ही आलोचना का एकान्त उद्देश नहीं है, साहित्यसर्जन भी कोई वस्तु है। इन आलोचनाओं का महत्व लेखकों और कवियों के उचित पथप्रदर्शन में है। द्विवेदी जी की पुस्तक-समालोचना की पद्धति इस पुस्तक के अन्तिम निबन्ध 'हिन्दी-नवरत्न' में अपने सुन्दरतमरूप में प्रकट हुई है। इसका अनुमान उसकी विषयसूची से ही हो जाता है।[2] मूलग्रन्थ में प्रायः ६४ उद्धरण देकर उसकी दोष-प्रधान विस्तृत और अकाट्य समालोचना की गई है। आलोचक ने दोषों के परिष्कार

---

१. 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना', पृ० २।

२. उसकी विषय सूची इस प्रकार है—

पुस्तकसम्बन्धिनी साधारण बातें, लेखकों का विचार स्वातन्त्र्य, पुस्तक की उपादेयता, काल्पनिक चित्र कवियों का श्रेणीविभाग, तुलसीदास मतिराम देव बिहारीलाल, हरिश्चन्द्र भाषादोष शब्ददोष फुटकर दोष

और साहित्य के सुधार के लिए अदम्यता के साथ परन्याम किया है उसकी
म आद्योपान्त ही तर्क, चिन्तन, और संयम से काम लिया गया है। इतिहासलेखक को जब जब बीसवीं शती ई० के प्रथम चरण के हिन्दी-साहित्य को देखने और समझने की आवश्यकता होगी तब तब द्विवेदी जी का यह 'समालोचनासमुच्चय' स्थायी साहित्य की निधि न होने पर भी अनुपेक्षणीय होगा।

'विचारविमर्श' में 'आधुनिक कविता', 'पुरानी समालोचना का एक नमूना', 'हिन्दी के समाचारपत्र', 'बोलचाल की हिन्दी में कविता', 'सम्पादकों, समालोचकों और लेखकों का कर्तव्य', 'ठाकुर गोपाल शरण सिंह की कविता', 'भारतभारती का प्रकाशन' आदि कुछ ही निबन्ध आलोचनात्मक हैं। ये भी सामयिकता और पुस्तक-परिचय की सीमाओं में बंधे हुए हैं। आलोचना और मनोरंजकता के सुन्दर समन्वय के कारण 'रसज्ञरंजन' की विशेषता ही निराली है उसके रसज्ञ पाठकों की दो कोटियाँ-सी कर दी गई हैं। पहली कोटि में रसज्ञ कवि हैं जिनको लक्ष्य करके प्रथम पाँच लेख लिखे गए हैं और दूसरी कोटि में रसज्ञ कवि-प्रमा हैं जिनके मनोरंजनार्थ अन्तिम चार निबन्धों की रचना हुई है। संस्कृत से अनुप्राणित युगनिर्माता द्विवेदी का स्वर सर्वव्यापक है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' को जन्म देने का मुख्य श्रेय इसी संग्रह के 'कवियों की उर्मिलाविषयक उदासीनता'[1] निबन्ध को ही है।

आलोचक द्विवेदी का सच्चा स्वरूप उनकी कृतियों के कतिपय संग्रहों में नहीं है, वह उस युग के साहित्य के साथ एक हो गया है। उन्होंने आलोचना को तप के रूप में स्वीकार किया। उनकी संहारात्मक समीक्षाओं ने लेखकों को सावधान करके, भाषा को सुव्यवस्थित करके हिन्दी-साहित्य की दृढ़ता और इयत्ता को उन्नत करने की भूमिका प्रस्तुत की, साहित्यिक जगत् में जागृति उत्पन्न की जिसके फलस्वरूप आगे चलकर मननीय ठोस ग्रन्थों की रचना हो सकी। उनकी सर्जनात्मक सकर्मक आलोचनाओं ने मैथिलीशरण गुप्त, रामचन्द्र शुक्ल आदि साहित्यकारों का निर्माण किया जिनके यशःसौरभ से हिन्दी-संसार सुवासित है। उन्होंने हिन्दी-साहित्य में आधुनिक आलोचना की पद्धति चलाई। आलोचक द्विवेदी युग का निर्माण करने के लिए सम्पादक बने, भाषासुधारक बने, गुरु और आचार्य बने। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वे अपने समसामयिक आलोचकों--पद्म सिंह शर्मा, मिश्रबन्धु आदि--से अत्यधिक महान् हैं। सच तो यह है कि द्विवेदीजी जैसा-युगनिर्माता आलोचक हिन्दी-साहित्य में कोई नहीं हुआ।

---

१ यह निबन्ध रवीन्द्र नाथ ठाकुर के 'काव्य में उपेक्षिता' नामक निबन्ध पर आधारित है

छठा अध्याय

निबन्ध

संस्कृत-साहित्य में 'निबन्ध' शब्द प्रायः किसी भी रचना के लिए प्रयुक्त हुआ है, तथापि उसमें भी निबन्धों की एक परम्परा थी जो भाष्य और टीका से आरम्भ होकर साहित्यिक धार्मिक, दार्शनिक आदि विषयों के विवेचन में परिणत हुई। उदाहरणार्थ पंडितराज जगन्नाथ का 'चित्रमीमांसा-खंडन' एक आलोचनात्मक निबन्ध ही है। आधुनिक हिन्दी-निबन्ध के रूप या शैली पर संस्कृत के निबन्ध का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा है। वर्तमान 'निबन्ध' शब्द अङ्गरेजी के 'एसे' का समानार्थी है। हिन्दी में गद्यभाषा तथा सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के साथ ही निबन्धलेखन का आरम्भ हुआ। राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक आदि विषयों पर जनता की ज्ञानवृद्धि की तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति के लिए पश्चिमीय पत्रों के अनुकरण पर निबन्ध लिखे गए। लेखकों के साहित्यिक व्यक्तित्व की दुर्बलता, भाषा की अस्थिरता, पत्रपत्रिकाओं की आर्थिक दुर्दशा, अपेक्षित पाठकवर्ग की कमी आदि कारणों से द्विवेदी जी के पहले हिन्दी में निबन्धों की उचित प्रतिष्ठा न हो पाई और न उनके रूप और कला की ही कोई इयत्ता और ईदृक्ता ही निश्चित हो सकी। सम्पादक तथा पत्रकार के रूप में द्विवेदी जी ने संक्षिप्त, मनोरंजक, सरल तथा ज्ञानवर्द्धक निबन्धों की जो शक्तिशाली परम्परा चलाई उसने निबन्ध को हिन्दी-साहित्य का एक प्रमुख अंग बना दिया। द्विवेदी जी की भाषा और शैली अपने विभिन्न रूपों में विकसित होकर उस युग तथा भावी युग के निबन्धों की व्यापक भाषाशैली बन गई। हिन्दी-साहित्य के द्विवेदीयुगीन तथा परवर्ती निबन्धों की कलात्मकता और साहित्यिकता का निर्माण इसी भूमिका में हुआ।

लक्षण तथा परिभाषा बाद की वस्तुएं हैं। हिन्दी-निबन्धों के स्वरूप और विकास को समझने के लिए वर्तमान युग की पश्चिमीय परिभाषाएँ उधार लेने से काम नहीं चल सकता। हिन्दी में निबन्ध का न तो उतना विस्तृत इतिहास ही है और न उसका आरम्भ बेकन से ही हुआ है। निबन्ध की यह पश्चिमीय कसौटी कि वह व्यक्तित्व की मनोरंजक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति है हिन्दी के लिए आप्त नहीं होसकती। यहाँ तो सीमित गद्यरचना में व्यक्ति की कोई सुसम्बद्ध विचार-परम्परा को ही निबन्ध मानना अधिक समीचीन जनता

है। वार्ता का संग्रहण और अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान का संवर्द्धन ही इसके प्रमुख उद्देश रहे हैं। लेखक को जीवन अथवा जगत् की कुछ बातें सीधी सादी भाषा में कहनी थीं, उपलब्ध साधनों के द्वारा उन्हें जनता तक पहुँचाना था। इन बातों को ध्यान में रखकर जो वस्तु रची गई वह निबन्ध हो गई। अपनी बहुविधता, व्यापकता और सामयिकता के कारण ही निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में व्यंजना का सामान्य माध्यम बन गया। उसमें स्वतन्त्रता का अधिक अवकाश होने के कारण ही भारतेन्दु-और-द्विवेदी-युग के साहित्यकारों ने निबन्ध-लेखन की ओर अधिक ध्यान दिया। अधिकांश निबन्ध सामयिक विषयों पर निबद्ध होने तथा सामयिक पुस्तकों में प्रकाशित किए जाने के कारण सामयिकता से ऊपर न उठ सके। भारतेन्दु-और- द्विवेदी-युग के निबन्ध की विशेष महत्वपूर्ण देन है निबन्ध की निश्चित रीतिशैली। द्विवेदी जी के निबन्धों को प्रधानतः इसी ऐतिहासिक दृष्टि से परखना होगा। निबन्ध का वर्तमान मानदंड उनके निबन्धों की ईहत्ता और इयत्ता को नापने के लिए बहुत छोटा गज है। उनके निबन्धों की गुरुता का उचित भावन करने के लिए उनके व्यक्तित्व, उद्देश, युग, उस युग की आवश्यकताओं, उनकी पूर्ति के साधक उपायों तथा बाधक तत्वों आदि को ठीक ठीक समझने वाली व्यापक बुद्धि और सहृदय हृदय की अनिवार्य अपेक्षा है।

द्विवेदी जी के प्रारम्भिक प्रयासों में आलोचना और निबन्ध का समन्वय हुआ है। उद्देश की दृष्टि से ये कृतियां आलोचना होते हुए भी आकार की दृष्टि से निबन्ध की ही कोटि में हैं। 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' आदि निबन्ध सामयिक पत्रों में प्रकाशित हो जाने के पश्चात् संग्रहपुस्तक के रूप में जनता के समक्ष आए। 'नैषधचरितचर्चा और 'सुदर्शन'[१], 'वामन शिवराम आपटे'[२], 'नायिका भेद'[३], 'कविकर्तव्य'[४], 'महिषशतक की समीक्षा'[५] आदि निबन्ध निबन्धकार द्विवेदी के प्रारम्भिक काल के ही हैं। इन निबन्धों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि निबन्धकार द्विवेदी के निर्माण का प्रधान श्रेय आलोचक द्विवेदी को ही है।

'सरस्वती'-सम्पादक द्विवेदी को सम्पादकीय टिप्पणियाँ तो लिखनी पड़ी ही साथ ही साथ लेखकों के अभाव की पूर्ति भी अपने निबन्धों द्वारा करनी पड़ी। इसका विस्तृत विवेचन 'सरस्वती'–सम्पादन अध्याय में किया जायगा। उपयुक्त लेखकों की कमी के कारण पत्रिकाओं

---

१. 'सरस्वती' १९०३ ई०, पृ० ३२१।
२ ,, १९०१ पृ० ७।
३ १२५
४ ३२२

न कर दी जा सकता। द्विवेदी जी ने अपने अध्यवसाय तथा मनोयोग से सरस्वती को सभी प्रकार के निबन्धों से सम्पन्न किया। निबन्धों के विषयों में अकस्मात् ही कितनी व्यापकता आगई, इसका बहुत कुछ अनुमान 'सरस्वती' की विषय-सूची से ही लग सकता है। द्विवेदी जी ने आख्यायिका, आध्यात्मिक विषय, वैज्ञानिक विषय, स्तथनगर-जात्यादिवर्णन साहित्यिक विषय शिक्षा-विषय, औद्योगिक विषय आदि खंडों के अन्तर्गत अनेक प्रकार के निबन्धों की रचना की।

निबन्धकार द्विवेदी ने केवल आत्माभिव्यंजक और कलात्मक निबन्धों की सृष्टि न करके इतने प्रकार के विषयों पर लेखनी क्यों चलाई—इसका उत्तर निबन्धकार के व्यक्तित्व, युग की आवश्यकताओं, पाठक-वर्ग की रुचि की व्याख्या और इनके पारस्परिक सम्बन्ध के निर्देश द्वारा दिया जा सकता है। द्विवेदी जी के आलोचक, सुधारक, शिक्षक आदि ने ही इन निबन्धों के विषयों का बहुत कुछ निर्धारण किया है। इस व्यक्तित्व में अधिक महत्वपूर्ण उनका उद्देश ही है। अधिकांश निबन्धों की रचना पत्रकार द्विवेदी ने ही की है और उनका प्रधान उद्देश रहा है मनोरंजनपूर्वक 'सरस्वती'-पाठकों का ज्ञानवर्द्धन तथा रुचिपरिष्कार। कलात्मक अभिव्यक्ति कहीं भी उनकी निबन्धरचना का साध्य नहीं हो सकी है। अज्ञातरूप में अनायास ही जो आत्माभिव्यंजना द्विवेदी जी के निबन्धों में परिलक्षित होती है वह उनकी निबन्धकर्त्री की द्योतक है। उनकी अधिकांश समीक्षाओं, खंडनमंडन, वाद-विवाद आदि में इस निबन्धता का कलात्मक विकास नहीं हो पाया अन्यथा द्विवेदी जी के निबन्ध भी स्थायी साहित्य की अमूल्य निधि होते। सामयिकता की रक्षा, जनता के प्रश्नों का समाधान और समाज को गतिविधि देने के लिए मार्गप्रदर्शन—इनसे प्रेरित होकर द्विवेदी जी ने विभिन्न विषयों पर रचनाएँ की। सम्पादक-द्विवेदी ने पुस्तकपरीक्षा विविध-वार्ता आदि संक्षिप्त निबन्ध-सरीखी रचनाएँ भी की। साहित्यिक निबन्ध के अर्थ में इन रचनाओं को निबन्ध नहीं कहा जा सकता।

मौलिकता की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों का मूल द्विविध है—सामयिक पत्रपत्रिकाएँ तथा पुस्तकें और स्वतन्त्र उद्भावनाएं। 'सरस्वती' को भारतीय तथा विदेशी पत्र-जगत् के समकक्ष रखने तथा हिन्दी-पाठकों के बौद्धिक विकास के लिए द्विवेदी जी ने अधिकाधिक संख्या में दूसरों का आशय लेकर अपनी शैली में निबन्धों की रचना की। उन पर द्विवेदी जी की छाप इतनी गहरी है कि वे अनुवाद प्रतीत ही नहीं होते। 'कवि और कविता', 'कविता', कवियों की 'उर्मिला विषयक उदासीनता'[1] आदि निबन्ध इसी श्रेणी के

[1] ये निबन्ध रसज्ञरंजन में संकलित हैं

हैं दूसरी श्रेणी में वे निबन्ध हैं जिनके विषय तथा लेखन की प्रेरणा द्विवेदी जी को स्वत प्राप्त हुई। यथा 'भवभूति'[१], 'प्रतिभा'[२], 'कालिदास के मेघदूत का रहस्य'[३], 'साहित्य की महत्ता'[४] आदि। प्राय: इस प्रकार के निबन्धों की रचना प्रमुख व्यक्तियों के जीवन चरित, स्थानादिवर्णन, सभ्यता एवं साहित्य, आलोचना आदिको लेकर हुई। इस श्रेणी के निबन्धों में निबन्धकार द्विवेदी अपने शुद्धतम और उच्चतम रूप में प्रकट हुए हैं। आशयप्रधान अमौलिक निबन्धों की अपेक्षा इन निबन्धों में उनके व्यक्तित्व की भी सुन्दरतर अभिव्यक्ति हुई है। सामयिकता एवं पत्रकारिता की दृष्टि से निबन्ध की इन दोनों ही श्रेणियों का महत्व समान है।

द्विवेदी जी के निबन्धों के व्यापक अध्ययन के लिए उनके प्रकारनिर्धारण की अपेक्षा है। शरीर की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्ध चार रूपों में प्रस्तुत हुए। पहला रूप पत्रिकाओं के लिए लिखित लेखों का है जिनके अनेक उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। दूसरे रूप में भूमिकाएँ हैं जो ग्रन्थों, ग्रन्थकारों या ग्रन्थ के विषय के परिचयरूप में लिखी गई हैं। 'रघुवंश', 'किरातार्जुनीय', 'स्वाधीनता' आदि की भूमिकाएँ निबन्ध की इसी कोटि में हैं। तीसरा रूप पुस्तकाकार प्रकाशित निबन्धों का है उदाहरणार्थ 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति', 'नाट्यशास्त्र' आदि। चौथे रूप में वे भाषण हैं जो द्विवेदी जी ने अभिनन्दन, मेले, और तेरहवें साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर दिए थे। विषय की व्यापकता एवं अनेकरूपता के कारण इन निबन्धों को किसी एक विशिष्ट कोटिमें रखकर, किसी एकही विशिष्ट लक्षण से आँकना असम्भव है। उनके प्रकारनिर्धारण में विषय, शैली एवं उद्देश का समान हाथ रहा है। विषय की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों के आठ वर्ग किए जा सकते हैं—साहित्य, जीवनचरित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, उद्योगशिल्प, भाषा और अध्यात्म। साहित्यिक निबन्धों के भी अनेक प्रकार हैं—कविलेखक-परिचय, ग्रन्थपरिचय, समालोचना, शास्त्रीय विवेचन, सामयिक साहित्यावलोकन आदि। 'कविवर लछीराम',[५] 'पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र',[६] 'पंडित सत्यनारायण मिश्र',[७] 'मुग्धानलाचार्य',[८] 'बाबू अरविन्द घोष',[९] 'कविवर

१. 'सरस्वती,' जनवरी, १९०२ ई०।
२. ,, १९०२, ई०, पृ०, २६२।
३. 'कालिदास और उनकी कविता' में संकलित।
४. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन में स्वागताध्यक्षपद से दिए गए लिखित भाषण का एक अंश जो निबन्धरूप में स्वीकृत हो चुका है।
५. 'सरस्वती,' १९०२ ई०, पृ० १२४।
६. ,, ,, ४३४।
७. ,, १९०६ ८८।
८. ,, १९०७ २६७।
९ १९२० ३२

रवीन्द्र नाथ ठाकुर[1] आदि निबन्ध कविलेखक परिचायक हैं सरस्वती के ग्रन्थ परिचय-खंड में प्रकाशित अनेक पुस्तक-समीक्षाएँ ग्रन्थ-परिचायक निबन्धों की कोटि में आएंगी। 'महिष-शतक की समीक्षा',[2] 'उर्दू शतक',[3] 'हिन्दी नवरत्न'[4] आदि निबन्ध आलोचना की कोटि के हैं। 'नायिका भेद',[5] 'कवि और कविता'[6] 'कवि बननेके लिए सापेक्ष साधन',[7] 'हिन्दू-नाटक'[8] 'नाट्यशास्त्र',[9] आदि का विषय साहित्यशास्त्र है।

विषय की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों का दूसरा वर्ग जीवनचरित है। प्राचीन एवं आधुनिक महापुरुषों से साधारण पाठकों को परिचित कराने और उनके चरित्र से उन्हें लाभान्वित करने के लिए इस प्रकार की सुन्दर जीवनियां लिखी गईं। ये जीवनचरित चार प्रकार के व्यक्तियों को लेकर लिखे गए हैं-विद्वान्, राजारईस, राजनीतिज्ञ और धर्मसमाजसुधारक। 'सुकविसंकीर्तन' तथा 'प्राचीन पंडित और कवि' विद्वानों पर लिखे गए निबन्धों के ही संग्रह हैं। 'हर्बर्ट स्पेंसर',[10] 'गायनाचार्य पंडित विष्णु दिगम्बर'[11] आदि भी इसी प्रकार के निबन्ध हैं। 'महाराजा ट्रावनकोर',[12] 'श्यामनरेश चूडालंकरण'[13] आदि राजाओं पर लिखित निबन्ध हैं। 'कांग्रेसके कर्ता'[14] सर हेनरी काटन',[15] 'आदि राजनीतिज्ञों पर लिखेगए हैं। धर्मप्रचारकों एवं समाजसुधारकों पर द्विवेदी जी ने अपेक्षाकृत बहुत कम लिखा है। 'बौद्धाचार्य शीलभद्र',[16] 'शास्त्रविशारद जैनाचार्य', 'श्रीविजयधर्म सूरि'[17] आदि के विषय धार्मिक पुरुष हैं।

---

१. सरस्वती' १९१२ १२५।
२. ,, १९०१ ३४२।
३. ,, १९०९ ३१।
४. ,, १९१२ ३०,६९।
५. ,, १९०१ १९५।
६. ,, १९०७ २७६।
७ ,, १९११ २८२।
८. ,, १९२० २४८।
९. १९०२ ई० में लिखित और १९१० ई० में पुस्तिकाकार प्रकाशित।
१०. 'सरस्वती', १९०६ ई०, पृ० २२१।
११. ,, १९०७ ३८६।
१२ 'सरस्वती', १९०७ ई०, पृ० ५०३।
१३. ,, ,, ४०९।
१४ ,, १९०५ १६।
१५. ,, १९१५ 'विचार-विमर्श' में संकलित।
१६ ,, १९०८ एप्रिल
१७ १९११ जून

वैज्ञानिक निबन्धों में आविष्कार और अनुसंधान पर द्विवेदी जी ने अनेक रोचक निबन्ध लिखे। उनकी सम्पादित 'सरस्वती' में 'मंगल ग्रह तक तार',[१] 'रंगीन छायाचित्र',[२] 'कुछ आधुनिक आविष्कार'[३] सरीखे निबन्धों की बहुलता है। विषय की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों का चौथा वर्ग ऐतिहासिक निबन्धों का है। ये निबन्ध तीन प्रकार के हैं। 'भारतीय शिल्प शास्त्र',[४] 'विक्रमादित्य और उनके संवत् के विषय में एक नई कल्पना',[५] 'प्राचीन भारत में रसायन-विद्या'[६] आदि निबन्ध सामान्य ऐतिहासिक हैं। यह ऐतिहासिक निबन्धों का पहला प्रकार है। दूसरे प्रकार के ऐतिहासिक निबन्ध वे हैं जिनमें भारतीय वैभव, सभ्यता आदि का चित्रण किया गया है, यथा 'भारतवर्ष की सभ्यता की प्राचीनता',[७] 'आर्यों की जन्मभूमि',[८] 'प्राचीन भारत में जहाज'[९] आदि। तीसरे प्रकार के ऐतिहासिक निबन्ध पुरातत्वविषयक हैं, उदाहरणार्थ 'सोमनाथ के मन्दिर की प्राचीनता',[१०] 'भारतवर्ष के पुराने खंडहर',[११] 'शहरे बहलोल में प्राप्त प्राचीन मूर्तियां'[१२] आदि।

विषय के आधार पर उनके पांचवें वर्ग के निबन्ध भौगोलिक हैं। ये दो प्रकार के हैं—एक तो भ्रमण-सम्बन्धी और दूसरे स्थल-नगर-जात्यादि-वर्णनमय। भ्रमण-सम्बन्धी निबन्धों में प्रायः दूसरों की कथा वर्णित है। 'व्योम-विहरण'[१३] 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा'[१४] 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा'[१५] आदि इस विषय के उदाहरणीय निबन्ध हैं। 'पेरिस'[१६] 'जापान की स्त्रियां'[१७]

---

१. ,, १००६ पृ० २८५।
२ ,, १९१५ ३२।
३. ,, ,, १४९।
४. 'विचार-विमर्श', पृ० ८९, जुलाई, १९१२ ई०।
५. ,, ९३।
६. 'सरस्वती', १९१५ ई०, अगस्त।
७. 'विचार-विमर्श', पृ० १६०
८ 'साहित्य-संदर्भ' पृ० ५१।
९. 'सरस्वती', १९१६ ई०, पृ० ३१०
१०. 'विचार-विमर्श', पृ० १०२।
११. ,, १०९।
१२ ,, १२७।
१३ 'सरस्वती', १९०५ ई०, पृ० ३१५, ३४०।
१४. ,, १९०७ ७४।
१५ ,, १९०९ २६५।
१६ १९२० २५१
१७ , १९०५ ई० अनभरी

उत्तरी ध्रुव की यात्रा और वहां की स्कीमो जाति[1] आदि भौगोलिक निबन्ध दूसरे प्रकार के अन्तर्गत हैं। छठवें वर्ग के निबन्धों में उद्योग-शिल्प आदि विषयों पर विचार किया गया है। 'खेती की बुरी दशा',[2] हिन्दुस्तान का व्यापार',[3] भारत में औद्योगिक शिक्षा'[4] आदि लेखों में प्रायः अन्य पत्रिकाओं, रिपोर्टों आदि के आधार पर उपयोगी बातें कही गई हैं। इनके मूल में भारत को औद्योगिक रूप में उन्नत देखने की उत्कट अभिलाषा सन्निहित है। इस वर्ग के निबन्धों में सामयिकता का सबसे अधिक समावेश हुआ है।

सातवें वर्ग के निबन्ध भाषा-व्याकरण आदि को लेकर लिखे गए हैं। साहित्यिक निबन्धों के अन्तर्गत इन्हें न समाविष्ट करने के दो प्रमुख कारण हैं—एक तो ये निबन्ध प्रधानतया भाषा से सम्बद्ध हैं और दूसरे व्याकरण की दृष्टि ही इनमें मुख्य है। इन निबन्धों की रचना का श्रेय भाषा-संस्कारक द्विवेदी को है। 'भाषा और व्याकरण',[5] हिन्दी नवरत्न'[6] आदि निबन्ध हिन्दी गद्यभाषा की व्याकरण-विरुद्ध उच्छृंखलगति को रोकने तथा उसके शुद्ध और व्याकरणसंगत रूप की प्रतिष्ठा करने की सदाकांक्षा से लिखे गए थे। उनके अन्तिम वर्ग के निबन्ध आध्यात्मिक विषयों से सम्बद्ध हैं। ये निबन्ध द्विवेदी जी की भक्तिभावना तथा आत्मजिज्ञासा के परिचायक हैं। आत्माभिव्यंजकता और कला की दृष्टि से इन निबन्धों का महत्वपूर्ण स्थान है। 'सरस्वती'-सम्पादन के पूर्व ही 'निरीश्वरवाद'[7] 'आत्मा',[8] 'ज्ञान'-[9] जैसे निबन्ध द्विवेदी जी लिख चुके थे। उसके पश्चात् तो 'ईश्वर',[10] 'आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण',[11] 'पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण',[12] 'सृष्टि विचार',[13] 'परमात्मा की परिभाषा'[14] आदि आध्यात्मिक निबन्धों की

---

१. 'लेखांजलि' में संकलित।
२. 'सरस्वती', १९१८ ई०, पृ० ८।
३ ,, १९०३ ४१९।
४. ,, १९१३ ९५।
५ ,, १९०५ ४२४ तथा 'सरस्वती', १९०६ ई०, पृ० ६०।
६. ,, १९१२ ६९।
७. ,, १९०१ ३९१।
८ ,, ,, १७।
९ 'सरस्वती,' १९०१ ई०, पृ० १४।
१०. 'सरस्वती', १९०४ ई०, पृ० २७८, ३०२, ३५२, ३९२।
११ ,, १९०५ २३६।
१२. ,, ,, ४२१।
१ १७१
१४ ६ ३२१

उन्होंने एक शृंखला सी प्रस्तुत कर दी। उनके आध्यात्मिक निबन्धों का एक विशिष्ट प्रकार भारतीयभक्तिमूलक है और उसमें आत्मनिवेदन की प्रधानता है, यथा–'गोपियों की भगवद्भक्ति'[१]।

उद्देश की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों की दो कोटियाँ हैं–मनोरंजन–प्रधान और ज्ञानप्रधान। द्विवेदी–लिखित मनोरंजनप्रधान निबन्धों की संख्या अत्यन्त अल्प है। 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद्भावना',[२] 'कालिदास की निरंकुशता',[३] 'दमयंती का चन्द्रोपालम्भ'[४] आदि निबन्ध मनोरंजनप्रधान होते हुए भी ज्ञानवर्द्धन की भावना से सर्वथा शून्य नहीं हैं। वह तो द्विवेदी जी का स्थायी भाव है। द्विवेदी जी के प्रायः सभी निबन्ध पाठकों की ज्ञानभूमिका का विकास करने की मंगलकामना से अनुप्राणित हैं। इसी लिए मनोरंजन की अपेक्षा ज्ञानप्रसार का स्वर ही अधिक प्रधान है।

शैली की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों की तीन प्रमुख कोटियां हैं–वर्णनात्मक, भावात्मक और चिन्तनात्मक। यों तो द्विवेदी जी के सभी निबन्धों का उद्देश निश्चित विचारों का प्रचार करना रहा है और उन सभी में उन विचारों का न्यूनाधिक सन्निवेश भी हुआ है तथापि वर्णनात्मकता, भावात्मकता या चिन्तनात्मकता की प्रधानता के आधार पर ही इन तीन विशिष्ट कोटियों की भावना की गई है।

द्विवेदी जी के वर्णनात्मक निबन्धों के चार विशिष्ट प्रकार हैं–वस्तुवर्णनात्मक, कथात्मक, आत्मकथात्मक और चरितात्मक। वस्तुवर्णनात्मक निबन्ध प्रायः भौगोलिक स्थल-नगर-जात्यादि या ऐतिहासिक स्थानों, इमारतों आदि पर लिखे गए है, उदाहरणार्थ 'नेपाल',[५] 'मलाबार',[६] 'सांची के पुराने स्तूप',[७] 'बनारस' आदि। 'अतीत–स्मृति,' 'दृश्यदर्शन,' 'प्राचीन चिन्ह' आदि इसी प्रकार के निबन्धों के संग्रह हैं। द्विवेदी जी के अधिकांश कथात्मक निबन्धों में 'श्रीमद्भागवत', 'कादम्बरी' या 'कथासरित्सागर' की-सी कथा नहीं है। केवल कथा की शैली में घटनाओं, तथ्यों, संस्थाओं, यात्राओं आदि का वर्णन किया गया है, यथा–

१. 'समालोचना-समुच्चय', पृ० १।
२ सरस्वती,' १९११ ई०, एप्रिल।
,, ,, मई।
,, ,, जून।
३. 'सरस्वती,' १९११ ई०, पृ० ७, ५७, १०७
४ साहित्य-सन्दर्भ' में संकलित।
५ दृश्यदर्शन' में संकलित

व्यायामदरण'[1] अद्भुत इंद्रजाल[2] आदि लेखांजलि महिलामोद और अद्भुत आलाप' में संकलित अधिकांश निबन्ध इसी प्रकार के हैं। आधुनिक कहानियों का-सा वस्तुविन्यास, चरित्रचित्रण आदि न होने के कारण ये निबन्ध कहानी की कोटि में नहीं आ सकते। द्विवेदी जी के कुछ निबन्ध ऐसे भी हैं जिनमें वस्तुतः कथा का-सा प्रवाह और सारल्य है, यथा–'हंस–सन्देश',[3] 'हंस का दुस्तर दूत–कार्य'[4] आदि। इनमें न तो कहानी की विशेषताएँ हैं और न भावात्मक निबन्धों की। अपनी वर्णनात्मक शैली और कथाप्रवाह के कारण ही ये कथात्मक निबन्ध हैं। आत्मकथात्मक निबन्ध की विशिष्टता है वर्णित पात्र द्वारा उत्तम पुरुष में ही अपनी कथा का उपस्थापन। भावात्मकता का बहुत कुछ पुट होने पर भी अपनी इसी विशेषता के कारण यह भावात्मक निबन्ध की कोटि में नहीं रखा जा सकता। 'दंडदेव का आत्म–निवेदन'[5] इस शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें दंडदेव के मुख से ही उनके संक्षिप्त चरित का वर्णन कराया गया है।

द्विवेदी जी के चरितात्मक निबन्ध विशेष महत्व के हैं। हिन्दी साहित्य के प्राग्द्विवेदी-युग में संक्षिप्त जीवनचरित लिखने की कोई निश्चित प्रणाली नहीं थी। प्रबन्ध-काव्यों में नायकों के चरित अंकित किए गए थे। वैष्णवों की वार्ताओं में धार्मिक महापुरुषों के वृत्तों का संकलन किया गया था किन्तु उनमें ऐतिहासिक सत्य और कला की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि द्विवेदी जी के पूर्व भी 'सरस्वती' में अनेक संक्षिप्त जीवनचरित प्रकाशित हुए[6] तथापि उनकी कोई निश्चित परम्परा नहीं चली। द्विवेदी जी ने हिन्दी-साहित्य की इस कमी का अनुभव किया। उन्होंने पाश्चात्य साहित्य के संक्षिप्त जीवनचरितों के ढंग पर हिन्दी में भी जीवनचरित-रचना की परिपाटी चलाई। उन्होंने नियमित रूप से 'सरस्वती' में निबन्धों का प्रकाशन किया। 'चरितचर्या', 'चरितचित्रण', 'वनिता-विलास', 'सुकवि–संकीर्तन', 'प्राचीन पंडित और कवि' आदि जीवनचरितों के ही संग्रह हैं। उनके इस क्रम के दो उद्देश थे—एक तो मनोरंजन और दूसरा उपदेश,[7] यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अधिकांश जीवनचरित सम्पादक द्विवेदी के लिखे हुए हैं। पत्रपत्रिकाओं के उस

---

१. 'सरस्वती', १९०५ ई०, पृ० ३२।
२. ,, १९०६ ई० जनवरी।
३. ४. 'रसज्ञ-रंजन' में संकलित।
५. 'लेखांजलि' में संकलित।
६ यथा– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'–राधाकृष्ण दास– सरस्वती', १९०० ई०, प्रथम ५ संख्याएँ।
'राजा लक्ष्मण सिंह–किशोरी लाल गो० ,, ,, पृ० २०५, २३६।
'रामकृष्ण गोपाल भंडारकर'–श्यामसुन्दर दास ,, ,, २८०।
७ इनमें शिक्षाग्रहण करने की बहुत कुछ सामग्री है परन्तु यदि इनसे विशेष लाभ

उपेक्षाकाल में उन्हें मनोरंजक बनाने की उतनी ही आवश्यकता थी जितनी ज्ञानवर्द्धक बनाने की। इन जीवनचरितों को भी द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पाठकों के मनोरंजन का साधन समझा। अनुकरणीय व्यक्तियों के चरितों के चित्रण द्वारा पाठकों की बुद्धि और चरित्र के विकास का विचार भी स्वाभाविक और संगत था। कला की दृष्टि से इन निबन्धों की कुछ विशेषताएं अवेक्षणीय हैं। द्विवेदी जी ने उन्हीं व्यक्तियों के चरित पर लेखनी चलाई है जिनसे कुछ लोककल्याण हुआ है और जिनके चरित को पढ़कर पाठकों का कल्याण हो सकता है। लोगों का प्रलोभन और प्रभाव उन्हें अयोग्य व्यक्तियों का चरित अंकित करने और उन्हें 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिए बाध्य न कर सका। इसकी विस्तृत समीक्षा 'सरस्वती–सम्पादन' अध्याय में की जायगी। इन निबन्धों की दूसरी विशेषता यह है कि ये बहुत ही संक्षिप्त हैं। इनमें पात्रों के जीवन की उन्हीं बातों का संग्रह किया गया है जो उनके परिचय और चरित्रचित्रण के लिए आवश्यक तथा पाठकों की रुचि को परिष्कृत, भावों को उद्दीप्त एवं बुद्धि को प्रेरित करने में समर्थ प्रतीत हुई है। इनकी सर्वोपरि विशेषता यह है कि लेखक अपने भावन और अभिव्यंजन में सर्वत्र ही ईमानदार है। उसे हिन्दीपाठकों के हिताहित का इतना ध्यान है कि अनुचित पक्षपात और मिथ्या को इन निबन्धों में कहीं अवकाश नहीं मिला है।

शैली की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों की दूसरी कोटि भावात्मक है। इन निबन्धों में लेखक ने मधुमती कविकल्पना या गम्भीर विचारकसंस्तिक का सहारा लिए बिना ही वर्ण्य विषय के प्रति अपने भावों को अबाध गति से व्यक्त किया है। इन भावात्मक निबन्धों की प्रमुख विशेषता यह है कि उच्च कोटि के कवित्व और मननीय वस्तु का अभाव होते हुए भी इनमें किसी अंश तक काव्य की रमणीयता और विचारों की अभिव्यक्ति एक साथ है। कवित्व या विचारों की सापेक्ष प्रधानता के कारण ही इनके दो प्रकार हैं–कवित्व-प्रधान और विचार-प्रधान। मौलिकता की दृष्टि से कवित्व-प्रधान निबन्ध दो प्रकार के हैं। 'अनुमोदन का अन्त',[1] 'सम्पादक की बिदाई'[2] आदि मौलिक निबन्ध हैं जिनमें द्विवेदी जी

उठाने का विचार छोड़ भी दिया जाय तो भी इनके अवलोकन से घड़ी दो घड़ी मनोरंजन तो अवश्य ही हो सकता है। शिक्षा, सदुपदेश और सुसंगति से स्त्रियाँ अनेक अभिनन्दनीय गुणों का अर्जन कर सकती हैं, यह बात भी पाठकों और पाठिकाओं के ध्यान में आए बिना नहीं रह सकती।

महावीर प्रसाद द्विवेदी,
'वनिता-विलास' की भूमिका।

१ सरस्वती १९०५ ई॰ पृ॰ ५७
२ भाग २२ खंड १, संख्या १ पृ॰ १

ने अपनी ही मार्मिक अनभूतियों की अभिव्यक्ति की है। 'मनुष्य मात्र का प्रभात वर्णन',[1] 'दमयन्ती का चन्द्रोपालम्भ'[2] आदि अमौलिक निबन्ध हैं जिनमें क्रमशः 'शिशुपालवध' और 'नैषधीयचरित' के अंशानुवादरूप में भावनिबन्धना की गई है। विचारप्रधान भावात्मक निबन्ध भावोद्दीपक के समान ही विचारोत्तेजक भी हैं। इस प्रकार के निबन्धों में 'कालिदास के समय का भारत',[3] 'कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल',[4] 'साहित्य की महत्ता'[5] आदि विशेष उदाहरणीय हैं। भावात्मक निबन्धों की रीति संस्कृतशब्दबहुल तथा शैली वक्तृतात्मक और कहीं कहीं चित्रात्मक या संलापात्मक भी है। कवित्वप्रधान भावात्मक निबन्धों में माधुर्य और विचारप्रधान भावात्मक निबन्धों में ओज की प्रधानता है।

चिन्तनात्मक निबन्धों में मननीय विषयों का गम्भीर विवेचन किया गया है। शैली की दृष्टि से इन निबन्धों के तीन मुख्य प्रकार हैं—व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक और तार्किक। व्याख्यात्मक निबन्धों में लेखक ने पाठकों को विस्तृत विवेचन द्वारा किसी विषय में भली-भाँति अवगत कराने का प्रयास किया है। ये निबन्ध मनोविज्ञान, अध्यात्म, साहित्य आदि अनेक विषयों पर लिखे गए हैं। 'आत्मा',[6] 'ज्ञान',[7] 'कविकर्तव्य',[8] 'कविता',[9] 'कवि और कविता',[10] 'प्रतिभा',[11] 'नाट्यशास्त्र'[12] आदि विचारात्मक निबन्धों के इसी प्रकार के अन्तर्गत हैं। 'आध्यात्मिकी' व्याख्यात्मक आध्यात्मिक निबन्धों का ही संग्रह है। द्विवेदी जी के समस्त निबन्धों में उनके आलोचनात्मक निबन्धों का स्थान सबसे ऊँचा है क्योंकि वे ही युगनिर्माता द्विवेदी के व्यक्तित्व की सबसे अधिक अभिव्यक्ति करते हैं। ये निबन्ध आलोचना की छः विभिन्न पद्धतियों पर लिखे गए हैं और तदनुसार उनकी रीतिशैली भी विभिन्न प्रकार की है। इसकी विस्तृत विवेचना 'आलोचना' अध्याय के अन्तर्गत की गई है। चिन्तनात्मक निबन्धों का तीसरा प्रकार तार्किक है। तार्किक निबन्धों में

---

१ 'साहित्य-सन्दर्भ' में संकलित।

२ ,, ,, ,,

३, ४. 'कालिदास और उनकी कविता' में संकलित।

५. तेरहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर स्वागताध्यक्ष-पद से द्विवेदी जी के भाषण का एक भाग।

६. 'सरस्वती', १९०१ ई०, पृ० १७।

७. ,, ,, ,, ६३।

८ ९, १०. 'रसज्ञरंजन' में संकलित।

११ 'सरस्वती' १९०२ ई० पृ० २८२।

१२ १९०३ ई० में लिखित और १९१० ई० में पुस्तिकाकार प्रकाशित

प्रमाण और न्याय के द्वारा प्रतिपाद्य विषय का ठोस उपस्थापन किया गया है। उद्देश की दृष्टि से इसके भी दो प्रकार हैं। एक तो वादविवादात्मक निबन्ध हैं जिनमें अपनी बात को पुष्ट और विपक्षियों की बात का खण्डित करने के लिए तर्क का सहारा लिया गया है, उदाहरणार्थ–'नैषधचरितचर्चा और 'सुदर्शन',[1] महिपशतक की समीक्षा',[2] 'भाषा और व्याकरण'[3] आदि। इस शैली का सुन्दरतम निबन्ध द्विवेदी जी का वह लिखित 'वक्तव्य' है जिसे उन्होंने नागरी–प्रचारिणी–सभा के पास भेजा था और जिसके परिवर्द्धित रूप में 'कौटिल्यकुठार'[4] की रचना की थी। दूसरे प्रकार के चिन्तनात्मक निबन्ध गवेषणात्मक हैं जिनमें उपर्युक्त प्रकार का कोई विवाद कारण नहीं है और जिनमें अपने कथन की पुष्टि के लिए सप्रमाण तथा न्यायसंगत शैली अपनाई गई है, यथा–'राजा युधिष्ठिर का समय',[5] 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति'[6], 'कालिदास का समयनिरूपण',[7] 'कालिदास का स्थितिकाल'[8] आदि।

द्विवेदी जी की निबन्धगत भाषा, रचनाशैली और व्यक्तित्व भी विवेचनीय हैं। भाषा की रीतियों और शैलियों की विस्तृत समीक्षा आगे चलकर 'भाषा और भाषासुधार' अध्याय में की गई है। वहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि द्विवेदी जी ने हिन्दी-गद्य के शब्दसंकलन की सभी रीतियों और भावाभिव्यंजन की सभी प्रणालियों का यथावसर प्रयोग किया है जो उनकी रचनाओं में अविकसित होती हुई भी उनके युग की रीतिशैलियों की भूमिका हैं। उनकी रचनाशैलीगत विशेषताओं का अध्ययन दो प्रकार से सम्भव है—वस्तुस्थापन की दृष्टि से और अभिव्यक्ति-प्रणाली की दृष्टि से। वस्तूपस्थापन में भी दो बातें विशेष आलोच्य हैं प्रारम्भ करने की शैली और समाप्त करने की शैली। प्रारम्भ करने के लिए अनेक शैलियों का प्रयोग करके द्विवेदी जी ने पिष्टपेषण की एकरसता को दूर रखा है। विषयानुसार और सुविधानुसार उन्होंने निबन्ध की प्रारम्भिक

---

१ 'सरस्वती', १९०० ई०, पृ० ३२१।
२ ,, १९०१ ३४५।
३ 'सरस्वती', १९०६ ई०, पृ० ६०।
४ अप्रकाशित वक्तव्य काशी-नागरी- प्रचारिणी-सभा के कार्यालय और अप्रकाशित 'कौटिल्य-कुठार' उक्त सभा के कलाभवन में रक्षित है।
५. 'सरस्वती', १९०५ ई०, जून।
६. १९०७ ई० में पुस्तिकाकार प्रकाशित।
७ सरस्वती, १९१२ ई० पृ० ४६१
८ १९११ ई०, फरवरी

भूमिका अनेक प्रकार से प्रस्तुत की है सबसे प्रचलित तथा सरल शैली कथात्मक है।[१] कहीं पर आत्मनिवेदन-सा करते हुए विषय की प्रस्तावना की गई है।[२] कहीं मूल लेखक के विषय में ज्ञातव्य बातों का कथन करते हुए उन्होंने निबन्ध का प्रारम्भ किया है,[३] कहीं पर निबन्ध का प्रारम्भ तद्गत सुन्दर वस्तु से ही हुआ है,[४] कहीं प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध किसी सामान्य तथ्य का उद्घाटन ही निबन्ध की भूमिका के रूप में आया है,[५] कहीं निबन्ध को अधिक संवेदनात्मक बनानेके लिए भावप्रधान संबोधन द्वारा उसका आरम्भ किया गया है[६] और कहीं अध्यापक के स्वर में शीर्षक या विषय के स्पष्टीकरण के द्वारा ही निबन्ध की प्रस्तावना की गई है।[७] निबन्ध को समाप्त करना अपेक्षाकृत सुगम है। उसकी समाप्ति म

---

१. यथा-'श्रीहर्ष का कालिदास'—

"नैषधचरित नामक महाकाव्य की रचना करनेवाले श्रीहर्ष को हुए कम से कम आठ सौ वर्ष हो गए। वे कन्नौजनरेश जयचन्द के समय विद्यमान थे।..."

—'सरस्वती,' मार्च, १९२१ ई०।

२ यथा-'वैदिक देवता'—

"हम वैदिक संस्कृत नहीं जानते। अतएव वेद पढ़कर उनका अर्थ समझ सकने की शक्ति भी नहीं रखते। वेद हमने किसी वेदज्ञ विद्वान से भी नहीं पढ़े।"

—'साहित्यसन्दर्भ,' ३७।

३. यथा- आर्यों की जन्मभूमि'—

"पूने में नारायण भवानराव पावगी नाम के एक सज्जन हैं। आप पहले कहीं सब जज थे।..."

—'सरस्वती,' अक्टूबर, १९२१ ई०।

४ यथा—'महाकवि माघ का प्रभातवर्णन'—

'रात अब बहुत ही थोड़ी रह गई है। सुबह होने में कुछ ही कसर है। जरा सप्तर्षि नाम के तारों को तो देखिए।..."

—'साहित्य सन्दर्भ,' पृ० १०४।

५. यथा-'जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि'—

'जिनके हृदय कोमल हैं, अर्थात् अलंकार शास्त्र की भाषा में जो सहृदय हैं उन्हीं को सरस काव्य के आकलन से आनन्द की यथेष्ट प्राप्ति हो सकती है।"

—'सरस्वती,' अगस्त, १९२२ ई०।

६ यथा-'प्राचीन भारत की एक झलक'—

"भारत' क्या तुम्हें कभी अपने पुराने दिनों की बात याद आती है?...."

—'सरस्वती,' दिसम्बर, १९२८ ई०।

७. यथा-'कविकर्तव्य'—

"कविकर्तव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी कवियों के कर्तव्य से है।"

सरस्वती १९१२ ई० पृ० ४

निबन्धकार कला का समावेश भी उचित गति से सहज ही कर सकता है, द्विवेदी जी ने अपने निबन्ध को समाप्त करने में गहरी कलात्मकता का परिचय दिया है। कहीं तो विवादग्रस्त विषय पर अपना मत देकर वे पाठक से विचार करने का अनुरोध करके मौन हो गए हैं,[1] कहीं विषय के निरूपण के साथ ही निबन्ध को समाप्त कर दिया है,[2] कहीं उपदेशक की सीधी सादी भाषा में प्रार्थना, अभिलाषा आदि की अभिव्यक्ति के द्वारा उन्होंने निबन्ध की समाप्ति की है[3] और कहीं उनके निबन्धों का अन्त किसी सुभाषित उद्धरण आदि के द्वारा हुआ है।[4] आकस्मिकता एवं प्रभाव की दृष्टि से ऐसा अन्त अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है। अध्ययनशील द्विवेदी जी के अनेक सुन्दर निबन्धों की समाप्ति प्रायः इसी प्रकार हुई है।

व्यक्तित्व की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबन्धों का अध्ययन कम महत्वपूर्ण नहीं है।

---

१. यथा–'भारतभारती का प्रकाशन'

आशा है पाठक इसे लेकर एक बार इसे साद्यन्त पढ़ेंगे और पढ़ चुकने पर—

'हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी।"
मिलकर विचारेंगे हृदय से ये समस्याएँ सभी॥"

– विचार-विमर्श,' पृ० १६६।

२. यथा-'महाकवि माघ की राजनीति—

'अतएव इन्द्रप्रस्थ चलने और वहीं युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल को मारने का निश्चय हुआ।"

— सरस्वती,' फरवरी १६२२ ई०।

३. यथा-'जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि'—

"जगद्धर की तरह भगवान् भाव से हम भी कुछ कुछ ऐसी ही प्रार्थना करके 'स्तुति–कुसुमांजलि' की करुण कथा से विरत होते हैं।"

—'साहित्यसन्दर्भ,' पृ० १४६।

४. क. यथा–'उपन्यास-रहस्य'—

'दूकानदारी ही के कुत्सित कामना से जो लोग, पाठकों को पशुवत् समझ कर, घासपात सदृश अपनी बेसिरपैर की कहानियाँ उनके सामने फेंकते हैं—

ते के न जानीमहे।"

—'साहित्यसन्दर्भ,' पृ० १७३।

ख. यथा–'विवाहविषयक विचारव्यभिचार'—

"पर केवल अधिकारी जन ही उस पर कुछ कहने का साहस कर सकते हैं। हम नहीं। हमारी तो वहाँ तक पहुंच ही नहीं—

जिहि मारुत गिरि मेरु उड़ाही। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥"

नव धकार द्विवदी क व्यक्ति व उनके सभा नव ा म आद्योपान्त ी स्थिर एव गतिशील ह स विरा ाभास की व्याख्या अपक्षित है द्विवदी जी के व्यक्तित्व की स्थिरता उनक उद्देश की स्थिरता मे है। उनकी निबन्धरचना का उद्देश निश्चित है—पाठको का मनोरजन ग्रौर उनका बौद्धिक तथा चारित्रिक विकास करना। इस सम्बन्ध मे उनके विचार भी निश्चित ह —भारतीयो को अपनी भाषा, साहित्य, धर्म, देश, सभ्यता और संस्कृति के प्रति प्रेम तथा उनके उत्थान के लिए प्रयत्न करना चाहिए। पाठको में उत्थान और प्रेम की भावना भरने का यह भाव द्विवेदी जी के सभी निबन्धो में समवेतया असमवेत रूप से व्याप्त है। उनके व्यक्तित्व की गतिशीलता इस भाव की अभिव्यजनाशैली मे है। प्रस्तुत उद्देश की पूर्तिके लिए उन्हें आवश्यकतानुसार आलोचक,सम्पादक, भाषा-सस्कारक आदि के विभिन्न पदो मे संग्राम करना पडा है। आवश्यकतानुसार उन्हे वर्णनात्मक, व्यग्यात्मक, चित्रात्मक, वक्तृतात्मक, सलापात्मक, विवेचनात्मक या भावात्मकशैली में वर्णनात्मक, भावात्मक या चिन्तनात्मक निबन्धो की सृष्टि करनी पडी है।

पाश्चात्य निबन्धकारो की भाँति द्विवेदी जी का व्यक्तित्व उनके निबन्धो में विशेषस्फुट नही हो सका है। इसका एक प्रधान कारण है। पश्चिम के व्यक्तित्व-प्रधान निबन्ध का लेखक स्वय ही अपने निबन्धो का केन्द्र रहा है। द्विवेदी जी की अवस्था इसके ठीक विपरीत है। अनुमोदन का अन्त,अभिनन्दन, मेले और सम्मेलन के भाषण, सम्पादक की विदाई आदि कतिपय आत्मनिवेदनात्मक निबन्धो को छोडकर अपने किसी भी निबन्ध मे द्विवेदी जी ने अपने को निबन्ध का केन्द्र नही माना है। पाठक ही उनके निबन्धो का केन्द्र रहा है। उन्होने प्रत्येक वस्तु को उसी के लाभालाभ की दृष्टि से देखा है। ऐसी दशा में द्विवेदी जी क निबन्धो का व्यक्तिवैचित्र्य मे विशेष विशिष्ट न होना सर्वथा अनिवार्य था। मनोरंजकता तथा काव्यात्मकता को जब द्विवेदी जी ने ही गौण स्थान दिया है तब उसे ही प्रधान मान कर उनके निबन्धो की विशेषताओ की सच्ची परीक्षा नही की जा सकती। व्यक्तिवैचित्र्य तो व्यक्तित्व का संकुचित अर्थ है। उसका व्यापक एवं उचित अर्थ है व्यक्ति की प्रवृत्तिया, विशेषताओ तथा गुणो का एक साधारिक स्वरूप। इस दूसरे अर्थ में द्विवेदी जी के निबन्ध उनके व्यक्तित्व मे व्याप्त हैं।

यह तो निबन्धकार द्विवेदी के व्यक्तित्व के अव्यक्त पक्ष की बात हुई। उनके व्यक्तित्व का सुव्यक्त पक्ष भी है जो उनके कलात्मक निबन्धो मे स्पष्टतया प्रकट हुआ है। इसकी अभिव्यंजना दो रूपो मे हुई है—सहृदयता के रूप में और भक्तिभावना के रूप में। पहले मे कवि द्विवेदी का रूप स्पष्ट हुआ है और दूसरे में भक्त एवं दार्शनिक द्विवेदी का

मेघदूत रहस्य ास का नीर नीर विवक की विदाई आदि निबन्ध द्विवदी

जी के सहृदय कवि-हृदय को अभिव्यक्त करते हैं जगद्गुरु भक्त की स्तुति कुसुमाञ्जलि गोपियों की भगवद्भक्ति' आदि निबन्ध उनके भक्त हृदय के व्यंजक हैं व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष रूप में अनुप्राणित निबन्ध द्विवेदी जी ने बहुत कम लिखे। युग की आवश्यकताओं ने उन्हें वैसा न करने दिया।

द्विवेदी जी की निबन्धकारिता स्वतन्त्ररूप से विकसित नहीं हुई—यह एक सिद्ध तथ्य है। उसे आलोचक, सम्पादक, भाषासुधारक आदि ने समय समय पर आक्रान्त कर रखा था, अतएव उसका पूर्ण विकास न हो सका। साथ ही उस युग का पाठक उस साधारण स्तर से ऊपर की वस्तु स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं था। निबन्ध की कलात्मकता एवं साहित्यिकता पाठक तथा निबन्धकार के सहयोग पर ही अवलम्बित है। केवल स्थायित्व की दृष्टि से द्विवेदी जी के सभी निबन्धों की परीक्षा करना अनुचित है। उनकी रचना मुख्यतः सामयिक प्रश्नों के समाधान के लिए की गई थी। शुद्ध कला की दृष्टि से ऐसे सामयिक निबन्धों का मूल्य बहुत कम है। तो फिर बातों के संग्रह कहे जाने वाले द्विवेदी जी के इन निबन्धों का हिन्दी-साहित्य में स्थान क्या है?

यहाँ आलोचना और आलोचक के विषय में भी एक बात कहना आवश्यक हो गया। सौन्दर्यमूलक आलोचना ही आलोचना नहीं है। इतिहास और रचनाकार की जीवनी आदि यदि अधिक नहीं तो सौन्दर्य के समान ही महत्वपूर्ण हैं। सौन्दर्य की ईदृक्ता देशकालानुसार परिवर्तनशील है। इसलिए आज की सौन्दर्यकसौटी पर कल की वस्तु को भद्दी और रद्दी कहना न्यायसंगत नहीं जँचता। आज की कसौटी पर भी द्विवेदी जी के 'प्रतिभा,' 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति,' 'कालिदास के मेघदूत का रहस्य,' 'कालिदास का स्थितिकाल','साहित्य की महत्ता' आदि निबन्ध सोलहो आने खरे उतरते हैं। ये हिन्दी-साहित्य की स्थायी निधि हैं। आज आलोचक बनने के लिए केवल ज्ञान की ही नहीं सहृदयता की भी अपेक्षा है। निबन्ध के कलात्मक विवेचन में विभिन्न प्रकार से चाहे जो भी कहा जाय किन्तु उसके मूल उद्देश में कोई तात्त्विकअन्तर नहीं है। हिन्दी साहित्य में निबन्ध का उद्देश रहा है नियत समय पर निश्चित विचारों का प्रचार करना। और इसी कारण पत्रिकाएँ उसके प्रकाशन का माध्यम बनीं। भूमिका में कहा जा चुका है कि द्विवेदी जी के पूर्व भी 'हिन्दी-प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'आनन्दकादम्बिनी,' 'भारतमित्र' आदि ने बहुसंख्यक निबन्ध प्रकाशित किए थे, परन्तु उन्होंने निबद्ध रूप से निश्चित विचारों का प्रचार नहीं किया। एक ही निबन्ध में उच्छृंखल भाव से इच्छानुसार सब कुछ कह देने का प्रयास किया गया। द्विवेदी-सम्पादित 'सरस्वती' ने इस कमी को दूर किया। उसका प्रत्येक अंक अपने निबन्धों द्वारा नियत समय पर निश्चित विचारों के प्रचार की घोषणा करता है हिन्दी निबन्ध ने कला के लिए कला'

मौलिक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। उसकी दृष्टि प्रधानतया उपयोगिता पर ही रही है। इस दृष्टि से भी द्विवेदी जी और उनकी 'सरस्वती' की देन अप्रतिम है। उद्देश, रीति, शैली आदि सभी दृष्टियों से द्विवेदी जी तथा उनकी सम्पादित 'सरस्वती' ने ठोस, उपयोगी और कलात्मक निबन्धों की रचना के साथ ही अपने तथा परवर्ती युग के निबन्धों की आदर्श भूमिका प्रस्तुत की। हिन्दी-साहित्य का निबन्धकार द्विवेदी की यही देन है।

सातवाँ अध्याय

सरस्वती-सम्पादन

१९ वीं शती के हिन्दी-पत्रों की अवस्था का निरूपण भूमिका में हो चुका है। १८९७ ई० में प्रकाशित होने वाली "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" का उद्देश्य था साहित्यक अनुसन्धान और पर्यालोचन। पाठकों का मनोरंजन, हिन्दी के विविध अंगों का पोषण, परिवर्धन और कवियों तथा लेखकों को प्रोत्साहित करने की भावना से प्रेरित और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित 'सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका सरस्वती' का प्रकाशन १९०० ई० से प्रारम्भ हुआ। कदाचित् कार्यगुरुता के कारण और जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए पहले वर्ष इसकी सम्पादक-समिति में पाच व्यक्ति थे—कार्तिकप्रसादखत्री, किशोरी लाल गोस्वामी, जगन्नाथदास बी० ए०, राधाकृष्ण दास और श्यामसुन्दर दास। प्रथम बारह संख्याओं में सम्पादकों के अतिरिक्त केवल दस अन्य लेखकों ने लिखा। पत्रिका का कलेवर १६ से २१ पृष्ठों तक ही सीमित रहा 'सरस्वती' के पहले अंक के विषय निम्नलिखित थे—

१. भूमिका
२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—जीवनी
३. सिम्बेलीन—महाकवि शेक्सपियर रचित नाटक की आख्यायिका का मर्मानुवाद।
४. प्रकृति की विचित्रता— कुत्ते के मुँह वाला आदमी आदि
५. काश्मीर—यात्रा
६. कवि-कीर्ति-कलानिधि—अर्जुन मिश्र
७. आलोक-चित्रण अथवा फोटोग्राफी

लेख संख्या ६ को छोड़कर सभी लेख सम्पादकों के थे।

प्रथम अंक की प्रारम्भिक भूमिका में ही 'सरस्वती' ने अपने उद्देश्य और रूपरेखा का सुन्दर शब्दचित्र अंकित किया था।[1] खेद है कि प्रथम तीन वर्षों तक उसकी यह प्रतिज्ञा

१"……हिन्दी के उत्साहियों, हितैषियों, उन्नायकों, रसज्ञों और सहयोगियों से ऐसी अखंडनीय आशा क्यों न की जाय कि वे लोग सब प्रकार से अपनी बहुलता की शीतल छाया में इस नवीन बालिका को आश्रय देने में कदापि परान्मुख न होंगे कि जिनके सन्मुख

अपूर्ण रही पहले वर्ष पाच सम्पादक क होत हुए भी उसका भार श्यामसुन्दर दास पर ही रहा सभा क तथा अन्य उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यो म व्यस्त रहन क कारण व 'सरस्वती' को अपेक्षित समय और शक्ति नहीं दे सकते थे। पहले दो अंकों मे पद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास चम्पू आदि के नाम पर कुछ भी न निकला। तदुपरान्त भी नाममात्र को ही इनका समावेश हो सका। आरम्भिक विषय-सूची भी गडबड रही। लेखों के अन्त या आरम्भ में कहीं भी लेखकों का नाम नहीं दिया गया। सम्पादकीय टिप्पणी और विविध-विषय-जैसी वस्तु का अभाव रहा। हा, प्रकाशक का वक्तव्य अवश्य था, परन्तु वह उपर्युक्त अभाव का पूरक नहीं कहा जा सकता। उसकी भाषा का आदर्श भी अनिश्चित था।

१९०१ ई० में केवल श्यामसुन्दर दास ही सम्पादक रह गए। अपने एकाकी सम्पादन-काल (१९०१–२) में उन्होंने 'सरस्वती' का बहुत कुछ सुधार किया। १९०१ की मई मे 'विविध वार्ता' और जुलाई से 'साहित्य समालोचना' के खंडों का श्रीगणेश हुआ। वर्ष भर की लेख-सूची लेखकों के नामानुक्रम मे प्रस्तुत की गई। १९०२ ई० की रचनाओं के अन्त म रचनाकारों के नाम और चित्रों के सुधार की ओर ध्यान दिया गया। लेखक-संख्या भी दूनी हो गई। द्विवेदी जी के लेखों और व्यंगचित्रों ने 'सरस्वती' के वर्धमान सौन्दर्य मे चार चाद लगा दिये।

आज यह अपने नये रंग ढंग, नये वेश विन्यास, नये उद्योग उत्साह और नई मनमोहिनी छटा से उपस्थित हुई है।

इसके नव जीवन धारण करने का केवल यही उद्देश्य है कि हिन्दी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती भंडार की अंगपुष्टि, वृद्धि और यथायथ पूर्ति हो, तथा भाषा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रन्थराजि को प्रसव करे।

और इस पत्रिका मे कौन कौन से विषय रहेंगे, यह केवल इसी से अनुमान करना चाहिये कि इसका नाम सरस्वती है। इसमें गद्य, पद्य, काव्य, नाटक, उपन्यास चम्पू, इतिहास जीवनचरित, पत्र, हास्य, परिहास, कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प, कला कौशल आदि, साहित्य के यावतीय विषयों का यथावकाश समावेश रहेगा और आगत ग्रन्थादिकों की यथोचित समालोचना की जायेगी। यह हम लोग निज मुख से नहीं कह सकते कि भाषा मे यह पत्रिका अपने ढग की प्रथम होगी। किन्तु हा, सहृदयों की समुचित सहायता और सहयोगियों की सच्ची सहानुभूति हुई तो अवश्य यह अपने कर्तव्य पालन मे सफल मनोरथ होने का यथाशक्य उद्योग करने मे शिथिलता न करेगी।

इससे लाभ केवल यही सोचा गया है कि सुलेखकों की लेखनी स्फुरित हो जिससे हिन्दी की अगपुष्टि और उन्नति हो। इसके अतिरिक्त हम लोगों का यह भी दृढ विचार है कि यदि इस पत्रिका सम्बन्धीय सब प्रकार का व्यय देकर कुछ भी लाभ हुआ तो इसके लेखकों की हम लोग उचित सेवा करने म किसी प्रकार भी त्रुटि न करेंगे

सरस्वती भाग १ सं० १ आरम्भिक भूमिका

उपर्युक्त सुधारों और उत्कर्षों के होते हुए भी 'सरस्वती' का मान विशेष ऊंचा न हो सका। उसके प्रतिज्ञा-वाक्य और योजनाएँ यथार्थता का रूप धारण न कर सकीं। विषय, भाषा, पाठक, और लेखक—सभी की दशा शोचनीय बनी रही। १६०२ ई० के अन्त में श्यामसुन्दर दास ने भी सम्पादन करने में असमर्थता प्रकट की। उन्होंने सम्मति दी, बाबू चिन्तामणि घोष ने प्रस्ताव किया और पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती' का सम्पादन स्वीकार कर लिया।

जनवरी १६०३ ई० से द्विवेदी जी ने सम्पादन आरम्भ किया। पत्रिका के अंग-अंग में उनकी प्रतिभा की झलक दिखाई पड़ी। विषयों की अनेक-रूपता, वस्तुयोजना, सम्पादकीय टिप्पणियों, पुस्तक-परीक्षा, चित्रों, चित्र-परिचय, साहित्य-समाचार के व्यंगचित्रों, मनोरंजक सामग्री, बाल-वनितोपयोगी रचनाओं, प्रारम्भिक विषय-सूची, प्रूफ-संशोधन और पर्यवेक्षण में सर्वत्र ही सम्पादन-कला-विशारद द्विवेदी का व्यक्तित्व चमक उठा।

तत्कालीन दुर्विदग्ध मायावी सम्पादक अपने को देशोपकारव्रती, नानाकला-कौशल-कोविद निःशेष-शास्त्र-दीक्षित, समस्त-भाषा-पंडित और सकलकला-विशारद समझते थे। अपने पत्र में वे बेसिरपैर की बातें करते, रुपया ऐंठने के लिए अनेक प्रकार के वंचक विधान रचते, अपनी दोषराशि को तृणवत् और दूसरों की नन्हीं सी त्रुटि को सुमेरु समझकर अलेख्य लेखों द्वारा अपना और पाठकों का अकारण समय नष्ट करते थे। निस्सार निंद्य लेखों को तो सादर स्थान देते और विद्वानों के सम्मान्य लेखों की अवहेलना करते थे। आलोचनार्थ आई हुई पुस्तकों का नाममात्र प्रकाशित करके मौन धारण कर लेते और दूसरों की न्याय-संगत समालोचना की भी निंदा करते। दूसरे पत्रों और पुस्तकों से विषय चुराकर अपने पत्र की उदरपूर्ति करते और उनका नाम तक न लेते थे। पत्रोत्तर के समय पूरे मौनी बन जाते, स्वार्थवश परम नम्रता दर्शाते और अपने दोष की निदर्शना देखकर प्रलयंकर हर का-सा उग्र रूप धारण कर लेते थे। भली-बुरी औषधियों, गई-बीती पुस्तकों और सभी प्रकार के कूड़ा-करकट का विज्ञापन प्रकाशित करके पत्र-साहित्य को कलंकित करते थे। अपनी स्वतंत्रता, विद्या और बल का दुरुपयोग करके अपमानजनक लेख छापते और फिर भय उपस्थित होने पर हाथ जोड़कर क्षमा मांगते थे।[1]

सम्पादन-भार ग्रहण करने पर द्विवेदीजी ने अपने लिए मुख्य चार आदर्श निश्चित किए—समय की पाबन्दी करना, मालिकों का विश्वास-भाजन बनना, अपने हानि-लाभ की परवाह न करके पाठकों के हानि-लाभ का ध्यान रखना और न्याय-पथ से कभी भी विचलित

१ द्विवेदी लिखित और 'द्विवेदी काव्य-माला' में संकलित सम
के आधार पर

न होना।[1] उस समय हिन्दी पत्रिकाएं नियत समय पर न निकलती थीं। वे अपने विलम्ब का कारण बतलाती—सम्पादकजी बीमार हो गये, उनकी लेखनी टूट गई, मशीन बिगड़ गई, प्रकाशक महाशय के सम्बन्धी का स्वर्गवास हो गया, इत्यादि। द्विवेदी जी इन विडम्बनापूर्ण घोषणाओं के कायल न थे। उनकी निश्चित धारणा थी कि पत्रिका का विलम्बित प्रकाशन ग्राहकों के प्रति अन्याय और सम्पादकके चरित्रका घोर पतन है। मशीन फेल होती है, हुआ करे; सम्पादक बीमार है, पड़ा रहे; कलम टूट गई है, चिन्ता नहीं, सम्बन्धी मर रहे हैं, मरा करे; सम्पादक को अपना कर्तव्यपालन करना ही होगा, पत्रिका नियत समय पर ग्राहक के पास भेजनी ही होगी। सम्पादक के इस कठिन उत्तरदायित्व का निर्वाह उन्होंने जी जान होमकर किया। चाहे पूरा का पूरा अंक उन्हेंही क्यों न लिखना पड़ा हो, उन्होंने पत्रिका समय पर ही भेजी। केवल एक बार, उनके सम्पादन-काल के आरम्भ में, १६०३ ई० की दूसरी और तीसरी सख्याएँ एक साथ निकली। इस अपराध के लिए नवागत सम्पादक द्विवेदी जी सर्वथा क्षम्य है। इस दोष की आवृत्ति कभी नहीं हुई। कम से कम छ: महीने की सामग्री उन्होंने अपने पास सदैव प्रस्तुत रखी। जब कभी वे बीमार हुए, छुट्टी ली, या जब अन्त में अवकाश ग्रहण किया तब अपने उत्तराधिकारी को कई महीने की सामग्री देकर गए जिसमे 'सरस्वती' के प्रकाशन मे विलम्ब, अतएव ग्राहकों को असुविधा और कष्ट न हो। उनके लगभग सत्रह वर्षोंके दीर्घ सम्पादन-काल मे एक बारभी 'सरस्वती' का प्रकाशन नहीं रुका। उसी समय के उपार्जित और स्वलिखित कुछ लेख द्विवेदी जी के संग्रह मे अभिनन्दन के समय भी उपस्थित थे।[2] वे आज भी काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के कलाभवन और दौलतपुर मे रक्षित हैं।

उन्होंने 'सरस्वती' के उद्देश्यों की दृढता के साथ रक्षा की। अपने कारण स्वामियों को कभी भी उलझन में न डाला। उनकी 'सरस्वती'-सेवा क्रमशः फूलती फलती गई। उनकी कर्तव्यनिष्ठा और न्यायपरायणता के कारण प्रकाशकों ने उन्हें सर्वदा अपना विश्वासपात्र माना।[3]

द्विवेदी जी के लेखो तथा कथनों से विदित होता है कि उनके लक्ष्य थे—हिन्दी-भाषियों की मानसिक भूमिका का विकास करना, संस्कृत-साहित्य का पुनरुत्थान, खड़ीबोली-कविता का उन्नयन, नवीन पश्चिमीय शैली की सहायता मे भावाभिव्यंजन, संसार की वर्तमान प्रगति का परिचय और साथ ही प्राचीन भारत के गौरव की रक्षा करना। हिन्दी-पाठकों की असंस्कृत

१. आत्म-निवेदन, 'साहित्य-सन्देश', एप्रिल, १६३६ ई०, के आधार पर

२ 'साहित्य-संदेश'—एप्रिल, १६३६ ई० में प्रकाशित आत्मनिवेदन के आधार पर

रुचि को नत करने का प्रयास न करके उन्होंने उसके परिष्कार का ही उद्योग किया इस अर्थ में उन्होंने लोकरुचि और लोकमत की अपेक्षा अपने सिद्धांतों और आदर्शों का ही अधिक ध्यान रखा। वस्तुतः उनके सम्पादक-जीवन की समस्त साधना 'सरस्वती'-पाठकों के ही कल्याण के लिए थी। विविधविषयक उपयोगी और रोचक लेखों, आख्यायिकाओं, कविताओं, श्लोकों, चित्रों, व्यंग-चित्रों, टिप्पणियों आदि के द्वारा जनता के चित्त को 'सरस्वती' के पठन में रमाया।

आज 'वीणा,' 'विशाल भारत,' 'हंस,' 'माधुरी,' 'विज्ञान,' 'भूगोल,' साहित्य-संदेश' आदि अनेक व्यापक एवं विशिष्ट-विषयक पत्रिकाएँ हिन्दी का गौरव बढ़ा रही हैं। द्विवेदी जी के सम्पादन-काल में, खद्योत-सरीखे साप्ताहिक और मासिक पत्रों की उस अंधकारमयी रजनी में, अपनी अप्रतिहत प्रभा से चमकने वाली एक ही ध्रुवतारिका थी—'सरस्वती'। तब उसमें कुछ प्रकाशित कराना बहुत बड़ी बात थी। लोग द्विवेदी जी को अनेक प्रलोभन देते थे। 'कोई कहता—मेरी मौसीका मरसिया छाप दो, मैं तुम्हें निहाल कर दूंगा। कोई लिखता—अमुक सभापति की स्पीच छाप दो, मैं तुम्हारे गले में बनारसी दुपट्टा डाल दूंगा। कोई आज्ञा देता—मेरे प्रभु का सचित्र जीवन चरित्र निकाल दो तो तुम्हें एक बढ़िया घड़ी या पैरगाड़ी नजर की जावेगी।'[1] द्विवेदी जी अपने भाग्य को कोसते और बहरे तथा गूंगे बन जाते थे। पाठकों के लाभ के लिए स्वार्थों की हत्या कर देने में ही उन्होंने गौरव, सुख और शांति का अनुभव किया। शंकर की थैलिया भेंट करने वाले सज्जन को उन्होंने मुँहतोड़ उत्तर दिया था—"तुम्हारी थैलिया जैसी की तैसी रखी है। 'सरस्वती' इस तरह किसी के व्यापार का साधन नहीं बन सकती।"[2]

सत्समालोचना के आगे उन्होंने सम्बन्धों को प्रधानता नहीं दी। उनकी खरी और अप्रिय आलोचनाओं से असन्तुष्ट अनेक सामाजिक सत्पुरुषों ने 'सरस्वती' का बहिष्कार कर दिया परन्तु द्विवेदी जी डिगे नहीं।[3] स्वार्थी और मायावी संसार परार्थी और अमायिक द्विवेदी की सचाई का मूल्य न आँक सका। उन्होंने अपने ही लेखों—'विक्रमांकदेव-चरित-चर्चा,' 'नाट्यशास्त्र', 'व्योमविहरण' आदि—को स्थानाभाव के कारण न छापकर दूसरों की रचनाओं को उचित स्थान और सम्मान दिया।[4] 'सरस्वती' को वाद-विवाद के चमरपन से बचाने के लिए उन्होंने अपना ही लेख 'शीलनिधान जी की शालीनता' 'भारतमित्र' में छपाया।[5] यह एक सम्पादक की न्यायनिष्ठा और निष्पक्षता की पराकाष्ठा थी।

---

१. 'आत्म निवेदन', 'साहित्य-संदेश', एप्रिल १९३९ ई०, पृ० ३०४
२. 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ', पृ० ५४३
३. 'आत्म-निवेदन', 'साहित्य संदेश', एप्रिल १९३९ ई०, पृ० ३०४
४ सांवत्सरिक सिंहावलोकन 'सरस्वती', भाग ५ संख्या १२
५ काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के में रक्षित कतरनें

उस विषम काल में जब न तो साहित्य-सम्मेलन की योजनाएं थीं, न विश्व-विद्यालयों और कालेजों में हिन्दी का प्रवेश था, न रंग-बिरंगे चटकीले मासिकपत्र थे, हिन्दी के नाम पर लोग नाक भौं सिकोड़ते थे, लेख लिखने की तो बात ही दूर रही, अँगरेजीदां बाबू लोग हिन्दी में चिट्ठी लिखना भी अपमान-जनक समझते थे, जनसाधारण में शिक्षा का प्रचार नगण्य था, हिन्दी-पत्रिका 'सरस्वती' को जनता का हृदय-हार बना देना यदि असाध्य नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य था। हिन्दी के इने गिने लेखक थे और वे भी लकीर के फकीर। समाज की आकांक्षाएँ बहुमुखी थीं। इतिहास पुरातत्व, जीवन-चरित, पर्यटन, समालोचना, उपन्यास, कहानी, व्याकरण, काव्य, नाटक, कोष, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शन, विज्ञान, सामयिक प्रगति, हास्य-विनोद आदि सभी विषयों की विविध रचनाओं और तदर्थ विपन्न हिन्दी को सम्पन्न बनाने के लिए विशिष्ट कोटि के लेखकों की आवश्यकता थी। काल था गद्यभाषा खड़ीबोली के शैशव का। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा में सुरक्षित 'सरस्वती' की हस्त-लिखित प्रतियाँ इस बात की साक्षी हैं कि तत्कालीन साहित्य-कारों की तुतली भाषा व्याकरण आदि के दोषों से कितनी भ्रष्ट और भावाभिव्यंजन में कितनी असमर्थ थी।

लेखकों की कमी का यह अर्थ नहीं है कि लेखक थे ही नहीं। 'सरस्वती' के अस्वीकृत लेखों[१] से स्पष्ट सिद्ध है कि लेखकों की संख्या पर्याप्त थी। परन्तु उनकी रद्दी रचनाएँ अनभीष्ट थीं। सम्पादन-काल के आरम्भ में 'सरस्वती' को आदर्श पत्रिका बनाने के लिए द्विवेदी जी को अथक परिश्रम करना पड़ा। इस कथन की पुष्टि में १९०३ ई० की 'सरस्वती' का निम्नांकित विवरण पर्याप्त होगा—

संख्या-मूलक विवरण

'सरस्वती' की संख्या	कुल रचनाएं	अन्य लेखकों की	द्विवेदी जी की
१	११	१	१०
२।३	१५	३	१२
४	१२	२	१०
५	१२	४	८
६	१३	४	९
७	१५	४	११
८	११	३	८
९	१२	६	६
१०	१२	५	७
११	१७	६	११
१२	१३	७	६

१ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कलामवन में रक्षित

विषयमूलक विवरण

विषय	कुल रचनाएं	अन्य लेखकों की	द्विवेदी जी की
अद्भुत	१०	१	६
आख्यायिका	८	६	२
कविता	२३	१६	४
जीवनचरित (स्त्री)	८	०	८
जीवनचरित (पुरुष)	११	४	७
फुटकर	१६	३	१३
विज्ञान	१४	१	१३
साहित्य	६	४	५
व्यंग्यचित्र	१०	१	६

वर्ष भर की कुल १०६ रचनाओं में ७० रचनाएँ द्विवेदी जी की हैं। अन्य लेखकों की देन आख्यायिका, कविता, साहित्य और पुरुषों के जीवनचरित तक ही सीमित है। लेखकों की कमी ने द्विवेदी जी को अन्य नामों से भी लेख लिखने की प्रेरणा दी। सम्भवतः सम्पादक के नाम की बारम्बार आवृत्ति से बचने के लिए, अपने प्रतिपादित मत का विभिन्न लेखकों के नाम से समर्थन करने, उपाधिविभूषित अन्य प्रान्तीय या आलंकारिक नामों के द्वारा पाठकों पर अधिक प्रभाव डालने और उस लाठी-युग के लड़ैत लेखकों की भयंकर मुठभेड़ से बचने के लिए ही उन्होंने कल्पित नामों का प्रयोग किया था।

द्विवेदी जी ने कभी 'कमलाकिशोर त्रिपाठी'[1] बनकर 'समाचार पत्रों का विराट रूप'

---

१. प्रमाण:—

(क) 'समाचार पत्रों का विराट रूप' द्विवेदी जी के ही 'समाचारपत्र-सम्पादकस्तव' का गद्यानुवाद है। यदि कोई और व्यक्ति इसका लेखक होता तो द्विवेदी जी उसकी भर्त्सना अवश्य करते।

(ख) कलाभवन में रक्षित हस्तलेख में लेखक का नाम नहीं दिया गया है, द्विवेदी जी ने ही पेंसिल से कमलाकिशोर त्रिपाठी लिख दिया है। यदि कोई अन्य लेखक होता तो उसी स्याही से अपना नाम अवश्य देता। हस्त-लिखित प्रति से प्रतीत होता है कि द्विवेदी जी ने किसी नौसिखिए से अनुवाद कराकर उसका संशोधन किया है।

(ग) कमलाकिशोर त्रिपाठी नामक तत्कालीन किसी लेखक का पता नहीं चलता। द्विवेदी जी के भानजे कमलाकिशोर त्रिपाठी उस समय निरे बालक थे। द्विवेदी जी ने अपने नाम के बदले उन्हीं का नाम उठा कर रख दिया।

(घ) उस कठोर लेख को अपने नाम से सम्बद्ध करने से प्रतिद्वन्द्विता की द्वेष भावना उठ

दरबलाया तो कभी 'कल्लू अल्हैत'[1] बनकर सरगौ नरक ठकाना नाहि का आल्हा गाया कभी तो गजानन गणेश गर्वखंड[2] के नाम से 'जम्बुकी न्याय' की रचना की और कभी 'पर्यालोचक'[3] के नाम से ज्योतिषवेदांग की आलोचना की।[4] कहीं 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' दूर करने 'भारत का नौका-नयन' दिखलाने, 'बाली द्वीप में हिन्दुओं का राज्य' सिद्ध करने अथवा 'मेघदूत-रहस्य' खोलने के लिए 'भुजंग भूषण भट्टाचार्य'[5] बने, तो कहीं 'अमेरिका के अखबार', 'रामकहानी की समालोचना', 'अलबरूनी'

जित हो उठती। कल्पित नाम से द्विवेदी जी के मत की पुष्टि होती थी।

(ङ) लेख के नीचे स्वाभाविक रूप से M P.D. लिखकर काट दिया है। और उसके ऊपर कमलाकिशोर त्रिपाठी लिखा है।

१. उपर्युक्त आल्हे का 'द्विवेदी-काव्यमाला' में समावेश, 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ', पृष्ठ ५३२ आदि से प्रमाणित।

२ हस्त-लिखित प्रति में पहले गजानन गणेश गर्वखंडे का सानुप्रास नाम लेखक के रूप में दिया फिर किसी कारणवश काट दिया और कविता अपने ही नाम से छपाई-'सरस्वती' के स्वीकृत लेखों का बंडल, १९०६ ई०, कलाभवन, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा।

३ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्यालय में रक्षित बंडल २ (क) के पत्रों से प्रमाणित।

४. प्रस्तुत अवच्छेद में वर्णित रचनाओं का स्थान और काल:—

समाचार पत्रों का विराट रूप	सरस्वती १९०४ ई०, पृ० ३९७
सरगौ नरक ठेकना नाहि	१९०६ ई०, पृ० ३८
जम्बुकी न्याय ...	,, ,, पृ० २१७
ज्योतिष वेदांग ...	१९०७ ई०, पृ० २०, १८६
कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता ...	१९०८ ई०, पृ० ३१३
भारत का नौकानयन ...	१९०९ ई०, पृ० ३०५
बाली द्वीप में हिन्दुओं का राज्य ...	१९११ ई०, पृ० २१९
मेघदूत-रहस्य ...	,, ,, पृ० ३६५
अमेरिका के अखबार ...	१९०९ ई०, पृ० १२४
राम कहानी की समालोचना ...	,, ,, पृ० ४५०
अलबरूनी ...	१९११ ई०, पृ० २४२
भारतवर्ष का चलन बाजार सिक्का ...	१९१२ ई०, पृ० ६०९
मस्तिष्क	१९०९ ई०, पृ० २२१
स्त्रियों के विषय में अत्यल्प निवेदन ...	१९१३ ई०, पृ० ३८४
शब्दों के रूपान्तर ...	१९१४ ई०, पृ० ४८३

५. प्रमाण:—

(क) इनके लेख में दूसरे के लेखों जैसा कोई संशोधन नहीं है

(ख) लिखावट में सन्देह द्विवेदी जी की है

'और भारत का चलन बाज़ार सिक्का' आदि लेखों के प्रकाशनार्थ श्री कंठ पाठक एम० ए०[1] की उपाधि-मंडित संज्ञा अपनाई। 'मस्तिष्क' की विचारणा के लिए तो लोचन प्रसाद पांडेय[2] बन गए। एक बार 'स्त्रियों के विषय में अत्यल्प निवेदन' करने के लिए 'कस्यचित् कान्यकुब्जस्य'[3] पंडिताऊ जामा पहना तो दूसरी बार शब्दों के रूपान्तर की विवेचना करने के लिए 'नियम नारायण शर्मा'[4] का सैनिक वेष धारण किया।

पाठकों की बहुमुखी आकांक्षाओं की पूर्ति अकेले द्विवेदी जी के मान की न थी। आवश्यकता थी विविध विषयों के विशेषज्ञ लेखकों की जो 'सरस्वती' की हीनता दूर कर सकते। पारखी और दूरदर्शी द्विवेदी जी ने होनहार लेखकों पर दृष्टि दौड़ाई। उन्होंने हिन्दी-प्रान्तों और भारतवर्ष में ही नहीं योरप और अमेरिका में भी हिन्दी-लेखकों को ढूंढा। सत्यदेव, भोलादत्त पांडे, पाडुरंग खानखोजे और रामकुमार खेमका अमेरिका से; सुन्दरलाल, सन्त निहाल सिंह, जगद्विहारी सेठ और कृष्णकुमार माथुर इंगलैंड से; प्रेम नारायण शर्मा, और वीरसेन सिंह दक्षिणी अमेरीका से तथा बेनीप्रसाद शुक्ल फ्रांस से लेख भेजते थे।[5] कामता प्रसाद गुरु, रामचन्द्र शुक्ल, केशव प्रसाद मिश्र, मैथिली शरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह, लक्ष्मीधर वाजपेयी, गंगानाथ झा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवीदत्त शुक्ल, बाबूराव विष्णु पराडकर, रूप नारायण पांडेय, विश्म्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' आदि की चर्चा यथास्थान की गई है।

(ग) नीचे द्विवेदी जी के ही अक्षरों में भुजंग भूषण भट्टाचार्य लिखा गया है

(घ) इसकी बहुत कुछ पुष्टि 'रसज्ञ-रंजन' की भूमिका से हो जाती है, यद्यपि उसी में आए हुए 'विद्यानाथ' कामता प्रसाद गुरु हैं।

१. 'राम कहानी की समालोचना' की लिखावट आद्योपान्त द्विवेदी जी की है। नीचे द्विवेदी जी के अक्षरों में श्री कंठ पाठक और फिर उसके नीचे श्री कंठ पाठक एम० ए० लिखा गया है।

२ मूल रचना की लिखावट सर्वांश में द्विवेदी जी की है।

३. प्रमाण: (क) हस्त लिखित प्रति किसी और की लिखी हुई है परन्तु कहीं संशोधन नहीं है। जान पड़ता है कि द्विवेदी जी के वचन का अनुलेख है।

(ख) नीचे स्याही से द्विवेदी जी के हस्ताक्षर हैं और फिर काटकर पेंसिल से 'कस्यचित् कान्यकुब्जस्य' कर दिया गया है।

४ प्रमाण: (क) लिखावट द्विवेदी जी की है।

(ख) हाशिये पर आदेश किया है— पं० सुन्दरलाल जी, कृपा करके इस लेख को ध्यान से पढ़ लीजिएगा। निन्दा से 'सरस्वती' को बचाइएगा।

५ 'सरस्वती' की विषय-सूची में इन लेखकों के नाम के सामने कोष्ठक में इनके स्थान का भी किया गया है

द्विवेदी जी के स्वास्थ्य की हानि का प्रधान कारण आप महान् साहित्यकार कहलाने वाले लेखकों का अशुद्धिभरी रचनाओं का आद्योपान्त संशोधन ही था। लेखकों से पत्र व्यवहार, प्रूफसंशोधन और पर्यवेक्षण के अनन्तर अन्य लेखकों की रचनाओं को काट-छाँटकर सुधारने का भगीरथ प्रयत्न[1] और उस पर भी अनेक उपयोगी और आवश्यक लेखों की स्वयं लिख कर माँगने की प्रत्येक संख्या निश्चित समय पर प्रस्तुत करना द्विवेदी जी-जैसे अध्यवसायी मनीषी के ही काम था। दुस्साध्य संशोधन-कार्य के क्रम में कभी उन्हें आक्रान्त कर देता था। सन्यशरण रतूड़ी की 'शरत्-स्वागत' कविता का कायाकल्प करते हुए उन्होंने हाशिये पर अंग्रेजी में आक्षेप किया—

"नोट—ये कवि मेरे लिए घोर दुःख के कारण हैं।"[2] निस्सन्देह कोट की सीमा हो जाने पर ही द्विवेदी जी ने ऐसा लिखा होगा। इस अनन्त परिश्रम से परिजित होकर एक बार उन्होंने गिरिधर शर्मा की 'अशुमती' कविता को मैथिली शरण गुप्त के पास संशोधनार्थ भेजते हुए उसके हाशिए पर आदेश किया—

मैथिलीशरण जी,

दया कीजिए, हमारी जान बचाइए। इन दोनों कविताओं को ज़रा ध्यान से अपनी तरह देख जाइए। फिर उचित संशोधन करके ४-५ दिन में यथा संभव शीघ्र ही लौटा दीजिए। कई जगह शब्दस्थापना का क्रम ठीक नहीं। पढ़ने नहीं बनता।

म० प्र० द्विवेदी १२, ६, १३।[3]

'सरस्वती'-सम्पादन के कठोर यज्ञ में द्विवेदी जी ने अपने स्वास्थ्य का बलिदान कर दिया। १९१० ई० में उन्हें पूरे वर्ष भर की छुट्टी लेनी पड़ी। तत्पश्चात् इस वर्ष की कष्टकरी साधना के कारण उनका शरीर जर्जर हो गया और उन्हें विवश होकर 'सरस्वती' सेवा से विश्राम ग्रहण करना पड़ा।

लेखकों के प्रति द्विवेदी जी का व्यवहार विशेष उल्लेखनीय था। जब कोई रचना उनके पास पहुँचती तो वे तत्काल उसे देखते, शीघ्र ही उसकी पहुँच, छपने या न छपने का निर्णय भी भेज देते। अस्वीकृत रचना लौटाते समय लेखक के आश्वासन के लिए कोई न कोई वाक्य अवश्य लिख देते थे जिससे वह आशंकित या हतोत्साह न होकर गद्गद हो जाता

---

१. द्विवेदी जी के संशोधन-कार्य की गुरुता का न्यूनाधिक दिग्दर्शन परिशिष्ट संख्या ३ में उद्धृत संशोधित रचना से हो जायगा।

२ 'सरस्वती' के स्वीकृत लेख, बंडल १९०५ ई० कला-भवन, ना० प्र० सभा, काशी।

३ सरस्वती' के स्वीकृत लेख, बंडल १९१३ ई० का ना० प्र० सभा, कला-भवन।

था। दिसम्बर १९१३ ई० में कक्षाप्रसाद मिश्र की 'सुदामा' शीर्षक लम्बी तुकान्त-हीन उनके दोषों का निर्देश और उन्हें दूर कर कहीं अन्यत्र छपा लेने का आदेश किया।[1] मैथिलीशरण गुप्त की भी पहली कविता 'शरद' अस्वीकृत हुई, परन्तु दूसरी कविता 'हेमन्त' को उचित संशोधन और परिवर्धन के साथ 'सरस्वती' में स्थान मिला।[2] उनका यह व्यवहार सभी लेखकों के प्रति था। वे रचनाओं में आमूल परिवर्तन करते, शीर्षक तक बदल देते थे। अप्रत्याशित संशोधनों के कारण मिथ्याभिमानी असंतुष्ट लेखक डाँटकर पत्र लिखते और द्विवेदी जी अत्यन्त विनम्र शब्दों में क्षमा माँगते, उन्हें समझाते-बुझाते थे।[3]

उनके संपादकीय शिष्टाचार और स्नेहपूर्ण व्यवहार में लेखकों के प्रति शालीनता, नम्रता और खुशामद की सीमा हो जाती। यह संपादक द्विवेदी का गौरव था। सच्ची लगन, विस्तृत अध्ययन, सुन्दर शैली और सज्जनोचित संकोच वाले लेखकों का उपहास न करके वे उन्हें उत्साहित करते और गुरुवत् स्नेह तथा सहानुभूति से उनके दोषों को समझाते थे। जिस लेखक को लिखना आ जाता उसे 'सरस्वती' निःशुल्क भेजते और योग्यतानुसार पुरस्कार भी देते थे। लक्ष्मीधर वाजपेयी के 'नाना फड़नवीस' नामक विस्तृत लेख को अत्यन्त परिश्रम से काटछाँट कर आठ पृष्ठों में छापा और सोलह रुपया पुरस्कार भी भेज दिया।[4] आदर्श संपादक द्विवेदी जी अपने लघु लेखकों पर भी कृपा रखते थे।

द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' को व्यक्ति-विशेष या वर्ग-विशेष को संतुष्ट करने का साधन नहीं बनाया। उन्होंने ग्राहक-समुदाय को स्वामी, और अपने को सेवक समझा। 'सरस्वती' का उद्देश्य था अपने समस्त पाठकों को प्रसन्न तथा लाभान्वित करना। द्विवेदी जी ने ज्ञानवर्धक और मनोरंजक रचनाओं का कभी तिरस्कार नहीं किया। कितने ही यश और धन के लोलुप स्वार्थान्ध महानुभाव अपनी या अपने स्वामियों की असुन्दर, अनुपयोगी और नीरस रचनाएँ चित्र एवं जीवनचरित छपाने की अनधिकार चेष्टा करते थे। किसी की भाषा इतनी लचर, क्लिष्ट और दूषित होती थी कि उसका संशोधन ही असम्भव होता था। कठोर कर्त्तव्य द्विवेदी जी को उनका तिरस्कार करने के लिए बाध्य करता था। ये महानुभाव अस्वीकृत रचनाओं को वापस मँगाने के लिए टिकट तक न भेजते, महीनों बाद उनकी खोज लेते और धमकियाँ तथा कुत्सापूर्ण उलाहने भेजकर अपना एवं सम्पादक का समय व्यर्थ नष्ट करते थे।[5] द्विवेदी जी व्यक्तिगत पत्र या सांवत्सरिक सिंहावलोकन',

१ 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० १८६.
२. 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० १९८
३. 'सरस्वती', भाग ४० सं० २, पृ० १४६; 'द्वि. मी.' ५२-५३,
४ सरस्वती', भाग ४० सं० २ पृ १३६
५ लेखकों से प्रार्थना सरस्वती भा १६ खं २ सं ३ के आधार पर

लेखकों से प्रार्थना, लेखकों का कर्त्तव्य[1] आदि लेखों द्वारा लेखकों को चेतावनी दे दिया करते थे इतने पर भी जो 'सरस्वती' के लक्ष्य और मान के अनुपयुक्त रचनाएं भेजता वह अवश्य ही तिरस्कार का पात्र था। लेखकों के प्रति उनके सहृदयतापूर्ण व्यवहार का प्रमाण उन्हीं के शब्दों में लीजिए—

"नरदेव शास्त्री—आप ऐसे ऐसे रद्दी लेखों का स्वागत करते हैं, यह क्या बात है? द्विवेदी जी—(सस्मित) द्वार पर आने वालों का स्वागत करना परमधर्म है और जिन महानुभावों को बार बार लिख कर लेख मँगाया जाता है, उनका तो आदर आवश्यक ही है।"[2]

द्विवेदी जी ने अपने व्यक्तित्व, वाणी और संशोधन की कठिन तपस्या द्वारा अनेक लेखकों और कवियों को 'सरस्वती' का भक्त बनाया। कितने ही लेखक 'सरस्वती' की सुन्दरता, लोकप्रियता, ईदृक्ता और इयत्ता से आकृष्ट होकर स्वयं आए।

द्विवेदी जी के संपादन-काल के पूर्व अनेक हिन्दी-पत्रिकाओं ने अपने को विविध-विषयों की मासिक-पुस्तक घोषित किया,[3] परन्तु उनकी वाणी कभी भी कर्म का रूप न धारण

---

१. समय समय पर 'सरस्वती' में प्रकाशित

२. 'हंस', 'अभिनन्दनांक', एप्रिल, १९३३ ई०

३ (क) अपने को 'विद्या, विज्ञान, साहित्य, दृश्य, श्रव्य और गद्य, पद्य, महाकाव्य, राजकाज समाज और देश दशा पर लेख, इतिहास, परिहास, समालोचनादि विविध विषय वारि बिन्दु भरित बलाहकावली" (माला ४, मेघ १, १९०२ ई०) समझने वाली 'आनंद-कादंबिनी' की माला चार, मेघ ८-९ की विषय-सूची इस प्रकार थी—

१. संपादकीय सम्मति समीर, नवीन सम्वत्सर, उदारता का पुरस्कार, स्वामी रामतीर्थ, हर्ष, यथार्थ प्रजाहित, शोक!!! चैतन्यमय जगत।
२. प्राप्ति स्वीकार वा समालोचना सीकर
३. साहित्य सौदामिनी—लक्ष्मी।
४. काव्यामृत वर्षा— आनंद बधाई, दिल्ली दरबार मित्र मंडली के यार।
५. निवेदन और सूचना।

(ख) 'हिन्दी-प्रदीप' की घोषणा थी—"विद्यानाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राज-सम्बन्धी इत्यादि के विषय में हर महीने की पहली को छपता है।" (जिल्द २५, संख्या १-२, जनवरी-फरवरी, १९०३ ई०) और विषय थे:—

१. हमारा पच्चीसवां वर्ष
२. ढोल के भीतर पोल
३. काल चक्र का चक्कर
४. दोहों बसंत सारा

कर सकी। द्विवेदी-सम्पादित सरस्वती ने हिन्दी मासिक पत्र के इस कलंक को दूर किया अद्भुत और विचित्र विषयों के आकर्षण व आख्यायिकाओं की सरसता, आध्यात्मिक विषयों की ज्ञान-सामग्री, ऐतिहासिक विषयों की राष्ट्रीयता, कविताओं की मनोहरता और कातार्संमित उपदेशों, जीवनियों के आदर्श चरित्रों, भौगोलिक विषयों में समाविष्ट देश-विदेश की ज्ञातव्य और मनोरंजक बातों, वैज्ञानिक विषयों में वर्णित विज्ञान के आविष्कारों और उनके महत्व की कथाओं, शिक्षा-विषयों के अन्तर्गत देश की अवनत और विदेशों की उन्नत शिक्षा की समीक्षा, शिल्पादि-विषयक लेखों में भारत तथा अन्य देशों की कारीगरी के निदर्शन, साहित्य-विषयों में साहित्य के सिद्धान्तों, रचनाओं और रचनाकारों की समालोचनाओं, फुटकर विषयों में विविध प्रकार की व्यापक बातों की चर्चा विनोद और आख्यायिका, हँसी-दिल्लगी एवं मनोरंजक श्लोकों की मनोरंजकता, चित्रों के उदाहरण और कला, व्यंग्यचित्रों में हिन्दी-साहित्य की कुछ दुरवस्था के निरूपण आदि ने 'सरस्वती' को सर्वांगसुन्दर बना दिया।

द्विवेदी जी की संपादन-कला की सर्व-प्रधान विशेषता थी 'सरस्वती' की विविध-विषयक सामग्री की समंजस योजना। फलक था, तूलिका थी, रंग थे, परन्तु चित्र न था। प्रतिभाशाली चित्रकार ने उनके कलात्मक समन्वय द्वारा सर्वांगपूर्ण चित्ताकर्षक चित्र अंकित कर दिया। ईंट-पत्थर, लोहे-लक्कड़ और चूने-गारे के रूप में विविध-विषयक रचनाओं का ढेर लगा हुआ था। शिल्पी द्विवेदी जी ने उनके सुपमित उपस्थापन द्वारा 'सरस्वती' के भव्य मन्दिर का निर्माण किया। "आचार्य द्विवेदी जी के समय की सरस्वती का कोई अंक निकाल देखिए, मालूम होगा कि प्रत्येक लेख, कविता और नोट का स्थान पहले निश्चित कर लिया गया था। बाद में वे उसी क्रम से मुद्रक के पास भेजे गए। एक भी लेख ऐसा न मिलेगा जो बीच में डाल दिया गया सा मालूम हो। संपादक की यह कला बहुत ही कठिन है और एकाध को ही सिद्ध होती है। द्विवेदी जी को सिद्ध हुई थी और इसी से सरस्वती का प्रत्येक अंक अपने रचयिता के व्यक्तित्व की घोषणा अपने अंग प्रत्यंग के सामंजस्य से देता है। मैंने अन्य भाषाओं के मासिकों में भी यह विशेषता बहुत कम पायी है और विशेष कर इसी के लिए मैं स्वर्गवासी पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी को

---

५. सभ्यता-पिशाची सर्वनाशकारी हुई
६. परमोत्तम तीर्थ
७. धुन
८. समालोचना
९. युक्तियुक्त

अन्य पारिभाषिकों के लिए उदाहरण दिए जा सकते हैं

संपादकाचार्य मानता और उनको पुण्य स्मृति में यह श्रद्धांजलि अर्पण करता हूं "[1]

'सरस्वती' के प्रकाशन के बाद भी अन्य हिन्दी-पत्रिकाओं का मान ऊँचा न हुआ। 'छत्तीसगढ़ मित्र',[2] 'इन्दु',[3] 'समालोचक'[4], 'लक्ष्मी'[5] 'विद्याविनोद'[6] आदि अधिकांश पत्रिकाओं में संपादकीय टिप्पणियों का खंड था ही नहीं। जिनमें था भी उनमें अत्यन्त गिरी दशा में। 'हिन्दी प्रदीप'[7] की विषय-सूची में कभी कभी संपादकीय टिप्पणियां-जैसे खंड का उल्लेख ही नहीं मिलता। उनकी पचीसवीं जिल्द की संख्या ५-६-७ के लघु लेख[8] सम्भवतः विविध वार्ता के रूप में लिखे गए हैं। 'आनन्द कादम्बिनी' का 'संपादकीय सम्मति समीर' अपेक्षाकृत अधिक व्यापक था।[9] 'भारतेन्दु' के खंड १, संख्या १, अगस्त १९०५ ई० के 'संपादकीय टिप्पणियां' खंड के अन्तर्गत केवल तीन लघुलेखों (भूमिका, 'दाढ़ी की नाप' और 'धड़कन') का समावेश किया गया है।

एक बार 'भारती' पत्रिका की आलोचना करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा था--'इसके विविध विषय वाले स्तंभ की बातें बहुत ही सामान्य होती हैं। उदाहरणार्थ 'एक चोर की जेल में मृत्यु' का हाल आवे कालम में छपा है। मतलब यह कि संपादक महाशय ने नोटों और लेखों को उनकी उपयोगिता का विचार किए बिना ही प्रकाशित कर दिया है।'[10]

द्विवेदी जी ने इस प्रकार की कोरी आलोचना ही नहीं की वरन् हिन्दी-संपादकों के समक्ष आदर्श भी उपस्थित किया। उनके विविध विषय समाचार-मात्र नहीं होते थे। उनकी टिप्पणियों का उद्देश्य था 'सरस्वती' के पाठकों की बुद्धि का विकास करना। पाठकों के

---

१. बाबू राव विष्णु पराड़कर, 'साहित्य संदेश', भा० २, सं० ८, पृ० ३१२,

२. वर्ष ३ रा, अंक १ ला.

३. कला १, किरण १, स० १९६६। इसमें प्रकाशित 'मनोरंजक बातें' और 'समाचार' स्तम्भ सम्पादकीय टिप्पणियों की अभावपूर्ति नहीं करते।

४. अगस्त, १९०२ ई०

५. भाग ५, अंक ५.। इसका भी 'समाचार' स्तम्भ सम्पादकीय विविध-वार्ता की रिक्तता का पूरक नहीं हो सकता।

६. नवम भाग, १९०२-३ ई०

७. जिल्द १५, संख्या १-२, जनवरी-फरवरी, १९०३ ई०

८. सभ्यता पिशाची सर्वनाशकारी हुई, परमोत्तम तीर्थ और धुन
प्रजा हित शोक चैतन्य जगत।

९ 'सरस्वती', भाग ६ सं ७ पृ ३७२

लाभार्थ उनमें साधारण अध्ययन की सामग्री भी रहती थी। वे प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, विज्ञान, भूगोल, धर्म, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, पत्र-पत्रिकाओं के सामयिक प्रसंग, हिन्दी भाषा और उसके भाषियों की आवश्यकताएँ, महान् गुरुषों के जीवन की रोचक और महत्वपूर्ण घटनाएँ, देश-विदेश के ज्ञातव्य समाचार, गवर्नमेंट आदि में प्रकाशित सरकारी मन्तव्य आदि विषयों का एक निश्चित दृष्टि से, अपनी शैली में, समीक्षात्मक उपस्थापन करते थे। कभी कभी तो रिपोर्ट और पुस्तकें उन्हें अपने मूल्य से मँगानी पड़ती थीं।[1]

उनकी संपादकीय टिप्पणियों की भाषा सरल और सुबोध है। कहीं परिचयमात्र कहीं परिचयात्मक समीक्षा, कहीं गभीर सक्षिप्त विवेचन और कहीं व्यंग्यपूर्ण तीव्र आलोचना है। आवश्यकतानुसार चार्ट आदि भी हैं। अनुवाद की दशा में मूल रचना या रचनाकार का नामोल्लेख भी है। द्विवेदी-संपादित 'सरस्वती' की परिचयात्मक सामग्री निस्सन्देह अनुपम है। प्रतिमान, अंगरेजी, बँगला, मराठी, गुजराती, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत की पत्र-पत्रिकाओं से संकलित सामग्री उनके उत्कट अध्ययन और असाधारण चयनशक्ति की द्योतक है। यद्यपि उनके अधिकांश नोट दूसरों के व्याख्यानों और लेखों पर आधारित हैं तथापि उनकी अभिव्यंजना-शैली अपनी है। उनमें प्रभावोत्पादक व्यंग्य और मनोरंजक तात्विक विवेचन हैं। वे सचमुच साधारण ज्ञान के भाण्डार हैं।

किसी भी वस्तु की सुन्दरता या असुन्दरता, महत्ता या लघुता, गुण या दोष सभी सापेक्ष हैं। द्विवेदी जी द्वारा दिए गए 'पुस्तकपरिचय' की श्रेष्ठता का वास्तविक ज्ञान तत्कालीन अन्य हिन्दी-पत्रिकाओं की तुलना से ही हो सकता है।

'छत्तीसगढ़मित्र' के 'पुस्तक-प्राप्ति और अभिप्राय' खंड के अन्तर्गत दो पुस्तकों का परिचय इस प्रकार दिया गया है:—

"(१४) धारावरधावन, प्रथम और द्वितीय भाग, तथा (१५) साहित्यहत्या, श्रीयुत राय देवी प्रसाद पूर्ण बी० ए० वकील कानपुर, द्वारा समालोचनार्थ प्राप्त। अवकाश पाते ही समालोचना की जायेगी।"[2]

यह है तत्कालीन हिन्दी-संपादकों की पुस्तक-परीक्षा का एक उदाहरण। द्विवेदी जी ने संपादक के कर्तव्य की कमी भी हत्या नहीं की। उन्होंने जिन पुस्तकों को विशेष महत्वपूर्ण

---

१ 'सरस्वती' भाग १४ पृ० ४१५

२ वर्ष ३ अंक ५ पृ० १३७

समझा उनकी यथार्थ समीक्षा[1] की, जो उत्तम जचीं उनकी प्रशंसा के पुल बाँध दिए,[2] जिन्हें दूषित या निकृष्ट समझा उनकी तीव्र एवं प्रतिकूल आलोचना की[3] और जो पुस्तकें मूल्य हीन, घोर शृंगारिक या अनुपयोगी प्रतीत हुईं उनका नाम और पता मात्र देकर ही रह गए।[4]

उन्होंने 'मार्डर्न रिव्यू' की भाँति भाषाओं के नामानुसार शीर्षक देकर प्रतिमास नियमित रूप से विविध भाषाओं की पुस्तकों की परीक्षा नहीं की। हाँ, पाठकों के लाभ का ध्यान रखकर हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अँगरेजी, मराठी, गुजराती, बँगला, मारवाड़ी आदि भाषाओं एवं साहित्य, धर्म, समाजशास्त्र, राजनीति, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, दर्शन कामशास्त्र, यात्रादि, स्थानादि, आयुर्वेद, शिल्प, वाणिज्य, कला आदि विषयों की रचनाओं, मासिक, साप्ताहिक, दैनिक आदि पत्रों, सभापतियों के भाषण, शिक्षा-संस्थाओं की पाठ्यपुस्तकों आदि पर वे टिप्पणियाँ प्रकाशित करते थे।

आलोचनार्थ पुस्तक भेजने वालों में सच्चे गुण-दोष-विवेचन के इच्छुक बहुत कम थे। अधिकांश लोग समालोचना के रूप में पुस्तक का विज्ञापन प्रकाशित कराकर आर्थिक लाभ अथवा उसकी प्रशंसा प्रकाशित कराकर अपनी यशोवृद्धि करना चाहते थे। प्रतिकूल समीक्षा होने पर असन्तुष्ट लोग कभी अपने नाम से, कभी बनावटी नाम से, कभी अपने मित्रों, मिलने वालों या पार्षदों से प्रतिकूल समीक्षा के एक एक शब्द का प्रतिवाद उपस्थित करते या कराते थे। कुछ लोग तो पुस्तक की भूमिका में ही यह लिखा देते थे कि कटु आलोचना से लेखक का उत्साह भंग हो जायगा।[5] द्विवेदी जी ने जिस पुस्तक को ज्ञान, कला और उपयोगिता की कसौटी पर जैसा पाया, उसकी वैसी आलोचना की। रचनाकार की साहित्यिक गुरुता या लघुता का ध्यान न करके न्यायपूर्वक आलोचक की कैंची चलाई। किसी की अप्रसन्नता और प्रतिशोधभावना की उन्होंने रत्तीभर भी परवाह न की।

मानव-मस्तिष्क भाव की अपेक्षा रूप से अधिक प्रभावित होता है। इसीलिए शिक्षा पद्धति में चित्रों का स्थान बहुत ऊँचा है। द्विवेदी जी ने पाठकों के बौद्धिक और हार्दिक विकास के लिए सादे और रंगीन चित्रों से 'सरस्वती' को अलंकृत किया। चित्रों के विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

---

१ 'चन्द्रगुप्त' की परीक्षा— 'सरस्वती' भाग १४, पृ० २४३

२. 'भारत-भारती'—'सरस्वती', अगस्त १९१४ ई०,

३ 'भाषापद्य व्याकरण'—'सरस्वती', अगस्त १९१६ ई०

४ प्रायः प्रत्येक अंक में इसके उदाहरण प्राप्य हैं।

५ [illegible] का सत्कार' 'सरस्वती', १९१७ ई० पृ० २२७ के आधार पर

[illegible]

३ धार्मिक चित्र—देवी देवताओं, पौराणिक आख्यानों तथा हिन्दू-त्योहारों के आधार पर

४ सामाजिक

५ ऐतिहासिक—पुरुष, इमारतें आदि

६ दार्शनिक

७ साहित्यिक

८ प्रकीर्ण—कोई भी सुन्दर वस्तु

आदि

१ लेखों के उदाहरण के रूप में

२ लेखकों के चित्र

३ महान् व्यक्तियों के चित्र (साहित्यिक, पदाधिकारी, राजा आदि)

चित्रों की प्राप्ति में कठिनाई होने के कारण एक चित्रकार की नियुक्ति कर दी गई थी। 'माडर्न रिव्यू' और 'प्रवासी' के फ़ोटो-इंग्रेविंग प्रेस में छपाने से 'सरस्वती' को ब्लाक आदि की सुविधा थी। पत्रिकाओं को सचित्र छापने की ओर द्विवेदी जी का विशेष ध्यान था। चित्रों के विषय में वे पूरी जानकारी रखते थे। 'सरस्वती' में वही चित्र छपते थे जो सुन्दरतापूर्वक छप सकते थे। असुन्दर या त्रुटिपूर्ण चित्रों को छापने की अपेक्षा न छापना ही उन्हें अधिक श्रेयस्कर समझ पड़ता था।

---

१. (क) कामता प्रसाद गुरु की 'शिवा जी' कविता को सचित्र करने के लिए लिखा—"मई १९०७ ई० के माडर्न रिव्यू के ४३८ पृष्ठ पर जो चित्र शिवाजी का है वह इसके साथ छापिए। म. प्र.।"

'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियाँ, १९०७ ई०, कलाभवन, ना. प्र. सभा।

(ख) लक्ष्मीधर वाजपेयी के 'नानाफडनवीस' निबंध के हाशिए पर आदेश किया था—"इसके साथ की चित्र छापिए। नानाफडनवीस का और राघोबा दादा पेशवा का। पहला चित्र हम बाबू को दे आये हैं दूसरा चित्र चित्रशाला प्रेस, पूना से मँगा लीजिए। म. प्र. ३०, ७, १९०८ ई०"

'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियाँ, १९०८ ई०, कलाभवन, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

२ [illegible] की गत संख्या में शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री विजय धर्मसूरि का चित्र नहीं छपा। [illegible] खेद हुआ कि [illegible] अज्ञान वश [illegible] खराब

चित्रों के चयन और प्रकाशन में द्विवेदी जी ने उनकी कला मनोरंजकता और उपादेयता का सदा ध्यान रखा। उन्हीं व्यक्तियों के चित्रों को स्थान दिया जिनका संसार ऋणी है। किसी के प्रलोभन में पड़ कर महत्वहीन व्यक्तियों के चित्र छापना पत्रिका के मालिकों और पाठकों के प्रति अन्याय समझा। 'सरस्वती' के अधिकांश रंगीन चित्र बाबू रविवर्मा और रामेश्वर प्रसाद वर्मा द्वारा अंकित हैं।

भाव-ग्रहण में सहायक चित्रों को 'सरस्वती' के सामान्य पाठक भी सहज ही समझ सकते थे, किन्तु कलात्मक चित्रों के उच्च भावों का भावन जनसाधारण की समझ के बाहर था। उनकी भावानुभूति कराने के लिए 'चित्र-दर्शन' या 'चित्र-परिचय' खंड की आवश्यकता हुई। चित्र और चित्र-परिचय एकत्र न होने से पन्ना उलट कर देखने में पाठकों को कष्ट तो अवश्य होता रहा होगा परन्तु यह प्रणाली उनकी स्वतंत्र विचारक शक्ति को विकसित करने में विशेष सहायक थी।

शैली की दृष्टि से द्विवेदी जी के चित्र-परिचय के चार वर्ग किए जा सकते हैं। अधिक शृंगारिक एवं स्पष्ट चित्रों के परिचय में उनके नाममात्र का उल्लेख;[1] कलात्मक चित्रों और उनके रचयिताओं का विशेष परिचय और अधिक सुन्दर होने पर उनकी प्रशंसात्मक आलोचना;[2] अत्यन्त भावपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक चित्रों का काव्यात्मक निर्देशन[3] और यदाकदा ऐतिहासिक आदि चित्रों की तुलनात्मक विवेचना[4] भी है।

संपादन के पूर्व भी द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' को एक नवीन अलंकार से अलंकृत किया था और वह था व्यंग्य-चित्र। हिन्दी-पत्रिका-जगत् के लिए वह एक अद्भुत चमत्कार था। 'साहित्य-समाचार' के चार व्यंग्य-चित्र[5] १९०२ ई० की 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हो चुके थे, परन्तु उनका प्रकाशन अनियमित था। १९०३ ई० में संपादक द्विवेदी ने उसे नियमित कर

छपा। और ऐसा चित्र छापने से न छापना ही अच्छा समझा गया।'
सरस्वती १२। ७। ३५२

१. उदाहरणार्थ 'तरोई'—'सरस्वती', भा. १८, खंड १, संख्या २ आदि
२. ,, 'आतिथ्य'—सरस्वती, जुलाई १९१८ ई०; 'कृष्ण-यशोदा'—'सरस्वती', जनवरी, १९१६ ई० आदि
३. ,, 'वियोगिनी'—'सरस्वती', दिसम्बर, १९१५ ई० आदि,
४. ,, 'प्राचीन तक्षण कला के नमूने'—'सरस्वती', मार्च १९१९ ई०, आदि
५. 'हिन्दी-साहित्य'.....पृष्ठ ३५.
'प्रवीन कविता'..... ९९.
'प्राचीन कविता' का अर्वाचीन अवतार'.....पृष्ठ १००

दिया सरस्वती की प्रत्येक संख्या में एक व्यंग्य चित्र छपने लगा यद्यपि उनके प्रकाशन का एकमात्र उद्देश था मनोरंजक ढंग से हिन्दी-साहित्य की सामयिक अवस्था का दिग्दर्शन कराना, तथापि उस कल्याणमूलक तीव्र व्यंग्य से अभिभूत हिन्दी-हितैषियों को असह्य मनोवेदना हुई। उन्होंने द्विवेदी जी को पत्र लिख कर उन चित्रों का प्रकाशन रोकने का आग्रह किया।[1]

द्विवेदी-सरीखे निष्पक्ष हिन्दी-सेवी, निर्भय समालोचक और पाठक-शुभचिन्तक कर्तव्यपरायण सम्पादक ने, कुछ ही लोगों को तुष्ट करने के लिए, अपनी दयाशीलता के कारण, पहले ही वर्ष के अन्त तक उन व्यंग्य-चित्रों का प्रकाशन बन्द करके अपने गौरव को घटा दिया।

उन व्यंग्य-चित्रों की कल्पना और योजना द्विवेदी जी की अपनी ही है परन्तु उनके चित्रकार वे स्वयं नहीं हैं। वे चित्रों की रूप-रेखा तैयार करके भेज दिया करते थे और चित्रकार उन्हें निर्दिष्ट रूप से निर्मित कर दिया करता था। इस कथन के समर्थन के लिए 'सरस्वती' की हस्त-लिखित प्रति[2] का एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

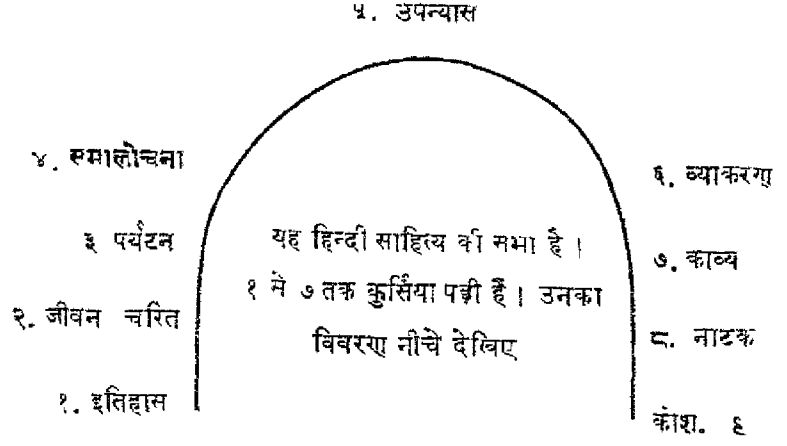

नीचे सरस्वती खड़े खड़े और सभा की ओर देख देख रो रही है।

१. ग्वाली
२. ग्वाली

३. एक खूबसूरत लड़का, वय कोई १० वर्ष, इसी प्रान्त का रहने वाला, पायजामा,

---

१ 'सांवत्सरिक सिंहावलोकन' (भा ४ सं० १२) के आधार पर

२ सरस्वती की प्रतिया १४०३ ई० नागरी प्रचारिणी सभा काशी

अश्रुधारा	अश्रुधारा	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	१९ ६
लय	लिए	"	"	२	
समाधी	समाधि	"	"	६	"
म र	मन्दिर	"	"	१	
नगनी	नगिनी	"	"	३	
चक्षुओं	चक्षुओं	"	"	३	
मानते	मानते	"	"	४	
लड़कीया	लड़किया	"	"	५	
अक्रिया	अक्रिया	"	"	५	
न ज्ञान	नौजवान	"	"	५	
गयी	गई	"	"	६	
कहानीयाँ	कहानियाँ	"	"	७	
पेहले	पहले	"	"	७	"
चाय	चाहिए	"	"	७	"
बलादान	बलिदान	"	"	७	
हृष	हृष	"	"	८	
द्रष्टी	दृष्टि	"	"	९	"
रीती	रीति	"	"	१२	
मेहदी	मेहदी	"	"	१३	"
वायू	वायु	"	"	१४	
प न	पत्नी	"	"	१५	

गंधारी	गान्धारी	पूर्णसिंह	कन्यादान	१६	१६०६
नक	नरक	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	८	१६११
दखिय	देखिए	,,	,,	८	
युवति	युवती	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	६	,,
ध णि	धरणी	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	२	
जरूरी	जरूरी	,,	,,	२	
बन्न	बनने	,,	,,	५	,,
हिन्दु	हिन्दू	गिरजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन शास्त्र	११	
पायी जाती	पाई जाती	कामताप्रसाद गुरु	हिन्दी का व्याकरण	१०	
इसलिये	इसलिए	,,	,,	१०	
च हिये	चाहिए	,,	,,	११	
पहिले	पहले	,,	,,	११	
हृदय	हृदय	रामचरित उपाध्याय	पवनदूत		१६०६
उपर	ऊपर	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग		१६११
उतपत्ति	उत्पत्ति	,,	,,		
पशू	पशु	,,	,,		
गेरुए	गेरुये	पूर्णसिंह	मजदूरी और प्रेम		
निमाज	नमाज	,,	,,		

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]		१६०४
सक्ती	सकती	सत्यदेव	राजनीति विज्ञान		१६०६
करं	करनं	गोविन्दबल्लभ पत	कृषि सुधार	५	१६०६
चर्णा	चरणा	पूर्णसिंह	कन्यादान	३	१६०६

व्यंजन-गत लेखन-त्रुटियों का संशोधन

भूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन
बसना	बरसाना	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	५	१६०६
सकारी	सरकारी	,,	,,	५	
चालस	चार्ल्स	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डीदल	३	
झूठा	झूठा	,,	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	
कदाचित	कदाचित	मिश्र बन्धु	जीवनबीमा	३	
उमर	उम्र	,,	,,	५	,,
वही	वही	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटी	२	१६०८
सहा याई	सहाध्यायी	,,	,,	८	
प्रगट	प्रकट	कामताप्रसाद गुरु	लैटिनी हिन्दी		
वतमन	वर्तमान	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	१	,,
कर्त्ता है	करता है	,,	,,	१	

बर	बध	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	१	१९०८
तिवादी	प्रतिवादी	,,	,,	२	,,
ताव	बर्ताव	सत्यदेव	अमेरिकन स्त्रियाँ	२	,,
गावा	गावा	,,	,,	८	,,
गवनमन्ट	गवर्नमेंट	,,	देश० कल्याण देनयोग्य कुछ बातें	४	,,
आसमान	आकाश	गिरजाप्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	१	
ज्योंही	ज्योंही	सत्यदेव	अमेरिका में विद्यार्थिजीवन	२	,,
चुनाव	चुनाव	,,	,,	१०	
क्योंकि	क्योंकि	,,	राजनीति विज्ञान	७	१९०९
दुनियां	दुनिया	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	१	
शूलापर	सूली पर	,,	,,	२	
ठनक	ठंढक	,,	,,	९	,,
दुखदायी	दुखदायी	,,	,,	८	,,
पूरन	पूर्ण	,,	,,	१५	
नैन	नयन	,,	कन्यादान	१	
स्मशान	श्मशान	वृन्दावनलाल वर्मा	गंगीबन्द भाई	३	
साधरन	साधारण	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	,,
बादर	बादल	,,	,,	६	,,
सिंघासन	सिंहासन	,,	,,	५	

प्रेममै	प्रेममय	पूर्णसिंह	कन्यादान	५	१९०९
साम्हन	सामने	,,	,,	६	,,
जोत	ज्योति	,,	,,	६	,,
झार	झाड़	,,	,,	७	,,
पुरशोत्तम	पुरुषोत्तम	,,	,,	७	,,
निवारनार्थ	निवारणार्थ	,,	,,	७	,,
लोक	लोग	,,	,,	८	,,
दुःखडे	दुखड़े	,,	,,	८	,,
कुच्छ	कुछ	,,	,,	१०	,,
आशीरवाद	आशीर्वाद	,,	,,	११	,,
सगुण	सगुन	,,	,,	१२	,,
मैन	बहन	,,	,,	१५	,,
प्रस्पर	परस्पर	,,	,,	१५	,,
हो	यहाँ	,,	,,	१५	,,
प्रबन्ध	प्रबन्ध	सत्यदेव	अमरिका भ्रमण [५]	४	१९११
पाओ	पावो	,,	,,	४	,,
बनटन कर	बनठन कर	,,	,, [४]	६	,,
कं ठडी	कोठरी	,,	,, [३]	७	,,

अन्तर्धान	अन्तर्धान	रामचन्द्र शुक्ल	[illegible]	
हु नम्बाज	हुएनसांग	"	"	"
सदश	सदृश	पूर्णसिंह	कन्यादान	१६०६
यज्ञ	यज्ञ	"	"	"
मटियामेट	मटियामेट	"	"	"
दच्छिन	दक्षिण	रामचरित उपाध्याय	पवनदूत	१६०६
सभ्रण	स्मरण	पूर्णसिंह	कन्यादान	१६०६
पुरणे	प्राचीन (पुराने)	"	"	"
घन्ट	घटी	"	मजदूरी और प्रेम	१६११
किंमदन्ति	किंवदन्ती	श्रीमती वंग महिला	नीलगिरेपर्वतकेनिवासीलोग	१६०४
आदमशुमारी	मर्दुमशुमारी	"	"	
स्वच्छ	स्वच्छ	"	"	
ए	ये	मिश्र बन्धु	विज्ञापनों की धूम	१६०२
जठर	जरठ	"	"	"
विभाट	विभाट	"	राजधर्म	१६ ४
जलजान	जलयान	"	"	"

प्रथम मिलन का स्थान	प्रथम समागम के स्थान	पमथ नाथ बंद्योपाध्याय	राजपूतनी	१३	१९०६
गला ' तक	मेले''' तक				
फ सला पर	फासले पर	सत्यदेव	अमेरिकन शिक्षायें	४	१९०८
प्र ृ त परिचय ! हीनता	प्रकृति-परिचय-हीनता	बद्रीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	१०	१९११
आज कल की संस्कृत भरी कविता संस्कृत छन्दों म रची जाकर और भी अधिक हानिकारक है।	आजकल की संस्कृत भरी कविता का संस्कृतोपयुक्त छन्दों में रचा जाना और भी हानिकारक है।	विद्यानाथ। म. प्र. गु.	कवि कर्तव्य		"

सर्वनाम सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
यह रेल की सड़क पर है	वह रेल की सड़क पर है '	सत्यदेव	अमेरिका के खेतों पर मेरे कुछ दिन	३	१९०८
क्या क्या विषय अध्ययन किये है	कौन कौन विषय अध्ययन किये है	,,	देश हितैषियों के ध्यान देने योग्य बातें	२	,,
इनमें	उनसे	वृन्दावन लाल वर्मा	राखीबन्द भाई	५	१९०९
पाठक,'''तुझे	पाठक,'''आपका	पूर्णसिंह	कन्यादान	८	

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
मरा मित्र ' टहलने लगे	मेरे मित्र···	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (४)	८	१९०९
कुछ एक ने···	कई एक ने···	"	"	१०	"

विशेष्य-विशेषण-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अपना ताजा से ताजा दोहे	अपने ताज़ से ताजे, दोहे	पूर्णसिंह	कन्यादान	२	१९०९
और चौपाई ।	और चौपाई ।				
इतना सब होने पर	यह सब·····	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	७	१९११
उनके अभिमान का चकनाचूर होगया	उनका अभिमान चकनाचूर होगया	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (४)	९	"
यह निश्चय नहीं·····	यह निश्चित नहीं	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्श नशास्त्र	३	"
भाव·····उदय होते है	भाव···उदित होते है	विद्यानाथ	कवि का कर्त्तव्य	५	"

ा होगई	नही हुई	मधुमगल मिश्र	एक ही शरीर मे अनेक आत्माएं	१४	१९०६
पढ़ाती चलने लगी	बढ़ाती हुई चलने लगा	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	२	,,
बदला लेवे	बदला ले	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	३	१९०८
खड़ा होकर	खड़े होकर	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रिया	४	,,
भेज दिई जावे	भेज दी जाय	गोविन्द वल्लभ पंत	कृषि सुधार	४	,,
हाथ पकड़	हाथ पकड़ कर	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटी	२६	,,
साथ ले	साथ लेकर	,,	,,	२६	,,
समझी जानी लगी है	समझी जाने लगी है	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	४	१९०९
होता आता है	होता आया है	,,	,,	८	,,
विवाह.....ठेकेदारी होगई	विवाह.. ठेकेदारी होगया	पूर्णसिंह	कन्यादान	८	,,
खड़ी गा रही है	खड़ी गारही है	,,	,,	१२	,,
सम्बन्धी और सखियां हो रहे हैं	सम्बन्धी और सखियां...हो रही है	,,	,,	१४	,,
जावेंगा	जांयगे	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	२	१०११
अगरेज़ी बोलनी नही आती थी	अगरेजी बोलना नहीं आता था	,,	,,	३	,,

बुलाआ	बुलाया	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	७	१९११
जिस दिन आकाश शुद्ध हो	···आकाश साफ रहता है···	,,	,,	१२	
·चोटियाँ दीख पड़ती	चोटियां दीख पड़ती है				
दिल में आया चलो आज आपका कष्ट दे	···चलूं आज आपको कष्ट दूं	,,	,,	१४	,,
·शहरको वही सुभीता है ····जो नगर को हो	···शहर को वही सुभीता है जो नगर को होता है	,,	,,	१४	
लड़के लड़किया लगे थे	लड़के लड़कियां·· लगी थी	,,	,, (४)	८	
वह ऐसी बातें करे·· आने लगा	वह ऐसी बाते करता था कि ·····लगा	,,	,,	५	,,
लोगों को · खड़े पाये जाना पडता है···इस प्रयोग की सृष्टि हुई हो।	लोगों को····· खड़े पाया जान पडता है · सृष्टि हुई है	,,	,,	६	,,
		कामता प्रसाद गुरु	हिन्दी का व्याकरण	४	१९०८

कभी '''	कभी कभी'''''	सूयनारायण दीक्षित	टट्टू दल	१	१६०६
जब'''' तो	जब''''' तब		,,	१	
बाह भारत,	बाहरे भारत,	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रिया	२	१६०८
आपको कष्ट ही होगा	आपका व्यथ कष्ट होगा	,,	,,	१०	
यहीं पर	यहीं	,,	आश्चर्यजनक घटी	२०	
य	या	गिरजा प्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	३	१६०६
अशाति व अधिकार	अशाति और अधिकार	सत्यदेव	राजनीति विज्ञान	७	,
हर एक मनुष्य मात्र	हर एक मनुष्य	पूर्णसिंह	कन्यादान	३	१८०६
यद्यपि'''परन्तु	यद्यपि''''''तथापि	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (५)	८	१८११
कहते व सुनते	कहते आर सुनते	गणेशशकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	४	

लिंग-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
उनके स्पर्शेन्द्रिय	उनकी स्पर्शेन्द्रिय	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	४	१६०६
पद्मा''''''सकते है	पद्मा''''''सकतीहैं	,,	,,	५	,
क बातचीत.	की बातचीत	,,		७	

क शुद्धि	की शुद्धि	,,	,,	१	,,
तक्षशिला'' वैसी'''बनी रही	तक्षशिला' वैसाही'''बनारहा	,,	,,	२	
चलती समय	चलते समय	,,	,,	३	
मंजु श्री'''विद्याके देवता है	मंजु श्री बिद्याकी देवता है	,,	,,	५	
आठवें शताब्दी	आठवीं शताब्दी	,,	,,	५	
क ओर	की ओर	मिश्र बन्धु	जीवन बीमा	७	,
शव'' थी ·	शव'''था	वैंकटेशनारायण तिवारी	एक अशर्फीकी आत्मकहानी	१३	१९०६
क बदौलत	की बदौलत	,,	,,	१४	
हमारे सन्तान	हमारी सन्तान	काशीप्रसाद जयसवाल	हमारा सम्वत्	२	१९०८
एसी समय	ऐसे समय	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	२	,,
की सामर्थ्य	का सामर्थ्य	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	७	१९०९
की लालच	का लालच	,,	,,	३	
के अवस्था	की अवस्था	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	,
अपनी माता पिता	अपने माता-पिता	,,	,,	५	,
मीठी सुरा	मीठे सुर	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	१०	१९११
धूल नहीं उड़ता	धूल नहा उड़ती	,,	,,	७	

चर्चा था	चर्चा थी	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ (२)		
ऐसा मदान्ध	ऐसे मदान्ध	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	४	,,
अहिल्या का पाषाण देह	अहल्या की पाषाण देह	गिरजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन शास्त्र	३	,,
का स्नायु	के स्नायु	,,	,,	१०	,,
पूर्वजा के पूजा	पूर्वजों की पूजा	श्री मती वंग महिला	टोडा जाति		१९०४
अपनी भाग्य	अपना भाग्य	मिश्रबन्धु	विज्ञापनों की धूम		१९०३
शत्रु क प्रजावा	शत्रु की प्रजा	,,	साजधर्म		१९०४
मे पण्डितानी) कोठरीका कैदीहूँ	...कोठरी की कैदी हूँ	गिरजादत्त वाजपेई	पंडित और पंडितानी		१९०३

वचन सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन
बीमाश्रा	बीमा	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	१	१९०६
बारह रूपया	बारह रूपये	,,	,,	२	,,
वह नहीं सोचते	वे नहीं सोचते	,,	न्याय और दया	४	१९०८
जितनी स्त्री समाजें है	जितने स्त्री-समाज है	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	६	,,
यह सब बातें	ये सब बातें	,,	आश्चर्यजनक घटी	१६	,,
यह दोनों	ये दोनों	,,	,,	२१	,,
अनेक बाधा	अनेक बाधाएँ	गोविन्द बल्लभ पंत	कृषि-सुधार	१	१९०६

यह सब लोग	ये सब लोग	,,	आश्चर्यजनक घ.ट	६	,,
यह जितनी एशासिएशन	ये जितनी एशासिएशंन	,,	अमेरिका में विद्यार्थी जीवन	८	,,
चल रही हैं	चल रही हैं				
कानूनके क्या अर्थहो सकतेहैं	कानूनका क्याअर्थ हो सकताहै	,,	राजनीति-विज्ञान	६	१६०६
कन्दरा	कन्दराओं	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	७	,,
लालचयाधमकी ऐसीहैं जिनसे	लालचया धमकीऐसीहैजिससे	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है?	६	,,
याद्धा	योद्धाओं	बृन्दावनलाल वर्मा	राखी बन्द भाई	८	
धन्य है वह नैन	धन्य हैं वे नयन	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	
यह ·····है	वे·····है	,,	,,	३	,,
"कहानियां" जिसमें	"···कहानियां···जिनमें	,,	,,	७	
यह कमसे·····	वे किसके·····	,,	,,	७	,,
मन का	मन को	,,	,,	१४	,,
यह मजदूर लोग थ	ये मजदूर लोग थे	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	५	१६११
चोटया	चोटियाँ	,,	,,	१२	
इतना ही रुपया लगा है	इतने ही रुपये लगे हैं	,,	,,	१२	
पाठक गणों	पाठक	,,	शिकागो का रविवार		१६०७
यह लोग	ये लोग	श्री वग महिला	टोड़ा जाति		१६ ४
यह बढती	वे···बढ़ाती	गिरजादत्त वाजपेई	पंडित और पंडितानी		१६०

शर र में रगटने लगा	शरीर स'''रगड़ने लगा	गंगा नाथ झा	राजपूतनी	८	१९०६
प में'''भूषित कर'''	' भेष मे भूषित कर	"	"		"
ज म दन को	जन्मदिन पर	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	२	"
भ ग को वर्णन करूंगी	भाग का वर्णन करूंगी	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशर्फीकी आत्मकहानी	१८	"
ज म भर को कालापानी	जन्म भरके लिए कालापानी	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	१	१९०८
भागता है	भागता है				
मझ इसकर कहा	मझ मे'''कहा	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	२	"
संक्षप मे	संक्षेप में	"	"	१०	"
म कह चुके	मैं कह चुका	"	"	१०	"
मरे म	मुझसे	"	अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछ दिन	३	"
मझ बोला	मुझसे बोला	"	"	४	"
इन लोगों के मत मे	इन लोगों के मत मे	लक्ष्मीधर वाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	१	"
' भाग ''हमारे वैद्यक मे	' वैद्यक के भी है	"	"	३	"
भी है					
शास्त्र के ही भरोसे पर न रहे	शास्त्र ही के भरोसे न रहे	"	"	३	"
परिपक्व दशा मे पहुँच गया था।	परिपक्व दशाको पहुँच गया था।	"	"	१५	"
बजन का कहा	बजाने के लिए कहा	काशीप्रसाद जायसवाल	महाराजा बनारस का कुआँ	५	"

हमको	हम	सत्यदेव	अमरिका में विद्यार्थी जीवन	६	१६०८
हम लोगोंने सीखनी है	हम लोगों को सीखनी है	,,	,,	११	
बोलने मे स्वतत्रता	बोलने की स्वतत्रता	सत्यदेव	राजनीति-विज्ञान	६	१६०६
उसको	उस	,,	,,	११	
तिनका का तरह	तिनके की तरह	पूर्णसिह	सच्ची वीरता	४	,,
किसानो मे बाटा जाय	किसाना का बाटा जाय	,,	,,	१२	
रनवास को ले गये	रनवास मे ले गये	वृन्दाबनलाल वर्मा	राखीबन्द भाई	६	
धारा का स्मरण करना	धारा का स्मरण करना	पूर्णसिह	कन्यादान	१	
अवस्था को अनुभव करता है	अवस्थाका अनुभव करता है	,,	,,	२	
माता पिता के घरको छोड़कर	माता पिता का घर छोड़कर	,,	,,	५	
सभी जातो को पूजा करने	सभी जाति की पूजा करने	,,	,,	६	,,
कर्मीनापन के लालचो मे	कर्मीनेपन के लालचो से	,,	,,	१०	,,
पथरो मे खुदी हुई	पत्थरो पर खुदी हुई	,,	,,	११	,,
कन्या के हॉथ कंगना बान्ध देता है	कन्या के हाथ मे कंकण बाध देता है	,,	,,	१२	,,
योगी के हाथो को कोई छुच्छु करे	योगी के हाथो पर चाहे··· करे	,,	,,	१३	
देखने को आये हैं	देखने आये है	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारत में राज्याभिषेक	१	१६११
मेरे डर जाता है	मुझे डर जाता है	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	२	

अ पके पसन्द है	आपको पसन्द है	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	१७	१६१२
इस पर तीस लाख	इसमें तीस लाख	,,	,,	१२	,,
जो बस के नही है	जो ···वश में नहीं है	,,	,,	१४	,,
उद्दण्डता को सिद्ध किया	उद्दण्डता सिद्ध की	,,	,, (४)	३	,,
घर घर में पहुँच कर	बेकोवर पहुँच कर	,,	,,	८	,,
अनुराध पर	अनुरोध से	,,	,,	८	,,
जानने के उत्सुक थे	जानने को उत्सुक थे	,,	,,	६	,,
साहस होना परमावश्यक है	साहस का होना परमावश्यक है	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	१	,,
गुणों को होते हुये	गुणों के होते हुए	,,	,,	२	,,
मिथिला मे न्याय दर्शन का अध्ययन करके	मिथिला में न्याय दर्शन···	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन शास्त्र	३	,,
सांख्य दर्शन के आधार से याय दर्शन बना है	साख्य दर्शनके आधार पर···	,,	,,	४	,,
उसकी वृत्ति बनाई	उस पर वृत्ति बनाई	,,	,,	५	,,
ज्ञान के साथ में नाम, रूप··	ज्ञान के साथ नाम और रूप	,,	,,	६	,,
चैतन्य प्रभु के मत से जन्म, जन्मान्तर को पाकर	चैतन्य प्रभु के मत मे जन्म जन्मान्तर पाकर	,,	,,	१०	,,
स्नायु मे आघात होने पर	स्नायु पर आघात होने से	,,	,,	१०	,,
न टका को अतिरिक्त	नाटकों को छोड़कर	सत्यदेव	शिकागो का रविवार		१६०७
आधी सख्या हमारे देश क मूर्खा स्त्रियां की है	आधी संख्या हमारे देश में मूर्खा स्त्रियां की है	,,	,,		,,

हरेक	हर एक	गोविन्द वल्लभ पंत	कृषि-सुधार	५	१६०८
सश्रुतादि	सुश्रुत आदि	लक्ष्मीधर बाजपेई	हमारा वैद्यक शास्त्र	१३	
विद्याऽभ्यास	विद्याभ्यास	सत्यदेव	राजनीति-विज्ञान	६	१६०६
अन्तष्करण	अन्तःकरण	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	२	,,
भाग्य उदय हुवे	भाग्योदय हुआ	,,	,,	४	,,
परम अवस्था	परमावस्था	,,	कन्यादान	२	,,
देह अध्यास	देहाध्यास	,,	,,	१२	,,
बर आमदे में	बरामदे में	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	११	१६११

समास-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
भारत शासन की बागडोर	भारत के शासन की बागडोर	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्मकहानी	४	१६०६
वायु रोगी	वायु के रोगी	लक्ष्मीधर बाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	४	१६०८
अर्द्धांग वायु मृत	अर्द्धांग वायु से मृत	,,	,,	५	,,
अविकृत	विकारहीन	,,	,,	७	

एकाधिक	एक में अधिक	बाबूराव विष्णु पराड़कर	वररुचि का समय	४	१६०६
कविताद्वारा	कविता द्वारा	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	२	,,
नलालीन हो गई	नल में लीन हो गई	पूर्णसिंह	कन्यादान	७	
एकराय हुए	एक मत हुए	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारतमें राज्याभिषेक	४	१६११
भय श्री के उपवास	सत्त्वीक उपवास	,,	,,	४	,,
निर्दोषी	निर्दोष	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (४)	३	,,
कुइच्छाओं	कुत्सित इच्छाओं	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	२	,,
निर्वाण का लाभ होता है	निर्वाण लाभ होता है	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन		,,

उपसर्ग-प्रत्यय सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अतीत कीजिए	व्यतीत कीजिए	सूर्यनारायण दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान		१६०६
एकत्रित	एकत्र	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	१	,,
उद्देश्य	उद्देश	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	७	१६०८
अनपहचाने	बेपहचान	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	१	१६०६
कपाला	कापालिक	,,	,,	३	,,
अजीत हो गया	अजेय ...	,,	,,	१३	,,

	चेतनता	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	६	१९०९
	आध्यात्मिक	पूर्णसिंह	कन्यादान	२	,,
	सौन्दर्य	,,	,,	३	,,
	प्रज्वलित	,,	,,	११	,,
	महत्ता	,,	,,	१४	,,
	प्रज्वलित	,,	,,	१५	,,
	सम्मति	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारत में राज्याभिषेक	४	१९११
	भद्रा-श्रमणी	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (५)	५	,,
चैतन्य	पुस्तकों का''' 'चेतन''	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	५	,,
विभाग	वाशिंगटन को 'विभक्त'''	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (३)	४	,,
	उत्पत्ति	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	२	,,
	आहुत हो गए	,,	,,	३	,,
	पीटर्स वर्ग की घोषणा	मिश्रबन्धु	राजधर्म		१९०४
	श्यामवर्ण	सैंट निहालसिंह	पाताल देश के'''हबशी'''		१९११

म पैदा हुए···	···म ये पदा हुए	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१	१६०६
सकलन कर	इकट्ठा करके	,,	,,	४	,,
इसमें मोहिनी सी	इनमें एक मोहनी शक्ति सी	,,	,,	६	,,
रस भरी	रस से भरी हुई	,,	,,	६	,,
लोग मार कर	लोग उन्हें मार कर	सूर्यनारायन दीक्षित	टिडडीदल	५	,,
घोड़े पर चढ़	वह घोड़े पर चढ़कर	,,	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	,,
दूसरी को (ऊपर रत्नके प्रति)	दूसरे को	लाला पार्वतीनन्दन	एक के दो दो	२	,,
वहां न देखी थी	वहां मैंने न देखी थी	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटी	२	१६०८
कथन सुन	कथन सुनकर	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	५	,,
दान में मानवहृदय पर किसका	मानव हृदयपरदोनोंमेंसे किस का	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	२	१६०६

योग्यता सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अक्षुण्ण यशः शरीर	अक्षय्य यशः शरीर	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१५	१६०६
यद्यपि · किन्तु	यद्यपि···तथापि	,,	,,	११	,,

शकुन	अपशकुन	सूर्यनारायन दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान	१०	१९०६
ये लोग	ये लोग	मधुमंगल मिश्र	एकही शरीर मे अनेक आत्माएँ	२	
स्त्री	कुमारिका	,,	,,	१४	,,
चित्र···जागृत है	चित्र विद्यमान है	पमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	१	
प्राणप्यारी	प्रियतमा	वैंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफीकी आत्मकहानी	८	
घटी बहुत प्यारी मालूम हुई घटी को आगे देखा है	घटी बहुत पसद आई घटी पहले कभी देखी है	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटी	५	१९०८
कार्योत्पत्ति	कार्य प्रवृत्ति	,,	,,	८	
बिजली की गज और चमकार है	बिजली की गरज और चमक है	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	१	१९०९
दुष्टील	कुटिलतापूर्ण	पूर्णसिंह	कन्यादान	३	
खडगात	खडहरों	,,	,,	११	
विवाह वाली आय कन्या	पतिवरा	,,	,,	,,	
मनुष्यातीत परिश्रम	मनुष्यातिगपरिश्रम	,,	,,	१३	
विचारो मे लिप्त बैठा था	विचारों में मग्न	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	१	१९१०
		सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (४)	८	

यह द्वन्द्व निराश होत्यागना पड़ा	निराश होकर यह विवाद छोड़ना पड़ा	काशीप्रसाद	एफ० एस० गाउन	२	
अपने साहब कलेक्टर का	अपने कलेक्टर साहब का	,,	,,	६	,,
रिद्धी क्षय का क्षय करने वाली	कृपि का क्षय करने वाली रिद्धी	सूर्यनारायण दीक्षित	रिद्धी दल	१	१९०६
उसकी शोभा और भी बढ़ गई	उसकी शोभा और भी बढ़	,,	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	,,
जीवन का विना अन्त किये	जीवन का अन्त किए बिना	,,	,,	९	,,
एक लकड़ी का टुकड़ा	लकड़ी का एक टुकड़ा	गुरुदेव तिवारी	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	२	,,
उतनी ही आकर्षण शक्ति में न्यूनता हो जाती है	आकर्षण शक्ति में उतना न्यूनता हो जाती है	,,	,,	३	१९०६
भारतके प्राचीनविश्वविद्यालय	प्राचीन भारतकेविश्वविद्यालय	वेंकटेश नारायण तिवारी	प्राचीन भारतके विश्वविद्यालय	१	१९०६
मूल यह सिद्धांत था	मूल सिद्धांत यह था	,,	,,	१	,,
बिम्बसार मगध नरेश	मगध-नरेश बिम्बसार	,,	,,	२	,,
तत्काल रुपया कम्पनी को अदा करना पड़े	तत्काल कम्पनी को रुपया अदा करना पड़े	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	२	,,
शरीर ज्ञान यथार्थ	यथार्थ शरीर ज्ञान	लक्ष्मीधर वाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	२	१९०८
हमारे वैसे ही विचार हैं	हमारे विचार वैसे ही हैं	,,	,,	१४	१९०८
शास्त्रों की हमारे देश में [illegible]	शास्त्रों की उन्नति हमारे देश में [illegible]	,,	,,	१६	१९०८

[illegible]	अपनी बातको पूरा निश्चय	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटा	८	»
किसने जगाया	जगाया किसने	»	»	३१	»
लेखक कैसे पैदा हों	लेखक पैदा कैसे हों	»	अमेरिका में विद्यार्थीजीवन	५	
पेसे सभी	सभी पेसे	»	राजनीति विज्ञान	»	१९०९
हानि समाज की ही है	समाज ही की हानि है	»	»	»	
''आदि ऐसे ही शब्द है	'''आदि शब्द ऐसे ही है	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	८	»
उनसे चलते समय भेंट कर	चलते समय उनसे भेंट कर	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण [५]	१	१९११
परिणाम इसका	इसका परिणाम	»	» [४]	५	
एक अंग्रेजी में अखबार	अंग्रेजी में एक अखबार	»	»	१०	
आप एक की मिसाल से	एक आपकी मिसाल से	»	» [५]	३	»
बहुत से हमारे पाठक	हमारे बहुत से पाठक	»	शिकागो का रविवार		१९०७
हमारा इससमय क्या कर्त्तव्य है	इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है	»	»		»
प्रथम इसके कि	इसके प्रथम कि	रामचन्द्र शुक्ल	ग्यारह वर्ष का समय		१९०३
ग्रामीण सब	सब ग्रामीण	»	»		

हवादार मकान शहर म बनवाये हुये है	हवादार मकान शहर म बने हुए है	सत्यदेव
कोई वस्तु चोरी हुई है	कोई चीज चोरी गई है	,,
पूले इस प्रकार खड़े करते थे	पूले इस प्रकार खड़े कियेजाते थे	,,
उनको भी काटा गया	वे भी काटे गए	,,
इन विद्यार्थियों को अध्यापक बनाया जावे।	ये विद्यार्थी अध्यापक बनाये जाँय	,,
यहाँ कुछ चोरी नहीं हुवा	यहाँ कुछ चोरी नही गया	,,
इस खेत को अमरीकन बना दिया है	यह खेत अमरीकन बना दिया गया है	,,
बातचीत होनी थी	बातचीत होने को थी	,,
दुष्टों का मारना देखकर	दुष्टों को मारा जाना देखकर	रामचन्द्र शुक्ल
इसे स्नानागार में लाया जाता	वह स्नानागार मे लाया जाता	गिरिधर शर्मा
उद्दंड बालकों को रखा जाता है	उद्दंड बालक रक्खे जाते हैं	सत्यदेव
उन लड़कों को लिया जाता	वे लड़के लिये जाते हैं	,,

अमरीका का इतिहास	-	
आश्चर्यजनक घंटी	२०	,,
अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछ दिन	१०	,
,,	१०	,
देश०के स्थान देने योग्य कुछ बातें	५	,
आश्चर्यजनक घंटी	२०	,
अमेरिका मे विद्यार्थि-जीवन	७	,
,,	६	,
कविता क्या है	१४	१९०९
प्राचीन भारत मे राज्याभिषेक	५	१९११
अमेरिका भ्रमण। ३।	१३	,
,,	१४	,,

उनका माखिक कीमता था	हमारा माणक कीमता ह				
यहाँ पहुँचे तो देखते क्या हैं	वहा पहुँचे तो देखते क्या हैं	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (४)	८	१९११
कि पाच चार जने शराब के	कि चार पांच आदमी नशे				
नशे में गुट्ट थे	में चूर हैं				
उनको समझाया कि यदि	उनको समझाया कि तुममे	,,	,,	१२	
उनमे कोई मांगे	कोई मांगे				

मुहावरों का संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
विषय को छुवा···	विषय मे हाथ लगाया	काशी प्रसाद	एफ एस. माउस	१३	१९०६
··काम को उठा	·· काम को आरम्भ किया	,,	,,	१३	
युक्ति विचारी	युक्ति निकाली	सूर्यनारायण दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	
सीधे पड़े	चित लेटे	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर] मे अनेक आत्माएँ	४	
बच्चा आदमी	बालक	,,	,,	४	,,
गोल हुई	जान पड़ी	,,	,,	५	

आँखे दिलाई	आँखे खोली	मधुमगल मिश्र	एक ही शरीर म अनक आत्माए	५	१६ ६
नाम का हिज्जे किया	नाम बतलाया	"	"	६	,
वह आश्चर्यित हुआ	उसे आश्चर्य हुआ	"	"	८	,
परिचय जान सकते हैं	परिचय पा सकती हूँ	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	५	,
नीच ऊँच लगी हो रहती है	सुख दुख का जोड़ा है	वैंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्म कहानी	१०	,
पत्र के पढने पर	पत्र पढने पर	"	"	१५	,
आप को क्या काम है	आप क्या चाहते हैं	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटा	६	१० ०८
मूर्ति के आगे झुक गया	मूर्ति को प्रणाम किया	,,	,,	८	,
ठंडी साँस भरी	ठंडी सास ली	,,	,,	२८	,
सृष्टि के बीच	सृष्टि में	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है ?	१	१६ ०६
अपनी आँखो मे देखा है	अपनी आँखो देखा है	पूर्णसिंह	कन्यादान	४	,
प्रियावर	प्रियतमा	,,	,,	७	,
पुत्री के विवाह को देखने	पुत्री का विवाह देखने	,,	,,	१४	,,
धूल में उड़ गये	धूल मे मिल गए	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	६	१६ १०
महनत फल लावेगी	परिश्रम सफल होगा	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	३	,
शराब का दौर लगा रहे हैं	शराब का दौर चल रहा है	,,	,, (४)	८	,,
उनमे से होकर निकल जाना	उनके बीच से होकर निकल जाना	गणेश शंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	३	,,

	विद्वान	काशीप्रसाद	एफ० एस० आउस	१	१६०६
शल्य	कारीगरी	,,	,,	२	,,
	आजकल की	,,	,,	२	,,
	सिर्फ	,,	,,	२	,,
	छोड़ना	,,	,,	३	,,
	लेख	,,	,,	३	,,
	पहले	,,	,,	५	,,
	उसके ऊपर	,,	,,	५	,,
	नीचे	,,	,,	८	,,
	दाहिनी तरफ	,,	,,	८	,,
	बाईं तरफ	,,	,,	८	,,
	फल	,,	,,	१४	,,
	प्रायश्चित के लिए	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्मकहानी	४	,,
	एक मात्र पुत्र	,,	,,	६	,,
	स्वच्छन्दता पूर्वक	,,	,,	१०	,,
	कारणवश	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	२	१६०८
	बाहरी	लक्ष्मीधर वाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	८	,,
	उन शक्तियों के अंशभूत		,,	१०	,,

सर्वथैव	बिलकुल ही	लक्ष्मीधर बाजपेयी	हमारा वक्तृत्व शास्त्र	११	१९०९
अर्वाचीन	नवीन	,,	,,	१३	,,
प्रचारार्थ	प्रचार के लिए	सत्यदेव	देश० के ध्यान देने योग्य बातें	४	,,
वैराग्यवान्	विरक्त	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	५	१९०९
द्रव्यगत सौन्दर्य	पार्थिव सौन्दर्य	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है ?	७	,,

अरबी-फारसी शब्दों के स्थानापन्न शब्द

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अंगरेजी दा	अंगरेजी जानने वाले	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१३	१९०६
ज्यादः	बहुत	सूर्यनारायण दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान	१३	,,
गुजर गया	बीत गया	बैकुंठेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्मकहानी	६	,,
ख्याल	खयाल	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	३	१९०८
आईन	कानून	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	१	,,
हुनर की तरक्की	कला-कौशल की उन्नति	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	८	,,
कद दरम्यान है	कद मंझोला है	,,	अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछदिन	४	,,
फरज	कर्तव्य	,,	देश० के ध्यान देने योग्य कुछबातें	४	,,
इत्तफाक	प्रयोग	,,	,,	४	,,
मिसाल	उदाहरण	,,	राजनीति के विज्ञान	१०	१९०९
			,,	१०	,,

मस्टर बीम्स	बीम्स साहब	वाशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	३	१६०६
यूनीवर्सिटी	विश्वविद्यालय	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ	१	,
बास	वसु	माधवराव सप्रे	स्वर्गीय आनन्द मोहन वसु	१	,
डस्क	मेज	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटी	१	१६०८
मिस	कुमारी	,,	अमेरिका की स्त्रियाँ	४	,,
मैगजिनों	मासिक पुस्तकों	,,	,,	६	,
टैक्स	कर	,,	राजनीति-विज्ञान	६	१६०८
आरटिस्टिक	कौशलमयी	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	६	

अन्य शब्दों के संशोधन

अब लौं	अब तक	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ	३	१६०६
वा	या	,,	,,	३	,
जब लौं···तब लौं	जब तक···तब तक	,,	,,	१६	,,
सो	इससे	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	४	१६०८
आखें उघाड़ो	आखें खोलो	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	१	
जब···तो एक जना	जब···तब एक आदमी	,,	अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछ दिन	१७	,
दिखायी गयी है	दिखाया गया है	,,	शिकागो का रविवार		१६०७

परिशिष्ट संख्या २ में दी गई संशोधित लेख की प्रतिलिपि उनके संशोधन कार्य को और भी स्पष्ट कर देगी। स्वयं श्रान्त हो जाने पर वे मैथिलीशरण गुप्त आदि के द्वारा 'सरस्वती'-लेखकों की भ्रष्ट भाषा का सुधार कराते थे। इसकी चर्चा 'सरस्वती-सम्पादन' अध्याय में हो चुकी है।

आचार्य द्विवेदी जी पत्रों और सम्भाषणों में भी भाषा-संस्कार का उद्योग करते थे। एक बार मैथिलीशरण गुप्त की 'क्रोधाष्टक' तुकबन्दी पर क्षुब्ध होकर उन्हें पत्र में लिखा —

"हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन पाते हैं। आप दो बातों में से एक भी नहीं करना चाहते हैं। कुछ लिख कर उसे छपा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समय में लिखा होगा, परन्तु उसे ठीक करने में हमारे चार घंटे लग गये। पहला ही पद्य लीजिये—

होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया
जानें न वे तनिक भी अपना पराया
होवें विवेक वर बुद्धि विहीन पापी
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि

क्या आप क्रोध को आशीर्वाद दे रहे हैं जो आपने ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया? इसे हम अवश्य 'सरस्वती' में छापेंगे परन्तु आगे से आप सरस्वती के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छापने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहे उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए। ताले में बन्द करके रखिए।"[1]

पंडित विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की तीन-चार कहानियां तथा लेख प्रकाशित करने के बाद एक बार वार्तालाप के सिलसिले में द्विवेदी जी ने उनसे कहा—

'आप 'सरस्वती' ध्यान से नहीं पढ़ते। पढ़ते होते तो 'सरस्वती' की लेखन शैली की ओर आपका ध्यान अवश्य जाता। 'सरस्वती' की अपनी निजी लेखन शैली है। वह मैं आप को बताता हूँ। देखिये लेने के अर्थ में जब लिये शब्द लिखा जाता है तब यकार से लिखा जाता है और जब विभक्ति के रूप में आता है तब एकार से लिखा जाता है। जो

---

१ सरस्वती भाग ४ सं० २ पृ २००

शब्द एक वचन में यकारान्त रहता है व बहुवचन में भी यकारान्त ही रहेंगे जैसे किया किये, 'गया–गये' परन्तु स्त्री लिंग में गयी' न लिखकर ईकार से 'गई' लिखा जाता है 'कहिए', 'चाहिए', देखिए' इत्यादि में एकार लिखा जाता है। अकारान्त शब्दों का बहुवचन एकारान्त होता हैं। जैसे 'हुआ' का बहुवचन 'हुए'। जहाँ पूरा अनुस्वार बोले वहाँ अनुस्वार लगाया जाता है। जैसे 'संस्कार' और जहा आधा अनुस्वार, जिसे उर्दू में नूनगुन्ना कहते हैं, बोले वहा चन्द्रबिन्दु लगाया जाता है—जैसे काँपना। सम्भव है, मेरी इस शैली से आपका मतभेद हो, परन्तु प्रार्थना यह है कि 'सरस्वती' के लिए जब लिखिए तब इन बातों का ध्यान रखिए।"[१]

अपने लेखों और वक्तव्यों में उन्होंने समय-समय पर अपने भाषा सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति की है। 'हिन्दी की वर्तमान अवस्था'[२] में उनकी शब्द-ग्राहकता पर लिखा था—

"आज कल कुछ लेखक तो ऐसी हिन्दी लिखते हैं जिसमें संस्कृत शब्दों की प्रचुरता रहती है। कुछ संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, अरबी सभी भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। कुछ विदेशीय शब्दों का बिलकुल ही प्रयोग नहीं करते, ढूंढ–ढूंढ कर ठेठ हिन्दी शब्द काम में लाते है। मेरी राय में शब्द चाहे जिस भाषा के हों, यदि वे प्रचलित शब्द हैं और सब कहीं बोलचाल में आते हैं तो उन्हें हिन्दी के शब्द-समूह के बाहर समझना भूल है। उनके प्रयोग से हिन्दी की कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है। अरबी, फारसी के सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनको अपढ़ आदमी तक बोलते हैं। उनका बहिष्कार किसी प्रकार सम्भव नहीं।" साहित्य सम्मेलन (कानपुर अधिवेशन) में स्वागताध्यक्ष पद से दिये गए भाषण में भी उन्होंने हिन्दी की इस ग्राहिका–शक्ति का मंडन किया।[३]

अपने उसी भाषण में उन्होंने हिन्दी भाषा और व्याकरण के अनेक विवाद-ग्रस्त विषयों का भी स्पष्टीकरण किया।[४] कारक-विभक्तियों के सम्बन्ध में उनका वक्तव्य था कि जिस शब्द के साथ जिस विभक्ति का योग होता है वह उसी का अंश हो जाती हैं। यह सत्य है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि विभक्तियों को शब्दों से जोड़ कर लिखा जाय।

---

१. 'सरस्वती' भाग ४०, संख्या २, पृ० १९२।
२. 'सरस्वती' भाग १२, संख्या १०, पृ० ४७३।
३ साहित्य-सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में पद से भाषण पृ० ४६ से ५०
४ साहित्य सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में पद से भाषण पृ ५ से ६१

संस्कृत व्याकरण में भी इस नियम का निर्देश नहीं उसमें विभक्तियां पृथक रह ही नहीं सकतीं क्योंकि उनकी सन्धि से शब्दों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु हिन्दी में ऐसी बात नहीं। विभक्तियों को सटा कर या हटाकर लिखना रूढ़ि, शैली या सुभीते का विषय है, व्याकरण का नहीं। शब्द अलग-अलग होने से पढ़ने में सुभीता होता है, भ्रम की सम्भावना कम रह जाती है। अतः विभक्तियों का अलग लिखना ही अधिक श्रेयस्कर है। व्याकरण का कार्य केवल इतना ही है कि भाषा प्रयोगों की संगति मात्र लगा दे। उसे विधान बनाने का कोई अधिकार नहीं। अपप्रयोग तभी तक माना जा सकता है जब तक भ्रम या अज्ञान के वशवर्ती होकर, कुछ ही जन किसी शब्द, वाक्य, मुहावरे आदि को प्रचलित रीति के प्रतिकूल बोलते या लिखते हैं। अधिक जन-समुदाय, शिष्ट लेखकों या वक्ताओं द्वारा प्रयुक्त होने पर वही साधु प्रयोग हो जाता है। शब्दों का लिंग भी प्रयोग पर ही अवलंबित है। जब संस्कृत में 'दारा' शब्द पुल्लिंग में और अंग्रेजी में देशों के नाम स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं तब प्रयोगानुसार हिन्दी में 'दही' शब्द भी उभयलिंगी हो सकता है। हिन्दी के कुछ हितैषी चाहते हैं कि क्रियाओं के रूपों में सादृश्य रहे। वे 'गया' का स्त्रीलिंग 'गयी' चाहते हैं, 'गई' नहीं। कुछ लोग 'लिया' और 'दिया' का स्त्रीलिंग 'लिई' और 'दिई' चाहते हैं, 'ली' और 'दी' नहीं। सरलता के कुछ पक्षपातियों की राय है कि क्रियाओं को लिंग-भेद के झमेले से एकदम ही मुक्त कर दिया जाय। परन्तु वक्ताओं का मुंह और लेखकों की लेखनी व्याकरण बन्द नहीं कर सकते।

द्विवेदी जी की प्रारंभिक रचनाओं की रीति और शैली[1] भी उनके भाषा प्रयोगों की ही भाँति चित्य है। शब्दों की योजना में वे एक ओर तो संस्कृत से और दूसरी ओर अरबी-फारसी-मिश्रित उर्दू से बुरी तरह प्रभावित हैं। कहीं-कहीं तो अनेक भाषाओं के शब्दों की विचित्र खिचड़ी रेल-यात्रा या बाजार के योग्य होते हुए भी साहित्यिक रचनाओं में अत्यन्त असुन्दर जँचती है।

रोमन, वारनिश, नम्बर, लैम्प, बेहिसाब, मरहम, वकील, कैंची, बटन, मोजा, फीता, नमूना आदि शब्द हिन्दी में खप गए हैं और उनका प्रयोग सर्वथा संगत है, परन्तु क्रिश्चियन (वे. वि. र. ३), क्राइस्ट (वे. वि. र. १), फुटनोट्स (वे. वि र. भू ७), पैरग्राफ (हि. शि. तृ. भा. स. २८), आदि एवं 'स्वाधीनता' में प्रयुक्त जरूरत (१) शाइस्तगी (२) दारमदार (६) जमात (१४) तहम्मुल (१६), मुस्तसना (२३), ख्यालात (२७,) मदाखिलत (२६), तकरीर (३४), पेशबन्दी (३५) आदि का प्रयोग हिन्दी के प्रति सरासर अत्याचार है। यह

---

१ रीति पद-रचना की प्रणाली और शैली धर्म है

ता फुटकर शब्दों का उदाहरण हुआ निम्न कित अवच्छेद तो उर्दू ही है

"कागजी रुपये से सम्बन्ध रखने वाले महकमे का काम काज चलाने के लिये एक कानून है। उसका नाम है एक्ट २ जो १९१० ईस्वी में पास हुआ था। उसके पहले भी कानून था। पर १९१० ईस्वी में वह फिर से पास किया गया, क्योंकि पहले के कानून में कुछ रद्दोबदल करना था। इसी कानून की रू से इस महकमे का सारा काम होता है।

....

१९२७ ईस्वी में गवर्नमेंट ने एक और कानून बना कर एक्ट २ में कुछ तरमीम कर दी है।"[1] अपने पत्रों में भी कहीं-कहीं फारसी की छारसी उडाने में उन्होंने चमत्कार दिखाया है, यथा 'अदालत आलिया में मुकदमाजेर तजवीज था'[2] कुछ शब्दों के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि वे हिन्दी समाज में व्यवहृत होते हैं, परन्तु हिन्दी-जनता में प्रचलित तद्भव और द्विवेदी जी द्वारा प्रयुक्त तत्सम रूपों का समुचित निरीक्षण इस भ्रान्ति को दूर कर देगा। हिन्दी ने 'कागज', 'कानून', 'जरूरत', 'जबान', 'कबूल' आदि को अपनाया है, 'काग़ज़', 'क़ानून', 'ज़रूरत', 'ज़बान', या 'क़बूल' आदि को नहीं। द्विवेदी जी को चाहिए था कि उर्दू शब्दों के ग्रहण में गोस्वामी तुलसीदास जी की आदर्श-पद्धति पर अनुगमन करते।[3]

उनकी हिन्दी की पहली किताब की भाषा राजा शिवप्रसाद और वर्तमान रेडियो की हिन्दुस्तानी की अपेक्षा कम उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं है। उसके निम्नांकित नामवाचक विवरण में प्रयुक्त 'सूबह' 'मदरसों', 'दफ्अ,' 'मुआफिक', 'रोज़मर्रः' आदि शब्द किसी मुल्ला या मौलवी की बानी की शोभा निस्सन्देह बढ़ा सकते हैं, परन्तु द्विवेदी जी की नहीं—

"हिन्दी की पहली किताब

---

१. शैली भावाभिव्यंजन की प्रणाली और अर्थ धर्म है।

२. पद्मसिंह शर्मा को पत्र

'सरस्वती', दिसम्बर, १९४० ई०

३. तुलसीदास जी ने भी विदेशी शब्दों को अपनाया है, परन्तु उनकी शुद्धि करके—

सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।

—रामचरित मानस

जिम

सूबह आगरा व अवध के मदरसों की प्रिपेरेटरी गवर्नमेन्ट रेज़ोल्यूशन

न०..... ....ता० १६ मई १६०३ ई० के मुआफ़िक, हिन्दुस्तानिया की रोज़मर्रः की बोली में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बनाया।

देवनागरी लिपि में लिखित इस उर्दू पुस्तक में 'अक्षर', 'ईश्वर', 'भोजपत्र', 'विद्या' 'श्रम' और 'समुद्र' को छोड़कर संस्कृत हिन्दी शब्दों का बहिष्कार किया गया है। ये भी वाक्य होकर लिखे गए हैं क्योंकि उदाहरणार्थ 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ', 'श्र' और 'द्र' का प्रयोग करना अनिवार्य था। पुस्तक भर में 'सदा', 'दुःख', 'दंड', 'आकाश', और 'पाठशाला या विद्यालय', 'बार', 'सुन्दर', 'बहुत', 'भारतवर्ष', 'बलवान्', 'हानि', 'लाज', 'क्रोध', 'दया', 'मूर्ख' 'मधुमक्खी', 'बिना', 'विद्या', 'जीवन भर', 'मनुष्य', 'शरीर' 'मामा जी नमस्ते' आदि के स्थान पर क्रमशः 'हमेशा', 'तकलीफ', 'सज़ा', 'आसमान', 'तरफ', 'मदरसा', 'दफ़ा', 'खूबसूरत', 'ज़ियादा', 'हिन्दुस्तान', 'ताक़तवर', 'नुक़सान', 'शरम', 'गुस्सा', 'रहम', 'बेवक़ूफ़', या 'कम अक़्ल', 'शहद की मक्खी', 'बग़ैर', 'इल्म', 'उमर भर', 'वक़्त', 'बदन', 'मामू साहब सलाम' आदि का ही प्रयोग हुआ है। इस पुस्तक में अरबी-फ़ारसीपन के लिए द्विवेदी जी उत्तरदायी नहीं हैं। उनकी मूल पुस्तक की भाषा हिन्दी थी, शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने उसका हिन्दीत्व नष्ट कर दिया है। यह बात मुखपृष्ठ पर अन्य पुरुष के प्रयोग से भी सिद्ध हो जाती है। सम्भवतः इसी कारण द्विवेदी जी ने शिक्षा-संस्थाओं के लिए फिर कोई पुस्तक नहीं लिखी।

भाषा की रीति के विषय में उनका निश्चित मत था कि हिन्दी एक जीवित भाषा है। उसे किसी परिमित सीमा के भीतर आबद्ध करने में उसके उपचय की हानि है। दूसरी भाषाओं के शब्दों और भावों को ग्रहण कर लेने की शक्ति रखना ही सजीवता का लक्षण है। सम्पर्क के प्रभाव से हिन्दी ने अरबी, फ़ारसी और तुर्की तक के शब्द ग्रहण कर लिए हैं और अब अँगरेजी तक के शब्द ग्रहण करती जा रही है। इसमें हिन्दी की वृद्धि है, ह्रास नहीं। विदेशी भाव, शब्द और मुहावरे ग्रहण करने में केवल यह देखना चाहिए कि हिन्दी उन्हें पचा सकती है या नहीं, उनका प्रयोग खटकता तो नहीं, वे उसकी प्रकृति के प्रतिकूल तो नहीं, हिन्दी हिन्दी ही बनी है या नहीं। मकान, मालिक, नोट, नम्बर आदि शब्द हिन्दी में खप गए हैं, विदेशी नहीं रहे। हाँ, खटकने वाले भावों या मुहावरों का प्रयोग करना ठीक नहीं। दृष्टिकोण (Angle of vision) लागू होना (to be applied) नग्न प्रकृति (naked nature) आदि के प्रयोग से हिन्दी की विशेषता को धक्का पहुँचता है।[1]

---

१ साहित्य सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में दिए गए भाषण (पृ० ४६—४६) के आधार पर

द्विवेदी जी ने इस सिद्धान्त का उचित पालन नहीं किया इसकी समीक्षा ऊपर हो चुकी है। सम्पादक-पद से 'सरस्वती' को लोक-प्रिय बनाने के लिये व अन्य लेखकों की संस्कृत-पदावली के स्थान पर उर्दू शब्दों का सन्निवेश कर दिया करते थे, उदाहरणार्थ—[१]

मूल	संशोधित	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
वास्तु शिल्प	मकान वगैरह बनाने की विद्या	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१	०६
अभ्यन्तर	दरमियान	,,	,,	४	,,
पुष्ट	मुतमौक्ल	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	२	,,
स्फुट	जाहिर	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	६	,,
पश्चात्	बाद	,,	,,	७	,,
कदाचित्	शायद	,,	,,	१४	,,
अन्ततःस्वास्थ्य-हीनता	आखीर में तबियत अच्छी न रहने	,,	,,	,,	,,
भूमि	ज़मीन	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डीदल	१	,,
वयःक्रम	उमर	काशीप्रसाद	एफ० एस ग्राउस	१५	,,
कुछ ही क्षण	ज़रा देर	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डीदल	३	,,
प्रत्येक व्यक्ति	हर आदमी	,,	,,	४	,,
न्याय प्रचलित	कानून जारी था	,,	,,	४	,,

उनके सुधार से अनेक लेखक और पाठक असन्तुष्ट थे। इस कथन की पुष्टि कामता प्रसाद गुरु के निम्नांकित पत्र से हो जाती है—

"अरबी फारसी के क्रम उपयोग के अनुरोध का सबसे बड़ा कारण यह है कि आप आदर्श लेखक हैं, इसलिये आप भाषा को ऐसा रूप न देवें जो या तो पाठकों को न रुचे या हमारी हिन्दी को बीबी बना दे आप थोड़ा लिखा बहुत समझिए

रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा, मन्नन द्विवेदी, जयशंकरप्रसाद आदि की कविताओं प्रेमचन्द्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, ज्वालादत्त शर्मा आदि की आख्यायिकाओं और पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, गंगानाथ झा, श्यामसुन्दरदास, रायकृष्ण दास आदि के लेखों का भी उन्होंने यथा-स्थान सुधार किया है।

'प्रिय प्रवास' के प्रकाशन (सं० १९७१) से द्विवेदी-युग का उत्तरार्द्ध आरम्भ हुआ। उस समय खड़ीबोली काफी मँज चुकी थी और ठोस भावों की व्यंजना में समर्थ थी। अतएव वह काल स्थायी साहित्य-रचना करने में सफल हुआ। द्विवेदी-युग में हिन्दी वाङ्मय के विविध अंगों की आशातीत अभावपूर्ति हुई। इतिहास, भूगोल, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कृषि, गणित, विज्ञान, ज्योतिष आदि पर सहस्रों ग्रन्थ लिखे गए। वाङ्मय के इन अंगों की आलोचना यहां अपेक्षित नहीं है। प्रस्तुत निबन्ध भाषा और साहित्य से ही सम्बन्ध रखता है, अतएव इसमें द्विवेदी-युग के हिन्दी प्रचारकार्य, पत्रपत्रिकाओं, कविता, नाटक, कथा-साहित्य, निबन्ध, भाषा-शैली और आलोचना की ही समीक्षा करना समीचीन है।

प्रचार कार्य

१६ जुलाई, सन् १८९३ ई० को ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। सभा के उद्योग से सन् १८९८ ई० में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने अदालतों में नागरी का प्रचार ऐच्छिक कर दिया और समन आदि के लिए नागरी और उर्दू दोनों लिपियों के प्रयोग की घोषणा की। सभा ने कचहरियों में हिन्दी विद्या लेखकों की युक्ति करके उससे लाभ उठाने का उद्योग किया। सन् १८९९ ई० में प्रान्तीय सरकार ने ४०० रु० (चार सौ रुपया) वार्षिक की सहायता देना आरम्भ किया और १९२१ ई० में वह सहाय १ २००० रु० तक पहुँच गई। सभा ने सैकड़ों नए कवियों और सहस्रों अज्ञात ग्रन्थों की खोज की। १९२१ ई० से १९२३ ई० तक के लिए पंजाब सरकार ने भी ५०० रु० की सहायता दी। गवेषणा के साथ ही साथ सभा ने 'पृथ्वीराज रासो', 'जायसी ग्रन्थावली', 'वैज्ञानिक-कोष', 'हिन्दी व्याकरण' आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया। प्रकाशनार्थ भी युक्त प्रान्त की सरकार ने कभी २०० रु० और कभी ३०० रु० की सहायता दी। १९१४ ई० में 'मनोरंजन पुस्तकमाला' के अन्तर्गत सभा ने विविध-विषयक और सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ किया। अपनी 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के अतिरिक्त सरस्वती और हिन्दी साहित्य [illegible] के सम्पादन का श्रेय भी पूर्वोक्त सभा को ही है

प्रयाग का हिंदुस्तानी अकैडमी की मासिक पत्रिका से। मेरठ की 'देवनागरी प्रचारिणी सभा', आरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा', कलकत्ता की 'एक लिपि विस्तार परिषद्', एवं 'हिन्दी साहित्य परिषद्', प्रयाग की 'नागरी प्रवर्द्धिनी सभा', छतरपुर की 'काव्यलता सभा', जालन्धर और मैनपुरी की 'नागरी प्रचारिणी सभा', आदि संस्थाएँ भी देव नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार, प्रसार तथा उन्नयन में लगी हुई थीं।[1]

परस्पर-विचार-विनिमय, मातृभाषा की हितचिन्तना और उसकी उन्नति के उपाय निश्चित करने के लिए काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने १०-११-१२ अक्टूबर १९१० ई० को साहित्य-सम्मेलन की योजना की उसमें हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी को भारत की राष्ट्रलिपि बनाने तथा सरकारी कार्यालयों, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी को उचित स्थान दिलाने के लिए अनेक ओजपूर्ण प्रस्ताव पास किए। सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प्रयाग की 'नागरी प्रवर्द्धिनी सभा' के तत्वावधान में हुआ और उसे स्थायी रूप दिया गया। सरकारी अदालतों, पत्रों, उत्सव के कार्यों तथा भावी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी को उचित स्थान देने, हिन्दी सभाओं से नाटक खेलने, सम्मेलन परीक्षाएँ प्रचलित करने और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न करने के विविध प्रस्ताव पास किए गए। उसी अधिवेशन में साहित्य-सम्मेलन के उद्देश्यों की निश्चित रूप रेखा भी निर्धारित की गई।[2]

---

१. प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य-विवरण, पृष्ठ २ और ३, के आधार पर।

२ (क) हिन्दी साहित्य के सब अंगों की उन्नति का प्रयत्न करना।
(ख) देवनागरी लिपि का देश भर में प्रचार करना और देशव्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न करना।
(ग) हिन्दी को सुगम, मनोरम और प्रिय बनाने के लिए समय समय पर उसकी शैली के संशोधन और उसकी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करना।
(घ) सरकार, देशी राज्यों, कालेज, यूनीवर्सिटी और अन्य स्थानों, समाजों तथा जनसमूहों में देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार का उद्योग करते रहना।
(च) हिन्दी ग्रन्थकारों, लेखकों, प्रचारकों और सहायकों को समय समय पर उत्साहित करने के लिए पारितोषिक, प्रशंसापत्र, पदक आदि से सम्मानित करना।
(छ) उच्चशिक्षा प्राप्त युवकों में हिन्दी का अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना।
(ज) जहाँ आवश्यकता समझी जाए वहाँ पाठशाला समिति तथा पुस्तकालय स्थापित करने और [illegible]

तीसरे और चौथे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य विवरण से सिद्ध है कि सं० १९६६ से प्रयाग, गोरखपुर, बुलन्दशहर और अमृतसर की नागरी प्रचारिणी सभाएँ, कलकत्ता की 'हिन्दी साहित्य परिषद' तथा आगरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा' और सं० १९७० में लहेरियासराय की 'छात्रोपकारिणी सभा', हाथरस, लक्ष्मीपुर-बीरी तथा लाहौर की नागरी प्रचारिणी सभाएँ, वेनुगोमा की 'हिन्दी हितैषिणी सभा', भागलपुर की 'हिन्दी सभा', मुरादाबाद की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा', लखनऊ की 'हिन्दी साहित्य सभा', चित्तौड़ की 'विद्या प्रचारिणी सभा' और कोटा की 'हिन्दी साहित्य समिति' आदि संस्थाएँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बद्ध हुईं।[1]

सं० १९६९-७० से बंगाल, बिहार, मध्यप्रान्त, गुजरात, राजपूताना, पंजाब आदि प्रान्तों और अनेक देशी राज्यों में धूमधाम से हिन्दी का प्रचार प्रारम्भ हुआ। सं० १९७२ में गुजराती और मराठी साहित्य-सम्मेलनों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करके अपने शिक्षालयों में उसे सहायक भाषा की भाँति पढ़ाने का मन्तव्य स्थिर किया। सं० १९७५ में महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में देवीदास गाँधी, पंडित रामदेव और सत्यदेव ने मद्रास में हिन्दीप्रचार किया। सं० १९७५ में सम्मेलन ने हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की। एकादश सम्मेलन में चालीस सहस्र का दान मिला और उसके सूद से 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' की आयोजना की गई। सं० १९८२ में सम्मेलन ने बृहत् कवि सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलन की भी आयोजना की।[2] उसी वर्ष आन्ध्र में सम्मेलन का विशिष्ट अधिवेशन हुआ और दक्षिण में हिन्दी की प्रतिष्ठा हुई।[3]

इंडियन प्रेस, प्रयाग, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, खड्गविलास प्रेस, पटना, भारत जीवन प्रेस, काशी, हरिदास कम्पनी, कलकत्ता, हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मंडली, खंडवा, हिन्दी-ग्रन्थ-

---

(झ) हिन्दी साहित्य के विद्वानों को तैयार करने के लिए हिन्दी की उच्च परीक्षाएं लेने का प्रबन्ध करना।

(ट) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उद्देशों की सिद्धि और सफलता के लिए जो अन्य उपाय आवश्यक और उपयुक्त समझे जाएं, उन्हें काम में लाना।

—द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण।

१. हिन्दी-के साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण के आधार पर।

२. प्रथम बार सं० १९७९ में साहित्य विषय पर पद्मसिंह शर्मा को उनकी बिहारी सतसई पर, दूसरी बार सं० १९८० में समाजशास्त्र पर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को उनकी भारतीय प्राचीन लिपिमाला पर और तीसरे बार सं० १९८१ में प्रो० सुधाकर लिखित मनोविज्ञान नामक दार्शनिक रचना पर दिय गया।

३ हिन्दी साहित्य के कार्य-विवरण के आधार पर

रत्नाकर-कार्यालय, गम्भट आदि ने हिन्दी-ग्रन्थों, विशेष कर उपन्यासों, का प्रकाशन करके हिन्दी का प्रचार और प्रसार किया। आर्यसमाजियों, सनातन-धर्मियों, ईसाइयों आदि ने अपने धर्म-प्रचार के लिये हिन्दी को ही माध्यम बनाकर उसके व्यवहार की वृद्धि की।

१९१० ई० में बड़ौदानरेश ने बरनाक्यूलर स्कूलों की पाँचवीं और छठवीं कक्षाओं के लिए हिन्दी अनिवार्य कर दी और हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन की भी व्यवस्था की।[1] सन १९१५ में युक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग ने आठवीं कक्षा तक हिन्दी का माध्यम स्वीकार किया। उस समय कांगड़ी के गुरुकुल, ज्वालापुर के महाविद्यालय, हरिद्वार के ऋषिकुल, वृन्दावन के गुरुकुल तथा प्रेम-महाविद्यालय आदि संस्थाएँ हिन्दी-माध्यम द्वारा ही शिक्षा देती थीं। द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने और विश्व-विद्यालयों में हिन्दी साहित्य को पाठ्य विषय निर्धारित करने के लिए विशेष आन्दोलन हुआ। सन १९७६ में कलकत्ता विश्व-विद्यालय और सन १९२० ई० में काशी विश्वविद्यालय ने हिन्दी साहित्य को अन्य विषयों के समकक्ष ही पाठ्यक्रम में स्थान दिया।

अफ्रीका में श्री वी. मदनजात, मोहनदास कर्मचन्द गांधी, भवानी दयाल सन्यासी आदि ने हिन्दी-प्रचार किया। सन्यासी जी ने अफ्रीका के विभिन्न स्थानों में हिन्दी-संस्थाएँ खोलीं—क्लेर स्टेट (नेटाल) में 'हिन्दी-आश्रम', 'हिन्दी-विद्यालय', 'हिन्दी-पुस्तकालय', 'हिन्दी-यन्त्रालय और' 'हिन्दी प्रचारिणी सभा', जर्मिस्टन में 'हिन्दी नाइट स्कूल', 'हिन्दी फुटबाल क्लब' और 'हिन्दी बालसभा', डेन हाउसर में हिन्दी प्रचारिणी सभा' और 'हिन्दी पाठशाला' एवं प्रिटोरिया में 'हिन्दी पाठशाला' आदि।[2] ट्रान्सवाल में सिडनटम स्थान में 'हिन्दी जिज्ञास्य सभा नेशनल सोसाइटी' की स्थापना हुई।[3] सं० १९७५ में रंगून में हिन्दी पुस्तकालय खुला।[4] दिसम्बर, १९१६ ई० में अफ्रीका में प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ।[5] द्विवेदी-सम्पादित 'सरस्वती' स्वयं एक आप्त विश्व-विद्यालय बन गई थी। उसने भारत के भीतर और बाहर कितने ही अर्द्ध-शिक्षितों और अल्पज्ञों को शिक्षित, बहुज्ञ, लेखक तथा कवि बनने के लिए प्रेरित किया। सम्पादक द्विवेदी ने संसार के विभिन्न प्रदेशों में सरस्वती भक्तों की सृष्टि की: इस प्रकार द्विवेदी-युग में देश और विदेश में हिन्दी की प्रतिष्ठा हुई।

---

१. प्रथम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण।
२ 'साहित्य सम्मेलन पत्रिका', भाग ३, अंक १।
३ 'इंदु', कला चार, खंड १, पृ० १९९।
४ सम्मेलन पत्रिका भाग ३, अंक २ ३ पृ० ८७
५ 'सम्मेलन पत्रिका भाग ४ ५ पृ २०५

पत्र पत्रिकायें

द्विवेदी-युग के पूर्व, उन्नीसवीं ई० शती के उत्तरार्द्ध में केवल दो ही दैनिक पत्र निकल सके थे 'सुधावर्षण' (१८५४ ई०) और 'भारतमित्र' (१८५७ ई०) दोनों ही अकाल काल-कवलित हो गए। १९११ ई० में दिल्ली-दरबार के अवसर पर 'भारतमित्र' दैनिक रूप में पुनः प्रकाशित हुआ किन्तु जनवरी १९१२ ई० में बन्द हो गया। मार्च, १९१२ ई० में दैनिक रूप में वह फिर निकला और २२ वर्ष तक चलता रहा। १९१४ ई० में कुछ मारवाड़ी सज्जनों ने 'कलकत्ता समाचार' निकाला। कुछ ही वर्ष बाद उसका अन्त हो गया। उन्हीं दिनों 'वेंकटेश्वर समाचार' भी कुछ काल तक दैनिक रूप में प्रकाशित हुआ था। १९१७ ई० में अम्बिकादत्त वाजपेयी के सम्पादकत्व में मूलचन्द अग्रवाल ने दैनिक 'विश्वमित्र' निकाला। वाजपेयी जी ने कलकत्ते से कुछ काल तक 'स्वतंत्र' भी निकाला। उपर्युक्त पत्रों ने समाचार तो अवश्य दिए परन्तु निश्चित विचारों का उल्लेखनीय प्रचार नहीं किया। १९२८ ई० में काशी से 'आज' प्रकाशित हुआ। उसका विशेष लक्ष्य था भारत के गौरव की वृद्धि और उसकी राजनैतिक उन्नति।[1] उसने राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किया। देश-विदेश के समाचारों के अतिरिक्त सम्पादकीय अग्रलेखों और लेखकों की रचनाओं के द्वारा उसने मनोरंजक और उपयोगी सामग्री पाठकों को भेंट की। भाषा, भाव और शैली सभी दृष्टियों से उसने हिन्दी-समाचारपत्र-जगत में युगान्तर उपस्थित किया।

बीसवीं ईसवी शती के आरम्भ में 'भारत मित्र', 'वंगवासी', 'वेंकटेश्वर-समाचार' आदि उल्लेखनीय साप्ताहिक पत्र थे। लखनऊ के 'आनन्द' (लगभग १९०५ ई०) और 'अवध-वासी' (१९१४ ई०) का जीवन मृत्यु-सा ही था। १९०७ ई० में पं० मदनमोहन मालवीय के संरक्षण और पुरुषोत्तमदास टंडन के सम्पादकत्व में 'अभ्युदय' प्रकाशित हुआ। माधवराव सप्रे ने नागपुर से 'हिन्दी-केसरी' निकाला परन्तु वह कुछ ही दिन चल सका। १९०९ ई० में सुन्दरलाल के सम्पादकत्व में 'कर्मयोगी' निकला और कुछ समय बाद पाक्षिक से साप्ताहिक होकर १९१० ई० में बन्द हो गया। १९११-१२ ई० में कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी ने

---

१ "हमारा उद्देश्य देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातन्त्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ाय अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें, उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो। यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।"

आज सार २८ १९७७ विक्रमी

रजत जयंती अंक पृष्ठ ३७

प्रताप' निकाला १९१६ ई० में सुन्दरलाल ने दूसरा पत्र भविष्य निकाला जो साप्ताहिक से दैनिक हो कर बन्द हो गया। १९२०, २१ ई० के असहयोग आन्दोलन के आस पास 'कर्मवीर' (खंडवा), 'स्वराज्य' (खंडवा), 'सैनिक' (आगरा), 'स्वदेश' (गोरखपुर), आदि अनेक साप्ताहिक पत्र निकले। 'भारतमित्र' आदि साप्ताहिक पत्रों की राजनैतिक दृष्टि नरम थी। टंडन जी के सम्पादन काल में 'अभ्युदय' के विचार भी नरम रहे किन्तु कृष्णकान्त मालवीय के आने पर वह गरम दल का समर्थक हो गया। 'हिन्दी केशरी' लोकमान्य तिलक के 'मराठी केसरी' का अनुवाद मात्र था। 'कर्मयोगी' के राजनैतिक विचार उग्रतम थे, अतएव वह सरकार का कोपभाजन हुआ। राष्ट्रीय 'प्रताप' सच्चे अर्थ में जनता का पत्र था। 'कर्मवीर' आदि उसी के आदर्श के अनुपालक थे। 'भविष्य' की निर्भीक और तेजस्वी नीति ने उसे भी शीघ्र ही सरकार की शनिदृष्टि का लक्ष्य बना डाला।[1]

द्विवेदी-युग के सम्पूर्ण पत्र-साहित्य का आप्त विवरण देने के लिए स्वतन्त्र गवेषणा करने और निबन्ध लिखने की आवश्यकता है। प्रस्तुत अवच्छेद उसका सिंहावलोकन भर कर सकते हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के इक्कीसवें कार्य विवरण से प्रकट है कि १९१३, १४ ई० में केवल 'भारतमित्र' ही दैनिक पत्र था। 'हिन्दी बंगवासी', 'भारतमित्र', 'वेंकटेश्वर समाचार', 'वीर भारत', 'अभ्युदय', 'विहार बन्धु', 'भारत जीवन', 'सद्धर्म प्रचारक', 'आनन्द', 'आर्य मित्र', 'मिथिला मिहिर', 'जयाजी प्रताप', 'शुभचिन्तक', 'शिक्षा', 'फौजी अखबार', 'भारत', 'सुदशा प्रवर्तक', 'पाटलिपुत्र', 'अलमोड़ा अखबार', आदि साप्ताहिक थे। 'राजपूत', 'क्षत्रिय मित्र', 'जैन मित्र', 'जैन शासन', 'आचार्य' आदि का प्रकाशन पाक्षिक था। 'सरस्वती' 'मर्यादा', 'प्रभा', 'इंदु', 'लक्ष्मी', 'नवनीत', 'चित्रमय जगत', 'स्वर्ग माला' 'हितकारिणी', 'एजुकेशनल गजट' 'बाल-हितैषी', 'नवजीवन', 'जैन हितैषी', सत्यवादी', 'वैदिक सर्वस्व' आदि मासिक पत्रिकाएँ थीं। 'सुधानिधि', 'वैद्य', 'वैद्य-कल्पतरु', आरोग्य जीवन' आदि वैद्यक विषय के 'क्षत्रिय समाचार', 'अग्रवाल', 'जैन गजट', 'दिगम्बर जैन', 'कान्यकुब्ज हितकारी', 'गौड हितकारी', 'पालीवाल ब्राह्मणोदय', 'सनाढ्य', 'माहेश्वरी', 'तैलीस समाचार', 'जांगीडा समाचार', 'कलवार मित्र' आदि जातीय 'स्त्री दर्पण', 'गृहलक्ष्मी', 'चाद', 'स्त्रीधर्मशिक्षक', आदि स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी, 'कन्यामनोरंजन' और 'कन्यासर्वस्व' सचित्र पत्र थे। 'जासूस' 'उपन्यास लहरी', 'उपन्यास बहार', 'उपन्यासमाला'

पा० टि० १ पत्रों का उपर्युक्त विवरण आज के रजत जयंती अंक के आधार पर दिया गया है

आदि उपन्यासों की मासिक पत्रकें थीं। इनके अतिरिक्त 'स्वदेशबान्धव', 'गढ़वाली', 'भास्कर', 'ब्राह्मणसर्वस्व', 'औदुम्बर', 'साहित्यपत्रिका', चैतन्यचन्द्रिका, आत्मविद्या', 'आर्यावर्त्त', 'मारवाड़ी', 'विहारपत्रिका', 'प्रेम' 'कानपुरगजट', 'जैनतत्वप्रकाश', 'नागरी प्रचारक', 'देहाती जीवन', 'धर्मकुसुमाकर', 'भूमिहारब्राह्मणपत्रिका', 'जैनसिद्धान्तभास्कर' आदि भी प्रकाश में थे।

१६१७, १८ ई० में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय में ८० पत्र-पत्रिकाएँ आती थीं। सम्मेलन के पंचदश अधिवेशन के अवसर पर आयोजित प्रदर्शिनी में निम्नांकित पत्र प्रस्तुत थे:—[1]

दैनिक

१. आज	काशी	२. स्वतंत्र	कलकत्ता
३. अर्जुन	देहली	४. कलकत्तासमाचार	,,

अर्द्ध साप्ताहिक

१. प्रवीर नागपुर ....

साप्ताहिक

१. तरुण राजस्थान	अजमेर	२. हिन्दी राजस्थान	देहली
३. आर्य जगत	लाहौर	४. मारवाड़ी	नागपुर
५. रंगीला	नयाधाम	६. मतवाला	कलकत्ता
७ प्रेम	वृन्दावन	८. मौजी	कलकत्ता
९. अग्रसर	कलकत्ता	१०. जैनमित्र	सूरत
११. कर्तव्य	इटावा	१२ उदय	सागर
१३ हिन्दी केसरी	बनारस	१४. शक्ति	अल्मोड़ा
१५. महिला सुधार	कानपुर	१६. श्रमिक	कलकत्ता
१७. गरीब	बिजनौर	१८. स्वदेश	गोरखपुर
१९ तिरहुत समाचार	मुजफ्फरपुर	२०. महावीर	हरद्वार
२१. मारवाड़ी ब्राह्मण	कलकत्ता	२२. सूर्य	काशी
२३. सिन्धु समाचार	शिकारपुर	२४. कैलाश	मुरादाबाद
२५ देश	पटना	२६. भविष्य	कानपुर
२७. शंकर	मुरादाबाद	२८. हिन्दू सम्बन्ध सहायक	सहारनपुर

पाक्षिक

गढ़वाली देहरादून

१ पंचदश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य विवरण

मासिक

१. मनाढ्य हितकारी	झांसी	२. निगमागम चन्द्रिका	बनारस
३. विद्यार्थी	प्रयाग	४. मालव मयूर	काशी
५. देशबन्धु	कलकत्ता	६. मनाढ्योपकारक	आगरा
७. हिन्दी प्रचारक	मद्रास	८ ब्राह्मण	देहली
९. शिशु	प्रयाग	१०. सुखमार्ग	अलीगढ
११. हलवाई वैश्य संरक्षक	काशी	१२. हिन्दी गल्प माला	काशी
१३. सम्मेलन पत्रिका	प्रयाग	१४. तिजारत	शाहजहांपुर
१५. ब्राह्मण सर्वस्व	इटावा	१६. सम्प्रदाय	बड़ौदा
१७. गहोई वैश्य सेवक	उरई	१८ परमार बंधु	जबलपुर
१९. प्रजा सेवक	हुशंगाबाद	२०. बरन बाल चंद्रिका	काशी
२१. द्विजराज	प्रयाग	२२. अनुभूत योग माला	इटावा
२३. कलवार क्षत्रिय मित्र	प्रयाग	२४. क्षत्रिय मित्र	काशी
२५. ब्रह्मचारी	हरिद्वार	२६. गृह लक्ष्मी	प्रयाग
२७. भ्रमर	बरेली	२८. छत्तीसगढ	रायगढ
२९. सरस्वती	प्रयाग	३०. बालसखा	प्रयाग
३१. महिला महत्व	कलकत्ता	३२ माधुरी	लखनऊ
३३. प्रभा	कानपुर		

फुटकर

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका	काशी	२. कान्करन्स	अजमेर
३ युगान्तर	कलकत्ता	४. लोकमान्य	बोंदा
५ कान्यकुब्ज	काशी	६ धर्म रक्षक	कलकत्ता
७. महिलामुधाकर	कानपुर	८ माहेश्वरी	कलकत्ता
९. सनातन धर्म	कलकत्ता	१०. समालोचक	आगरा
११. माहेश्वरी सुधाकर	अजमेर	१२ समालोचक	फर्रुखाबाद
१३. समन्वय	कलकत्ता	१४ सावधान	
१५. नाई ब्राह्मण	कानपुर	१६. आर्य	लाहौर
१७ शिक्षामृत	नरसिंहपुर	१८ मोहनी	दामोह
१९. आभीर समाचार	शिकोहाबाद	२०. जैनगजट	कलकत्ता
२१ क्षत्रिय वीर	पौड़ी	२२. योग प्रचारक	काशी
२३ कलौधन मित्र	भागलपुर	२४ कलवार केसरी	लखनऊ
२५. कवि कौमुदा	प्रयाग	२६ दिगम्बर जन	सूरत

२७. जैन महिला आदर्श	सूरत	८. मार्वी मारुस्व		प्रयाग
२९. कुमि क्षत्रिय हितैषी	भरतपुर	३०. स्वास्थ्य		कानपुर
३१. शान्ति	सहारनपुर	३२. शिक्षा प्रभाकर		अलीगढ़
३३. प्रताप	कानपुर	२४. शिक्षासेवक		पटना

काशीनागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय में द्विवेदी-युग के अधिकांश पत्रों की प्रतियां रक्षित हैं।[1]

१९०४ ई० में वी. मदनजीत के प्रयत्न से डरबन नगर से 'इंडियन ओपिनियन' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। कुछ साल बाद आर्थिक संकट के कारण वह मोहनदास कर्मचन्द गांधी को सौंप दिया गया और उन्होंने फीनिक्स नगर से उसका प्रकाशन किया। अफ्रीका में ही स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी के उद्योग से १९१२ ई० में 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। १९२२ ई० में साप्ताहिक 'हिन्दी' का प्रकाशन आरम्भ किया जो तीन वर्ष बाद बन्द हो गई। १९१२ ई० में ही 'मास्लिम इंडियन टाइम्स' प्रकाशित हुआ।[2] विदेशों में और भी अनेक पत्र प्रकाशित हुए जिनका विवरण सम्प्रति अलभ्य है।

द्विवेदी-युग के अधिकांश लेखक सम्पादक थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में रक्षित पत्रिकाओं की फाइलों से सिद्ध है कि श्यामसुन्दरदास ('नागरीप्रचारिणी पत्रिका' और 'सरस्वती)' राधाकृष्णदास ('नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'सरस्वती)' भीमसेन शर्मा (ब्राह्मणसर्वस्व) कृष्णकान्त मालवीय (मर्यादा) रामचन्द्र शुक्ल (नागरीप्रचारिणी

---

१ अबलाहितकारक, आत्मविद्या, आदर्श, आर्य, आर्यमहिला, इन्दु, उपन्याससागर, उषा, कथामुखी, कन्यामनोरंजन, कन्यासर्वस्व, कलाकुशल, कवीन्द्रवाटिका, कालिन्दी, किसानोपकारक, कृषिसुधार, गृहलक्ष्मी, गृहस्थ, चन्द्रप्रभा, चाँद, चित्रमयजगत्, जासूस ज्योति, ज्ञानशक्ति, देहाती, नवजीवन, नवनीत, नागरीप्रचारिणीपत्रिका, नागरीहितैषिणी पत्रिका, निगमागमचन्द्रिका, परोपकारी, पाचाल पंडिता पीयूषप्रवाह, प्रतिभा, प्रभा, प्रभात, प्रेमविलास, प्रियंवदा, बालक, बालप्रभाकर, बालहितैषी, बिजली ब्रह्मचारी, भारतमित्र, भारती, भारतेन्दु, भारतोदय, भास्कर भ्रमर, मनोरंजन, मनोरमा, मर्यादा, महिलादर्पण, माधुरी, रसिकरहस्य, रसिकवाटिका, लक्ष्मी विकास विज्ञान विद्यार्थी, विद्याविनोद, विश्वविद्याप्रचारक, श्रीकमला, श्रीशारदा, संगीतामृतप्रवाह, संसार, समन्वय, सम्मेलन पत्रिका, साहित्य, साहित्यपत्रिका, सुधानिधि, स्त्रीदर्पण, स्त्रीधर्मशिक्षा, स्वदेशबान्धव, स्वार्थ, हिन्दीशब्दमाला, हिन्दी प्रचारक, हिन्दी प्रदीप, हितकारिणी, आदि पत्रिकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं

२ आज के अंक के आधार पर

पत्रिका) गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (नागरीप्रचारिणी पत्रिका) लाला भगवानदीन (लक्ष्मी), रूपनारायण पाडेय (नागरी प्रचारक), बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी-प्रदीप), गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (ब्रह्मचारी), पद्मसिंह शर्मा (परोपकारी और भारतोदय), सन्तराम बी० ए० (उषा और भारती), लाला सीताराम बी० ए० (विज्ञान), ज्वालादत्त शर्मा (प्रतिभा), गोपालराम गहमरी (समालोचक और जासूस), माधवप्रसाद मिश्र (सुदर्शन), द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी (यादवेन्द्र), यशोदानन्दन अखौरी (देवनागरवत्सर), सम्पूर्णानन्द (मर्यादा), किशोरीलाल गोस्वामी (वैष्णव सर्वस्व), छविनाथ पाडेय (साहित्य), मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव (स्वार्थ), शिवपूजनसहाय (आदर्श वर्ष), वियोगी हरि (सम्मेलन पत्रिका), चन्द्रमौलि सुकुल (कान्यकुब्ज), गणेशशंकर विद्यार्थी (प्रभा) बालकृष्ण शर्मा (प्रभा), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (सरस्वती) आदि ने सम्पादक का आसन भी ग्रहण किया था।

उस युग का सामयिक साहित्य मुख्यतः 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'मर्यादा' 'इंदु', 'चाँद', 'प्रभा', और 'माधुरी' मे प्रकाशित हुआ। 'सरस्वती' की अग्रजा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' १९०४ ई० मे त्रैमासिक थी, १९१५ ई० मे मासिक हुई और फिर १९७७ वि० में त्रैमासिक हो गई। उसका उद्देश सामान्य पत्रिकाओं से भिन्न था। आरम्भ मे तो उसने कविता आदि विषयों को भी स्थान दिया था किन्तु आगे चलकर केवल शोध-सम्बन्धी पत्रिका रह गई। 'मर्यादा' आदि अन्य पत्रिकाएं 'सरस्वती' की अनुजा थीं। रूप और गुण की सभी दृष्टियों मे उन्होंने 'सरस्वती' का अनुकरण किया। 'मर्यादा', 'प्रभा' और 'माधुरी' के अधिकांश लेखक भी द्विवेदी जी के ही शिष्य थे।[1]

भारतेन्दु-युग की पत्रिकाओं की चर्चा भूमिका में हो चुकी है। उनकी भाषा अत्यन्त लचर थी। उनका साहित्य अत्यन्त साधारण कोटि का था। यद्यपि द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध का पत्र-साहित्य अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कुछ रचनाओं को छोड़ कर निस्सन्देह ऊँचा नहीं है तथापि उसके उत्तरार्द्ध मे मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, गोपालशरणसिंह, रामनरेश त्रिपाठी, प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचन्द्र शुक्ल, सूर्यकान्त त्रिपाठी, चंडी प्रसाद हृदयेश, चतुरसेन शास्त्री की रचनाएँ महत्वपूर्ण और स्थायी साहित्य की निधि हैं।[2]

१ इस कथन का सरस्वती , के विस्तारपूर्वक हो चुका

कविता

युग-निर्माता का आसन ग्रहण करने के पूर्व ही द्विवेदी जी ने हिन्दी-कवियों को युगान्तर करने की सूचना दे दी थी। अपने 'कविकर्तव्य' (सरस्वती १९११ ई०) लेख में उन्होंने समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातों का विचार करके कवियों को उनका कर्तव्य बतलाया था। द्विवेदी जी की महत्ता इस बात में भी है कि उस लेख में उन्होंने जो कुछ भी कहा था उसे सफलतापूर्वक पूर्ण किया और कराया। उपर्युक्त सम्पूर्ण लेख उद्धृत करने का यहाँ अवकाश नहीं है। अतएव द्विवेदी जी की उस भविष्य वाणी और आदेश के मुख्य मुख्य वाक्यों को लेकर ही उस युग की कविता की समीक्षा की जायगी।

द्विवेदी-युग ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में पहली बार पद्य और गद्य दोनों ही को काव्य-विधान का माध्यम स्वीकार किया।[1] उस युग के कवियों ने हिन्दी साहित्य में अद्यावधि प्रयुक्त सभी विधानों में कविताएँ लिखीं। अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय विधान प्रबन्ध काव्य का था। इसके अनेक कारण थे। विश्व साहित्य की समीक्षा से यह बात सिद्ध हो जाती है कि ग्राम बोलियों में कविता का आरम्भ लोक गीतों से और संस्कृत भाषाओं में प्रबन्ध काव्यों से हुआ है। वाल्मीकि का 'रामायण', होमर का 'इलियड', आदि काव्य इस कथन के प्रमाण हैं। द्विवेदी-युग खड़ी बोली कविता का आरम्भिक काल था, अतएव कथानक की सहायता से ही कविता लिखना कवियों को अधिक सहज जान पड़ा। प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं ने ही कवियों का ध्यान आकृष्ट किया। प्रबन्ध काव्य जीवन के तथ्यों को मूर्तरूप में उपस्थित कर देता है जिससे पाठक अनायास ही प्रभावित हो जाता है। द्विवेदी जी के आदेशानुसार[2] उस युग के उपदेश प्रवृत्ति प्रधान कवियों ने प्रबन्ध काव्यों में आदर्श चरित्रों का अवलम्बन करके पाठकों को लाभान्वित करने का प्रयास किया। प्रबन्ध काव्यों के तीन रूप थे—पद्य प्रबन्ध, खंड काव्य और महाकाव्य। 'भूमिका' और 'कविता' अध्याय में पद्यनिबन्धों की विशेषता बतलाते हुए यह कहा जा चुका है कि वे आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक नूतन विधान के रूप में प्रतिष्ठित हुए। द्विवेदी-युग के

---

१. "गद्य और पद्य दोनों ही में ही कविता हो सकती है।" द्विवेदी जी
'कविकर्तव्य'—सरस्वती १९०१ ई०, पृष्ठ २३२।

२. "रसकुसुमाकर और 'जसवन्तजसोभूषण' के समानग्रन्थों की इस समय आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि आदर्शपुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी साहित्य को अवश्य लाभ होता।"
कविसमय' रसज्ञरंजन पृष्ठ ८

पूर्व उनका प्रयोग मात्र हुआ था। द्विवेदी जी ने उनकी रचना को प्रोत्साहन दिया।[1] द्विवेदी सम्पादित 'सरस्वती' निबंधों से भरी हुई है, उदाहरणार्थ १९१० ई० की 'सरस्वती' में प्रकाशित मैथिलीशरण गुप्त की 'कीचक की नीचता', 'कुन्ती और कर्ण' आदि। ये पद्य कभी तो खंड काव्यों की पद्धति पर एक ही छन्द में लिखे गए, जैसे उपर्युक्त 'कुंती और कर्ण', कभी गीत प्रबंध के रूप में अनेक छन्दों का सम्मिश्रण था, यथा लाला भगवानदीन का 'वीर पंचरत्न' और कभी पद्य-गीतों के रूप में जैसे मैथिलीशरण गुप्त की 'पत्रावली'।

प्रबन्ध काव्य का दूसरा रूप खण्ड काव्य था। खड़ी बोली के अधिकांश सुन्दर खण्ड काव्य द्विवेदी युग में ही लिखे गए, उदाहरणार्थ मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) 'किसान' (सं० १९७४) और 'पंचवटी' (स० १९८२) रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक' (१९२० ई०), प्रसाद का 'प्रेम पथिक' (१९१४) सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य विजय' (सं० १९७१), सुमित्रानन्दन पंत कृत 'ग्रन्थि' (१९२० ई०) आदि। प्रबन्ध काव्य का तीसरा रूप महाकाव्य था। खड़ी बोली के प्रथम दो महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' (सं० १९७१) और 'साकेत' (अधिकांश सं० १९८२ तक ही लिखित किन्तु ग्रन्थ १९८८ वि० में प्रकाशित) द्विवेदी युग में ही लिखे गये। यद्यपि संस्कृत आचार्यों के बताए हुए महाकाव्य के सभी लक्षण इन ग्रन्थों में नहीं पाए जाते तथापि ये महान् काव्य होने के कारण महाकाव्य अवश्य हैं।

द्विवेदी-युग की कविता का दूसरा विधान मुक्तक रचना के रूप में हुआ। मुक्तक रचना के मूल में कवियों की अनेक प्रवृत्तियाँ काम कर रही थीं। पहली प्रवृत्ति सौन्दर्य व्यंजना की थी। उन कवियों की सौन्दर्य विषयक इयत्ता भी अपनी थी। उनकी यह प्रवृत्ति कहीं तो आलंकारिक आदि चमत्कार के रूप में,[2] कहीं उक्ति वैचित्र्य के रूप में[3] और कहीं मार्मिक अनुभूति की हृदयहारी अभिव्यक्ति के रूप में[4] कलित हुई। दूसरी प्रवृत्ति समस्यापूर्ति की थी[5] तीसरी प्रवृत्ति उपदेशक की थी। यह तीन रूपों में व्यक्त हुई। कहीं सीधे उपदेश

१. "समस्यापूर्ति के विषय को छोड़कर, अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुनकर, कवि को यदि बड़ी न होसके तो छोटी ही स्वतंत्र कविता करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिन्दी में प्रायः अभाव है।"

द्विवेदी जी—'रसज्ञरंजन', पृष्ट १३।

२. उदाहरणार्थ 'उद्धवशतक' आदि

३. 'चुभते चौपदे' आदि।

४. गोपालशरणसिंह का 'व्रजवर्णन', 'वह छवि' आदि ('माधवी' में संकलित)।

५. उदाहरणार्थ राजनैतिक कविता के संदर्भ में उद्धृत नाथूराम शर्मा की उक्ति है की

क रूप म कहीं सूक्ति क रूप म और कर अन्योक्ति के रूप म तीसर काव्य विधान क रूप मे वे प्रबन्ध मुक्तक थे जिनमे प्रबन्ध का कथानक और मुक्तक की स्वच्छन्दता एक साथ थी, उदाहरणार्थ 'आंसू' (१९२५ ई०) गीतों या गीतियों ने काव्यविधान का चौथा रूप प्रस्तुत किया। मौलिकता की दृष्टि से इन गीतों के पाच प्रकार है। भारतस्तव (श्रीधर पाठक) आदि गीत संस्कृत के 'गीतगोविन्द' आदि के अनुकरण पर लिखे गए। श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय, वियोगीहरि आदि ने हिन्दी की भक्तिकालीन पद-परम्परा की पद्धति पर गीतों की रचना की, उदाहरणार्थ रामचरित उपाध्याय का 'भव्यभारत' (सरस्वती, भाग २१, संख्या ६) सुभद्रा कुमारी चौहान के 'झांसी की रानी' आदि गीत लोकगीतानुकरण के रूप में आए।[1] उस युग के शोकगीत, प्रबन्धगीत और पत्रगीत अंगरेजी के एलेजी, बैलड आदि के बहुत कुछ अनुरूप हैं। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि ने उपर्युक्त प्रभावों से युक्त गीत भी लिखे जिनमें भाव, भाषा और छन्द सभी में नवीनता थी, उदाहरणार्थ पंत का 'परिवर्तन'। शैली की दृष्टि से इन गीतों का प्रचार वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक या पद्यात्मक था और आकार एकछन्दोमय, मिश्रछन्दोमय या मुक्तछन्दोमय था। द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध में भाषा के मंज जाने पर उच्चकोटि के कलात्मक गीतों की रचना हुई।

काव्यविधान का पाचवा रूप गद्यकाव्य था। हिन्दी मे पद्य ही अब तक कविता का माध्यम था। गद्यकाव्य के आविर्भाव और विकास के कारण भी द्विवेदी-युग का हिन्दी साहित्य के इतिहास में निराला स्थान है। द्विवेदी जी ने स्वय ही 'प्लेगस्तव राज' और 'समाचारपत्रों का विराट् रूप' दो काव्यात्मक गद्यप्रबन्ध लिखे थे। 'तुम हमारे कौन हो ?'[2] आदि गद्य रचनाओं में भी पर्याप्त कवित्व था। परन्तु इन आरम्भिक प्रयासों में आधुनिक हिन्दी-गद्यकाव्य का रूप निखर नहीं सका। हिन्दी गद्य का रूप संस्कृत और परिष्कृत न होने के कारण उसमे काव्योचित व्यंजनाशक्ति आ न पाई थी। जयशंकरप्रसाद के 'प्रकृतिसौन्दर्य'[3] और 'प्रलय',[4] बालकृष्ण शर्मा नवीन का 'निशीथचिन्ता'[5] राय कृष्णदास के 'समुन्नित कर' और 'चेतावनी',[6] चतुरसेन शास्त्री के 'कहा जाते हो',[7] 'आदर्श

१. यह कविता बुन्देलखंड में प्रचलित 'खूब लड़ी मरदानी अरे झांसी वाली रानी' नामक लोकगीत के आधार पर लिखी गई है।
२. सरस्वती भाग ५, पृष्ठ ११८।
३. इंदु, कला १, किरण १, पृष्ठ ८।
४. माधुरी भाग २ खंड २, संख्या १, पृष्ठ ६७।
५. प्रभा, भाग १, खंड २ पृष्ठ ३०४।
६. प्रभा वर्ष ३ खंड १ पृष्ठ ४०१
७. प्रभा वर्ष ३ खंड २ पृष्ठ २४१

आलू'[1] और 'फिर'[2] प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'विलाप',[3] कुंवर राममिंह लिखित 'दो तरंगें',[4] वियोगी हरि के 'परदा', 'वीणा', 'सवाल', 'दर्शन' और 'सरोज',[5] भगवतीप्रसाद वाजपेयी का 'कवि',[6] शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'क्षमायाचना'[7] आदि गद्यकाव्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। प्रभा ने तो कभी-कभी 'हृदयतरंग'[8] नामक खंड ही निकाला जिसमें गद्यकाव्य के लिए स्थान सुरक्षित रहता था। 'सौन्दर्योपासक',[9] 'अश्रुधारा'[10] 'नवजीवन वा प्रेमलहरी',[11] 'त्रिवेणी',[12] 'साधना',[13] 'तरंगिणी',[14] 'अन्तस्तल',[15] 'फिर निराशा क्यों',[16] 'संलाप'[17] आदि गद्यकाव्य पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। जयशंकर प्रसाद के गद्यकाव्यों में संस्कृत-पदावली की बहुलता, दार्शनिकता की अतिगूढ़ता और शब्दचयन की अनुपयुक्तता के कारण कवित्व नष्ट होगया है। 'नवीन' आदि में भी भावप्रवणता और अभिव्यंजता की मार्मिकता नहीं है। सम्भवतः अपने को गद्यकाव्य के अयोग्य समझकर ही इन कवियों ने तादृश रचनाओं से मुँह फेर लिया। उस युग में गद्यकाव्य-निर्माण का विशेष श्रेय राय कृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री और वियोगीहरि को ही है। वियोगीहरि का 'अन्तर्नाद' यद्यपि सं० १९८३ में प्रकाशित हुआ तथापि इसकी प्रायः सभी रचनाएं द्विवेदी युग के अन्तर्गत ही हैं। इस संग्रह की पांच रचनाओं के देशकाल का निर्देश ऊपर हो चुका है।

पुस्तकों के 'साधना', 'अन्तस्तल', अन्तर्नाद', आदि नाम स्वयं ही इस बात की घोषणा करते हैं कि ये रचनाएं बाह्य आलम्बनों से सम्बन्धित न होकर अध्यात्मिक हैं।

---

१. प्रभा, वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ २३३।
२. „ मार्च, १९२४ ई०, पृष्ठ १८६।
३. „ वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ १९२।
४. „ वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ २०२।
५. „ फरवरी, १९२४ ई०, पृष्ठ १३१।
६. „ मई, १९२४ ई०, पृष्ठ ३७६।
७. „ जनवरी, १९२५ ई०, पृष्ठ ७३।
८. उदाहरणार्थ मई, जून, १९२१ ई०।
९. ब्रजनन्दन मिश्र, १९११ ई०।
१०. ब्रजनन्दन मिश्र, १९१६ ई०।
११. कुमार राधिकारमणसिंह, १९१६ ई०।
१२. देवेन्द्र, सं० १९७३।
१३. राय कृष्णदास, सं० १९७४।
१४ हरिप्रसाद द्विवेदी, सं० १९७६।
१५. चतुरसेन शास्त्री, सं० १९७८।
१६. गुलाबराय, द्वितीयावृत्ति १९८० वि०।
१७ राय ... सं० १९८२

विषय और शैली की दृष्टि से द्विवेदीयुग के गद्यकाव्यों के दो प्रकार हैं—देश प्रेम की अभिव्यक्ति और लौकिक या अलौकिक प्रेमपात्र के प्रति आत्मनिवेदन। यह भी कहा जासकता है कि उनका मुख्य विषय प्रेम है चाहे वह लौकिक हो, अलौकिक हो या देश के प्रति हो। देशप्रेम को लेकर लिखी गई कविताएं अपवादस्वरूप हैं। द्विवेदी-युग के अन्तिम वर्षों में सत्याग्रह और सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन प्रबल हो रहा था और उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी अनिवार्य रूप से पड़ा। जो देशप्रेम प्रार्थना और नम्र निवेदन से आरम्भ हुआ था उसने उग्र रूप धारण किया। कवियों ने इस बात का अनुभव किया कि बिना बलिदान और रक्तपात के स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती। गय कृष्णदास के 'समुचित कर' और 'चेतावनी' गद्यगीत इसी भाव के द्योतक हैं।[1] उसी वर्ष कुंवर रामसिंह ने एक गद्य काव्य लिखा 'स्वतन्त्रता का मूल्य' जिसमें उन्होंने भारतीय नारियों को देश की स्वतन्त्रता के लिए आत्मत्याग और बलिदान करने को उत्तेजित किया।[2]

उस युग के अधिकांश गद्यकाव्य किसी प्रेमपात्र के प्रति प्रेमी हृदय की वेदना के ही शब्दचित्र हैं। इस प्रेम का आलम्बन कहीं शुद्ध लौकिक है[3] और कहीं कहीं यह प्रेम

---

१ "ऋषियो ! यदि तुम्हें भगवान रामचन्द्र की परमाशक्ति सीता के जन्म की आकांक्षा हो तो तुम्हें घड़े भर खून का कर देना ही होगा।

उसके बिना सीता का शरीर कैसे बनेगा ? और बिना सीता का आविर्भाव हुए रामचन्द्र अपना अवतार कैसे सार्थक कर सकेंगे ?

अतः ऋषियो उठो, अविलंब अपना रक्त प्रदान करो।"

—प्रभा, वर्ष ३, खंड १, पृ० ४०१।

२. "हे देवियो ! यदि तुम्हें स्वतंत्रता का सुख चाहिए तो अपने पतियों सहित कारागार के कष्ठ उठाकर देवकी की तरह अपनी सात सन्तानों का बलिदान करो।"

—प्रभा, भाग ३, खंड २, पृ० २०२।

३. "पाटल ! मैं ने तुमको इतने प्रेम से अपनाया। तुम्हें तुम्हारे स्वजनों से बिलगाकर छाती से लगा लिया तुम्हारे काटों की कुछ परवाह न की, क्योंकि तुम्हारी चाह थी।

कहा मेरा मन इसी चिन्ता में चूर रहता था कि तुम्हारी पंखुड़िया दब न जावें। सारे संसार से समस्त चित्तवृत्तियां खिचकर एक तुम्हीं से समाधिस्थ हो रही थीं। कहा आज वही, मैं, तुम्हें किस निर्दयता, उदासीनता और घृणा से भूमि पर फेंक रहा हूँ। क्योंकि तुम्हारे रूप, रंग, सुकुमारता और सौरभ सब देखते देखते नष्ट हो गए हैं।

कहा तो मैं तुम्हें हृदय का फूल बनाकर अभिमानित होता था, कहा आज तुम्हें पददलित करने में डरता हूँ कि कहीं काटे न चुभ जाय।

अरे, यह-प्रेम कैसा ? यह तो स्वार्थ है क्या इसी का नाम प्रेम है ? हे नाथ, मुझे ऐसा प्रेम नहीं चाहिए। मुझे तो वह प्रेम प्रदान करो जो मुझे भेदबुद्धिरहित पागल बना दे

—साधना, पृ० ६७

पारलौकिकता की ओर उन्मुख है ।

ये गद्य काव्य 'वासवदत्ता', 'दशकुमार चरित', 'हर्ष चरित', 'कादम्बरी' आदि संस्कृत गद्य-काव्यों से अनेक बातों में भिन्न हैं। कथावस्तु की दृष्टि से ये प्राचीन-काव्य आधुनिक उपन्यासों के पूर्व रूप हैं, इसलिये उन्हें 'आख्यायिका' या 'कथा' कहा गया है। यहां तक कि मराठी में उपन्यास के लिए कादम्बरी शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। आधुनिक गद्यकाव्य में इस प्रकार की कथा वस्तु का सर्वथा अभाव है। इसका कारण यह है कि आज साहित्य ही नहीं सारा वाङ्मय ज्ञान विस्तार के साथ ही साथ अनेक भागों में विभाजित होता जा रहा है। इसीलिये तब की आख्यायिका और कथा के स्थान पर अब कहानी, उपन्यास और गद्यकाव्य तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। आख्यायिका, कथा, उपन्यास आदि के रूप में दूसरों का वर्णन करते करते लेखक का हृदय थक गया और आत्माभिव्यक्ति के लिए रो पड़ा। वर्तमान गद्यगीत उसके उसी आकुल अन्तर के शब्द प्रतीक हैं। बाणभट्ट ने भी अपने 'हर्ष चरित्र' के आरम्भिक अध्यायों में अपना चरित लिखा था किन्तु उनकी वह अभिव्यक्ति अध्यात्मिक न होकर जीवन वृत्त-मात्र थी। वे प्रबन्ध काव्य हैं, उनमें प्रबन्ध व्यंजकता है और रस परिपाक की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।[२] द्विवेदी-युग के गद्य-काव्य लघुप्रबन्धमुक्तक हैं और इनमें रस परिपाक का प्रयास न करके कोमल भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति ही की गई है। उन संस्कृत कवियों ने शब्द-चमत्कार और अलंकारादि की ओर बहुत ध्यान दिया।[३] हिन्दी-गद्यकाव्य कर्त्ताओं के गीत एक श्वेतवसना तप पूत

---

१. "हे मेरे नाविक, यह कैसी बात है जब मेरी नाव मंझधार में थी तब तो तुम्हें हटाकर मैंने डाँड़ लेलिए थे और तुम्हारे आसन पर आसीन होकर बड़ा भारी खेवैया बन बैठा था। पर जब वह धार से पार होकर गम्भीर जल में पहुँची तब मैं हारकर उसे तुम्हारे भरोसे छोड़ता हूँ।

तब तो नाव धार के सहारे बह रही थी, खेने की आवश्यकता ही न थी। इसी से मेरी मूर्खता न खुली। पर अब? अब तो इस गम्भीर जल से चतुर नाविक के बिना और कौन नाव निकाल सकता है?

परन्तु मैं तुम्हारी बड़ाई किस मुख से करूं। तुम मेरी मूर्खता और अभिमान तथा अपने अपमान की ओर नहीं देखते और सप्रेम डाँड नाव किनारे की ओर चलाते हो।'

...राय कृष्णदास...साधना, पृ० ३१।

२. स्फुरत्कलाला पविलासकोमला करोति राग हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्यामिनवावधूरिव॥

बाणभट्ट, 'कादम्बरी' की प्रस्तावना।

३. सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्॥

सुबन्धुकृत वासवदत्ता का आरम्भ

सन्यासिनी की भाँति निरलंकार किंतु मनस्वनी है। उन काव्यों में पग-पग पर चित्रमयी कवि कल्पना की ऊँची उड़ान है। द्विवेदी-युग के हिन्दी गद्यगीतों में कल्पना की ऊँची उड़ान न होते हुए भी सरलता, लाक्षणिकता और मूर्ति मत्ता या प्रतीकात्मकता का इतना सुन्दर समन्वय है कि वे पाठकों के हृदय को सहज ही मोह लेते हैं। इन गद्यकाव्यों की चित्रकलात्मकता इनकी एक प्रमुख विशेषता है। इनमें गद्य भाषा की छन्दहीनता, वाक्य-विन्यास और व्याकरण संगति है, परन्तु साथ ही पद्य की सी लय और काव्यमय उपस्थापना भी है।[1]

द्विवेदी जी ने अपने पद्यानुवादों में संस्कृत के द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, स्रग्धरा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि अनेक वृत्तों और अपनी मौलिक कविताओं में वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया था। उनके आदर्श और उपदेश[2] ने उस युग के अन्य कवियों को भी प्रभावित किया। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपना 'प्रिय प्रवास' आद्योपान्त संस्कृत वृत्तों में लिखा। संस्कृत वृत्तों का निर्वाह करने में कहीं कहीं कवियों को अत्यन्त कठिनाई हुई। कहीं तो उन्हें चरण के अन्तिम लघु को दीर्घ का रूप देना पड़ा,[3] और कहीं वे संयुक्त वर्ण के पूर्ववर्ती लघुस्वर को गुरु मानने के लिए विवश हुए।[4] इस प्रकार के प्रयोग

और बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित' की भूमिका में इस प्रकार की 'वाग्वदता' की प्रशंसा भी की—

'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।'

१ "जब मैं रोता हूँ तब तुम घोर अट्टहास कर मेरे रोने का उपहास करते हो, जब हँसता हूँ, तुम्हारी आँखों में आँसू छलछला आते हैं—यह वैपरीत्य क्यों ?
हे स्वामिन् ! तुम्हारे सम्मुख क्या मेरे रोने और हँसने का कोई मूल्य नहीं है ?"

'जलयाचना'···शान्तिप्रिय द्विवेदी···प्रभा। जन० १९२५ ई० पृष्ठ ७१।

२. "दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और भी छन्द लिखा करें।"

·· रसज्ञरंजन, पृ० ३।

३ यथा— "ओढ़े दुशाले अति उष्ण अंग,
धारे गरू वस्त्र हिए उमंग।" —सरस्वती, मई, १९०२ ई०।

४ उदाहरणार्थ (क) जब देवव्रत अष्टम बालक।
द्विवेदी जी, कविता-कलाप, 'गंगा-भीष्म'।
(ख) आनन्द प्रिय मित्र के उदय से पाते सभी जीव हैं
पूजा में रत हैं समस्त जगत प्रोत्साह आह्लाद से

संस्कृत भाषा और संस्कृत छन्दों के कारण हुए हैं कहीं कहीं बोलचाल के प्रभाव के कारण भी कवियों ने लघु को गुरु मान लिया है। यथा—

गरल अमृत अर्भक को हुआ।[1]

इस उद्धरण में अमृत के 'मृ' का 'मृ' ह्रस्व स्वर है और 'अ' भी ह्रस्व है अतएव इन दोनों का ही उच्चारण लघु होना चाहिए परन्तु कवि ने 'म' में द्वित्व का आरोप करके छन्द की मर्यादा के निर्वाहार्थ लघु 'अ' को दीर्घ कर दिया है। मैथिलीशरण गुप्त आदि ने हिन्दी के अप्रचलित छन्दों, गीतिका, हरिगीतिका, रूप-माला आदि का प्रयोग किया। नाथूराम शर्मा आदि ने दो छन्दों के मिश्रण से भी नए छन्द बनाए। उस युग में लावनी की लय का विशेष प्रचार हुआ। हिन्दी के छन्दों का चरण और लावनी का अन्त्यानुप्रासक्रम लेकर मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय आदि ने हिन्दी में अनेक प्रबन्धगीत लिखे।[2]

बंगला के पयार और अंग्रेजी के सानेट का भी हिन्दी में प्रचार हुआ। जयशंकरप्रसाद आदि ने 'इंदु' और 'माधुरी' में अनेक चतुर्दशपदी गीत लिखे। छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द और मुक्तछन्दों की परम्परा चलाई। अंत्यानुप्रास की दृष्टि से स्वच्छन्द छन्द तीन प्रकार के लिखे गए। एक तो वे थे जिनमें आद्योपान्त अनुप्रास था ही नहीं जैसे प्रसाद जी का 'महाराणा प्रताप का महत्त्व' या पंत की 'ग्रन्थि'। दूसरे वे छन्द थे जिसमें अन्त्यानुप्रास किसी न किसी रूप में आद्योपान्त विद्यमान था, यथा पंत जी की 'स्नेह', 'नीरवतार' आदि कविताएँ।[3] तीसरे वे छन्द थे जिनमें कहीं तो अंत्यानुप्रास था और कहीं नहीं था, उदाहरणार्थ पंत जी का 'निष्ठुर परिवर्तन' या सियारामशरण गुप्त की 'याद'।[4] निराला जी ने मुक्तछन्दों का विशेष प्रचार किया। उनकी 'जुही की कली' १९१७ ई० में ही लिखी गई थी। परन्तु अपनी अति नवीनता के कारण हिन्दी-पत्रिकाओं में स्थान न पा सकी। उनकी 'अधिवास'[5] आदि कविताएँ आगे चल कर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इन मुक्तछन्दों में स्वच्छन्द छन्दों की छन्दलय का स्थान स्वाभाविक भावलय ने ले लिया।

---

१ प्रियप्रवास, सर्ग २, पद ३५।

२. उदाहरणार्थ, हरिऔध जी का 'दमदार दावे'—
प्रभा, मार्च, १९२४ ई० पृ० २१३।

३. यथा, 'आधुनिक कवि' २ के पृष्ठ ८ पर।

४ प्रभा, नवम्बर, १९२४ ई०, पृष्ठ ३७६।

५ माधुरी भाग १ खंड २, पृ० ११३

द्विवेदी जी ने उन के प्र र म प्रयोग का ही आदेश किया। लाला भगवानदीन ने अपने 'वीरपंचरत्न' में, अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने चौपदों और छप्पदों में तथा अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं में उर्दू बहरों का प्रयोग किया। द्विवेदी जी ने कवियों से यह भी आग्रह किया कि वे अपने सिद्ध छन्दों का ही व्यवहार करें।[२] मैथिलीशरण गुप्त ने अपने सधे हुए छन्द, हरिगीतिका में ही 'भारत-भारती' और 'जयद्रथवध' लिखा; गोपालशरणसिंह ने घनाक्षरी और सवैया में ही अपनी अधिकांश रचनाएं कीं। जगन्नाथ दास ने रोला और घनाक्षरी का ही अधिक प्रयोग किया।

अतुकान्त कविता को भी द्विवेदी जी ने विशेष प्रोत्साहन दिया।[३] कविता का यह रूप भी द्विवेदी-युग की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यद्यपि सबलसिंह चौहान, सरजूप्रसाद मिश्र, श्रीधर पाठक, देवीप्रसाद पूर्ण आदि कवि तुकान्तहीन कविता कर चुके थे परन्तु संस्कृत वृत्तों और अतुकान्त कविता को अंत्यानुप्रासयुक्त कविता के समान ही प्रतिष्ठित करने का श्रेय द्विवेदी जी और उनके युग को ही है। द्विवेदी जी की 'हे कविते' और श्रीधर पाठक का 'वर्षा-वर्णन' १९०१ ई० में तथा कन्हैयालाल पोद्दार का 'गोपी गीत' १९०२ ई० की सरस्वती में प्रकाशित हो चुके थे। अतुकान्त कविता का वास्तविक प्रवाह १९०३ ई० से चला। कन्हैयालाल पोद्दार की अन्योक्ति दशक'[४] और अनन्तराम पांडेय के 'कपटी मुनि नाटक' में वर्णिक और मात्रिक अत्यानुप्रासहीन छन्दों के दर्शन हुए। पूर्ण जी के 'भानु-कुमार नाटक' (१९०४ ई०) में भी यत्र तत्र अतुकान्त पदों का प्रयोग हुआ है। 'सरस्वती' ने इस प्रवाह को आगे बढाया। १९०४ ई० में 'मृत्युंजय' (पूर्ण), 'तुम वसन्त सदैव बने रहो' (जमुनाप्रसाद पांडेय) और 'शान्तिमती शय्या' (सत्यशरण रतूडी), १९०५ ई० में 'शिशिर पथिक' (रामचन्द्र शुक्ल), 'प्रभात-प्रभा' (सत्यशरण रतूडी), 'भारवि का शरदवर्णन' (श्रीधर पाठक) आदि कविताएं प्रकाशित हुई और यह क्रम चलता रहा। १९०९ ई० में हरिऔध जी का 'काव्योपवन' कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने

---

१. आजकल के बोलचाल की हिन्दी की कविता उर्दू के विशेष प्रकार छन्दों में अधिक खुलती है, अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होना चाहिए।

—'रसज्ञरंजन', पृ० ३।

२. "कुछ कवियों को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है, उसे ही वे अच्छा लिख सकते हैं उनको दूसरे छन्द लिखने का प्रयत्न भी न करना चाहिए।"

'रसज्ञरंजन' पृ० ४।

३ पाश्चात्य में अनुप्रासहीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए

रसज्ञरंजन पृ० ४

कल्पित छन्दों का भी प्रयोग किया मयंकनवक' और दिनेश दशक कवित्ताओं म शादूल-विक्रीडित की छाया लेकर मात्रा वृत्त में अतुकान्त कविता का एक नूतन और अनूठा उद्योग किया।[1] 'इन्दु' की चौथी और विशेषकर पाचवी कलाओं में राय कृष्णदास, जयशंकरप्रसाद मुकुटधर पाडेय आदि की अनेक अन्त्यानुप्रासहीन कविताएँ प्रकाशित हुई। सं० १९७० में जयशंकरप्रसाद का 'प्रेम-पथिक' और १९७१ में हरिऔध जी का 'प्रियप्रवास' अतुकान्त वृत्ता में प्रकाशित हुए। इस प्रकार हिन्दी में अतुकान्त कविता का रूप मान्य और प्रतिष्ठित हो गया।

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन आदि सस्कृत-साहित्य-शास्त्रियों ने रसभावानुकूल वृत्ता के प्रयोग की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया था। द्विवेदी जी ने भी कविता के इस आवश्यक पक्ष की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट किया।[2] द्विवेदी-युग के आरम्भिक वर्षों मे अपंडित, असिद्ध और यशःकामी कवियों ने टूटी-फूटी तुक बन्दियों के द्वारा ही यश लूट लेने का प्रयास किया। 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतिया इस बात की साक्षी हैं। कुछ ही वर्षों में भाषा का परिमार्जन हो जाने पर सिद्ध कवियों ने इस ओर पूरा ध्यान दिया। अयोध्यासिह उपाध्याय ने प्रियप्रवास' में रसभावानुकूल छन्दों का प्रयोग किया। यथा, शृंगार और करुण की व्यंजना के लिए द्रुतविलम्बित, वियोगवर्णन मे मालिनी और मन्दाक्रान्ता, उत्साह के योग मे वंशस्थ आदि। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत आदि कवियों ने भी भावानुकूल छन्दो में कविताएं की।

द्विवेदी जी ने भाषा की सरलता और सुबोधता पर पर्याप्त ध्यान दिया।[3] अपने सम्पादनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में उन्हे काव्य-भाषा का भी कायाकल्प करना पड़ा। उन्होने कवियो को केवल उपदेश ही नही दिया, उनकी अर्थहीन या अनर्थकारिणी भाषा का आदर्श संशोधन भी किया। निम्नाकित उद्धरण विशेष अवेक्षणीय है—

मूल	संशोधित
(क) रव वह सब ही का हो तभी व्यर्थ ही है,	कलरव गति सब की भास होती बुरी है।

१. उदाहरणार्थ,
राका रजनी के समान रंगिणि जिसकी मनोहारिणी।
रूपवती रोहिणी आदि जिसको हैं सप्तविंशति प्रिया।
हा जगदीश्वर। वह कलीकपति भी गुरु-वाम-गामी हुआ।
कामीजन का अवरणीय कुछ भी संसार में है नहीं॥
'कव्योपवन', मयंकनवक पृष्ठ ७३।

२ "वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है।" 'रसज्ञरंजन', पृ० २

३ कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिस सब कोई सहज में समझ ले और पढ़ने को कर सके रसज्ञरंजन पृ० ५

जब पिक दिखलाती शब्द की चातुरी जब पिक दिखलाती शब्द की चातुरी है।
है।[1]

(ख) पय प्रकटत सुन्दर छवि तेरी, पर तेरी छवि देख ज्ञान की,
ज्ञान ध्यान विस्मृत हो जावे। गरिमा गुम हो जाती है।
सुध बुध रहै न कुछ भी अपनी, सुध बुध रहती नहीं चित्त मे,
तू ही तू मन में बस जावे॥[2] तू ही तू बस जाती है॥
(ग) एक नयन कर लगत हमारा, नयन बाण तेरा लगते ही,
चित पानी पानी हो जाता।[3] दिल पानी पानी हो जाता है।

'क' की मौलिक पंक्ति विशेष चिन्त्य है। 'यह सब ही का हो', इस वाक्यांश का क्या अर्थ है? उस पंक्ति में अर्थ या पद सौन्दर्य भी नहीं है। अन्त्यानुप्रास भी अधम कोटि का है। संशोधित पद मे प्रसाद और माधुर्य के कारण विशेष सौन्दर्य आ गया है। सुन्दर अन्त्यानुप्रास ने उसे और भी उत्कृष्ट बना दिया है। 'ख' की मौलिक प्रथम पंक्ति से प्रकट होता है कि कवि का अभिप्राय आशीर्वादात्मक वाक्य-कथन नहीं है। वह अपनी बात सामान्य वर्तमान में ही कहना चाहता है किन्तु उसकी भाषा उसके अभीष्ट अर्थ की व्यंजना करने में असमर्थ है। संशोधित पद में उसकी यह अर्थहीनता दूर कर दी गई है। 'ग' की मौलिक प्रथम पंक्ति मे 'हमारा' सर्वनाम का प्रयोग इस अर्थ का द्योतक है कि कवि का नयनशर लगते ही लोगों का चित्त पानी पानी हो जाता है। किन्तु यह अर्थ कवि के तात्पर्य के विपरीत है। कविता तरुणी को संबोधित करके लिखी गई है और कवि कहना चाहता है कि तुम्हारा नयनशर लगते ही मेरा चित्त पानी पानी हो जाता है। वह इस बात को ठीक कह नहीं सका है। संशोधित पंक्ति इस अर्थ को स्पष्ट कर देती है।

द्विवेदी जी के सदुद्योग से हिन्दी काव्यभाषा की क्लिष्टता, जटिलता और असमर्थता दूर हो गई। इसका प्रमाण आगे चलकर 'जयद्रथवध', 'भारत-भारती', 'प्रियप्रवास', 'माधवी', 'पथिक', 'पंचवटी' आदि रचनाओं मे मिला। द्विवेदी जी के शिष्य मैथिलीशरण की प्रसन्न कविताओं ने लोगों को हिन्दी और कविता से प्रेम करना सिखाया। द्विवेदी युग के पूर्वार्द्ध मे अधिकांश कवियों की भाषा व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगों से व्याप्त थी। द्विवेदी

१ 'कोकिल'—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०४ ई०, कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
२. 'तरुणी'—गंगासहाय—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०४ ई० कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
३ 'तरुणी' गंगासहाय—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०४ ई०, नागरी प्रचारिणी सभा

ची = उपदेश और संशोधन द्वारा उसका परिष्कार किया एक दो उदाहरण अवलोकनीय हैं

मूल	संशोधित
(क) मिला अहो मंजु रसाल डाल से ?	मिला अहो क्या सुरसाल डाल से ?
तथैव क्या गुंजित भृंगमाल से ?[1]	किंवा किसी गुंजित भृंगमाल से ?
(ख) ओढ़ें दुशाले अति उष्ण अंग,	अच्छे दुशाले, सित, पीत, काले,
धारें गरू वस्त्र दिये उमंग ।	हैं ओढ़ते जो बहुवित्त वाले ।
तौ भी करें हैं सब लोग सी, सी,	तौ भी नहीं बन्द अमन्द सी, सी,
हेमन्त में हाय कंपे बतीसी ।[2]	हेमन्त में है कंपती बतीसी ॥

पहले उदाहरण की प्रथम मौलिक पंक्ति में कोई प्रश्नवाचक सर्वनाम नहीं है और फिर भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया गया है। उसकी द्वितीय पंक्ति में 'तथैव' की योजना सर्वथा असंगत है। संशोधित पद में 'क्या' और 'किंवा' के व्याकरणसंगत प्रयोग से अधिक लालित्य आगया है। दूसरे उदाहरण में 'ओढ़ें', 'धारें आदि क्रियारूपों का प्रयोग गलत हुआ था। 'करें हैं' और 'कंपे' के रूप भी खड़ीबोली की दृष्टि से अशुद्ध हैं। संशोधित पद में 'तौ' का प्रयोग गलत है, किन्तु उस काल में 'ओ' के स्थान पर 'औ' का प्रयोग करने की व्यापक प्रवृत्ति थी जिसका निश्चित सुधार द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में हुआ। कभी कभी तो तुकबंद पद्यकर्त्ता छन्द की गति और यति की अवहेलना करके अपना तूफान मेल निर्बाध गति से छोड़ देते थे, उदाहरणार्थ:—

तुव दरसन ही प्रेम उमारे,
ललना अनुभव यहां सिखाता है।[3]

और द्विवेदी जी को इस प्रकार की तुकबन्दियों की निर्दयतापूर्वक शल्य-चिकित्सा करनी पड़ती थी। द्विवेदी जी ने कवियों से विषयानुकूल शब्द स्थापना, अक्षरमैत्री, क्रमानुसार पद योजना आदि का भी अनुरोध किया।[4] द्विवेदी-युग के प्रथम चरण की 'सरस्वती' में

---

१. 'कोकिल'—कन्हैयालाल पोद्दार—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०४ ई०, कला भवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

२. 'हेमन्त'-मैथिली शरण गुप्त सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०५ ई०।

३. 'तरुणी'—गंगासहाय—सरस्वती की हस्तलिखित, प्रतियां १९०७ ई० कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा

४. 'विषय के अनुकूल शब्दस्थापना करनी चाहिए'''शब्द चुनने में अक्षरमैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए'''शब्दों को यथा स्थान रखना चाहिए।"

प्रकाशित कविताओं की हस्तलिखित प्रतियों द्विवेदी जी की सुस्ती का बहुत कुछ अनुमान करा देती हैं। साधारण कवियों की कविताओं में ही नहीं, महाकवियों की कविताओं में भी शब्दों का व्यतिक्रम हुआ है जिसके प्रवाह में शिथिलता और सौन्दर्य में कमी आ गई है। हरिऔध जी की कविता का एक उदाहरण निम्नलिखित है—

मूल	संशोधित
हरे पेड़ सब हो जाते हैं	पेड़ हरे सब हो जाते हैं
नये नये पत्ते लाते हैं	नये नये पत्ते लाते हैं
वह कुछ ऐसे लद जाते हैं	वह कुछ ऐसे लद जाते हैं
जो बहुत भले दिखलाते हैं	बहुत भले वह दिखलाते हैं
बनी हवा चलने लगती है	बनी हवा बहने लगती है
दिसा सब महकने लगती है।[1]	दिशा महकने सब लगती है

उपर्युक्त उद्धरण में कुछ बातें विशेष आलोच्य हैं। हरे 'पेड़' का विशेषण न होकर 'हो जाते हैं' का पूरक है अतएव उसका 'पेड़' शब्द के बाद आना ही अधिक शोभाकारक होता। तीसरी पंक्ति की लय में चौथी पंक्ति की लय मिलती ही नहीं 'बहुत भले' का पूर्ववर्ती होकर गुरु 'जो' ने उस पंक्ति के प्रभाव में एक बल सा डाल दिया है। छठी पंक्ति की लय को अविरल रखने के लिए 'महकने' को विभाजित करना पड़ता है, 'महक', 'सब' के साथ और 'ने' लगती के साथ चला जाता है। इस प्रकार का विच्छेद संगत नहीं जँचता। द्विवेदी जी के संशोधन ने इन सब दोषों को दूर कर दिया है।

गद्य और पद्य की भाषा एक करने पर भी द्विवेदी जी ने विशेष जोर दिया।[2] उनके पल्ले में भी खड़ी बोली में कविता करने का प्रयास हो रहा था। द्विवेदी जी का गौरव इस बात में है कि उनके आदर्श उपदेश और सुधार के परिणाम स्वरूप ही हिन्दी-संसार ने गद्य की भाषा को ही पद्य की भाषा स्वीकार कर लिया। १९०९ ई० में द्विवेदी जी ने 'कविता-कलाप' संग्रह प्रकाशित किया जिसमें द्विवेदी जी, राय देवीप्रसाद, कामताप्रसाद गुरु, नाथूराम

---

१ 'कोयल', 'मरुस्वनी', हस्तलिखित प्रतियाँ १९०६ ई०,
कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

२. "गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होनी चाहिए।....यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम क्रम से गद्य की भाषा में कविता करना

शर्मा और मैथिलीशरण गुप्त की कविताएं संकलित थीं, अधिकांश कविताएं खड़ी बोली की ही थीं। काव्य-भाषा की दृष्टि से द्विवेदी-युग के तीन विभाग किए जा सकते हैं—१९०३ ई० से १९०९ ई० तक, १९१० ई० से १९१७ ई० तक और १९१७–१८ ई० से १९२५ ई० तक। नागरी प्रचारणी सभा के कला भवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियों और तत्कालीन विभिन्न पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की भाषा से सिद्ध है कि १९०९ ई० तक खड़ी बोली का मँजा हुआ रूप उपस्थित नहीं हो सका। काव्य भाषा का सुधार करने में द्विवेदी जी को गद्य-भाषा संशोधन की अपेक्षा कहीं अधिक घोर परिश्रम करना पड़ा था। भाषा की यह दुरवस्था १९०९ ई० तक ही विशेष रही। 'कविता कलाप' में उसका कुछ सुधरा हुआ रूप प्रस्तुत हुआ है। उसमें शब्दों की तोड़ मरोड़ बहुत ही कम की गई। उनकी कविताओं में खड़ी बोली का व्याकरण-सम्मत और धारा प्रवाह रूप प्रतिष्ठित हुआ। १९१० ई० में 'जयद्रथ बध' में ओज, प्रसाद और माधुर्य से पूर्ण खड़ी बोली का श्रेष्ठ रूप उपस्थित हुआ। तत्पश्चात 'प्रिय प्रवास' और 'भारत-भारती' के प्रकाशन ने खड़ी बोली के विरोधियों को सदा के लिए चुप कर दिया। १९१७ ई० में 'सरस्वती' में 'साकेत' के अंश प्रकाशित होने लगे। इसी वर्ष 'निराला' ने अपनी 'जुही की कली' लिखी। इसी वर्ष के आस पास में पंत और प्रसाद की कविताएं भी समादृत होने लगीं थीं। इस अवस्था में द्विवेदी-युग की काव्य-भाषा में दो प्रकार के परिवर्तन हुए। एक तो लाक्षणिक, ध्वन्यात्मक और चित्रात्मक शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा और दूसरे हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में हिन्दी के मुहावरों और कहावतों का भी विशेष प्रयोग हुआ।

अभिनिवेशपूर्वक विचार करने से द्विवेदी-युग की काव्य-भाषा में अनेक विशिष्टताएं परिलक्षित होती हैं। द्विवेदी-युग ने खड़ी बोली की प्रतिष्ठा के लिए परिस्थितियों के विरुद्ध कठिन संग्राम किया। उस युग के महान् कवियों को भी छन्द की मर्यादा का निर्वाह करने के लिए 'और' के स्थान पर 'औ' तथा 'तक', 'पर', 'एक' आदि के लिए क्रमशः 'लौं', 'पै', 'यक' आदि का प्रयोग करना पड़ा।[1] कहीं वे पदों के समास करने में संस्कृत या हिन्दी-व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करने के लिए बाध्य हुए।[2] खड़ी बोली की आरम्भिक कविताओं में प्रसाद, ओज और माधुर्य की कमी है। आगे चल कर भाषा के मँज जाने पर ये त्रुटियाँ अपवाद रूप में ही दिखाई पड़ीं। उस युग की कविता की सर्व-व्यापक विशेषता उसका प्रसाद गुण है। 'भारत भारती' अपनी प्रासादिकता के कारण ही

---

१ प्रियप्रवास' में इस प्रकार के प्रयोगों की बहुलता है

२ ,

हिन्दी-जनता का हृदयहार बन गई थी। प्रिय प्रवास आदि रचनाएं अतिशय संस्कृत प्रधान होते हुए भी प्रसन्न हैं। प्रसाद गुण किसी एक ही भाषा या बोली की सम्पत्ति नहीं है, वह बोलचाल, उर्दू फारसी या संस्कृत की पदावली में समान रूप से व्याप्त हो सकता है। कवि की भाव व्यंजना ऐसी होनी चाहिए जिसे पढ़ या सुन कर पाठक या श्रोता के हृदय में अबाध रूप से ही प्रसन्नता की अनुभूति हो जाय। युग के आरम्भ या अन्त में कुछ कवियों की कविता का दुरूह हो जाना उनकी व्यक्तिगत अभिव्यंजना-शक्ति की निर्बलता का परिणाम था। पंत, प्रसाद या माखनलाल चतुर्वेदी की कुछ ही कविताएं गूढ़ हैं। ध्वनि के रहते हुए भी कविता सरल और सुबोध हो सकती है।

ओज गुण का विशेष चमत्कार नाथूराम 'शंकर', माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा-कुमारी चौहान की रचनाओं में दिखलाई पड़ा। आर्य समाजी होने के कारण नाथूराम शर्मा में अक्खड़पन, निर्भीकता और जोश की अधिकता थी। माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा-कुमारी चौहान देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय योग दे रही थीं। अतएव उनकी अभिव्यक्ति का ओजोमय हो जाना अनिवार्य था। राजनैतिक और धार्मिक हलचल ने कवियों के मन में एक क्रान्ति सी मचा दी। उन्होंने समाज, साहित्य आदि की बुराइयों पर लट्ठमार पद्धति द्वारा आक्रमण किया।[1] मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय गोपालशरणसिंह आदि की कविताओं में माधुर्यमयी व्यंजना हुई। विशेष रमणीयता-प्रतिपादक कोमलकांत पदावली का दर्शन आगे चलकर पंत की कविताओं में मिला।

द्विवेदी-युग की कविताओं में भी सभी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ। एक ओर तो सरल और प्राजल हिन्दी का निरलंकार सहज सौन्दर्य है[2] और दूसरी ओर संस्कृत की अलंकारिक समस्त पदावली की छटा।[3] कहीं तो प्रसन्न वाक्यविन्यास का अजस्र प्रवाह है[4] और कहीं छायावादी कवियों की अतिगूढ व्यंजना।[5] एक स्थान पर मुहावरों और बोल चाल के शब्दों की झड़ी लगी हुई है[6] तो दूसरे स्थल पर उन्हें तिलांजलि भी दे दी गई है।[7]

---

१. उदाहरणार्थ १९०८ ई० की 'सरस्वती' में प्रकाशित नाथूराम शर्मा की 'पंचपुकार' और मैथिलीशरण गुप्त की 'पंचपुकार का उपसंहार' कविताएं।
२. उदाहरणार्थ 'जयद्रथवध ॥'
३. ,, प्रियप्रवास ॥'
४. ,, 'भारतभारती ॥'
५. ,, निराला-लिखित 'अधिवास' कविता।
माधुरी, भाग १, खंड २, संख्या ४, पृ० ३५३।
६. ,, हरिऔध जी के 'चुभते' और 'चोखे चौपदे।'
७ प्रियप्रवास

यहीं वाच्यप्रधान वर्णनात्मक शैली में वस्तुपस्थापन किया गया है[1] तो कहीं लक्ष्यप्रधान चित्रात्मक शैली का चमत्कार है।[2]

द्विवेदी जी ने कवियों को विषय परिवर्तन की भी प्रेरणा दी। उन्होंने नायक-नायिका आदि के शृंगारादि वर्णन और अलंकार, समस्यापूर्ति आदि के जाल से ऊपर उठकर सामाजिक, प्राकृतिक आदि स्वतंत्र विषयों पर फुटकर कविताएं तथा आदर्श चरित्रों को लेकर प्रबन्ध-काव्य लिखने का निर्देश किया। यों तो भारतेन्दु-युग ने भी शृंगारेतर रचनाएं की थीं परन्तु वे अपेक्षाकृत बहुत कम थीं। द्विवेदी-युग ने शृंगारिकता से आगे बढकर जीवन के अन्य पक्षों पर भी उचित ध्यान दिया। शृंगार प्रधान रचनाओं में भी उसने प्रेम को व्यापक, विश्वजनीन या रहस्योन्मुख रूप देकर उसे उत्कृष्ट बना दिया। वर्ण्य विषय की दृष्टि से उस युग की कविताओं का दुहरा महत्व है। एक तो उन कवियों ने नवीन विषय पर रचनाएं की और दूसरे परम्परागत मानव, प्रकृति आदि विषयों को नवीन दृष्टि से देखा।

युगनिर्माता द्विवेदी के सामने जो उदीयमान कविसमाज था उसमें ईश्वरदत्त प्रतिभा भले ही रही हो परन्तु लोक, शास्त्र आदि के अवेक्षण से उत्पन्न निपुणता और अभ्यास की बहुत न्यूनता थी। द्विवेदी जी ने विषय-परिवर्तन की घंटी तो दे दी किन्तु नौसिखिए कवियों को परम्परागत विषयों के अतिरिक्त काव्योपयुक्त अन्य विषय दिखाई ही न पड़े। स्वयं द्विवेदी जी रविवर्मा के चित्रों से प्रभावित होचुके थे और उनपर कविताएं भी की थी। अनुगामी कविसमाज ने भी अन्य सुन्दर विषयों को न पाकर परम्परागत विद्या, कमल, कोकिल, ऋतु आदि के अतिरिक्त रविवर्मा आदि के कलात्मक चित्रों को लेकर उनपर वर्णनात्मक कविताएं लिखीं। इनका एक संकलन १६०६ ई० में 'कविताकलाप' के नाम से प्रकाशित भी हुआ। चित्रविषयक कविताएं प्रायः द्विवेदी-युग के प्रथम चरण में ही लिखी गई। इन कविताओं में कवियों ने चित्रकार और कहीं कहीं उन्हें प्रकाशित करने वाली 'सरस्वती' का भी उल्लेख किया।[3]

धार्मिक कविता के क्षेत्र में उस युग के कवियों की मनोदृष्टि की नवीनता अनेक रूपों में व्यक्त हुई। पौराणिक अवतारवाद से प्रभावित भक्तिकाल ने राम और कृष्ण को ईश्वर के रूप में चित्रित किया था। बीसवीं शती ई० के विज्ञानयुग में उनके मानवीकरण की

---

१. उदाहरणार्थ मैथिलीशरण गुप्त 'किसान।'
२ " 'आंसू' आदि।
३ " अर्जुन और सुभद्रा आदि कविताएं

प्रक्रिया सर्वथा स्वाभाविक था इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' तथा 'पंचवटी' में कृष्ण और राम का मानवरूप में चरित्रचित्रण करने वाले अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त ने उन्हें अवतार न मानकर मनुष्य रूप में ही ग्रहण किया। उन कवियों के आत्मनिवेदन से यह स्वयं सिद्ध है कि उन्होंने कृष्ण और राम को ईश्वर माना है।[1] उन्हें महापुरुष के रूप में चित्रित करने का कारण यह है कि आधुनिक युग का विज्ञानवादी संसार उन्हें ईश्वर स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं था और उन कवियों को साहित्य-जगत् को ऐसी वस्तु देनी थी जो अवतारवादियों तथा अनवतारवादियों को समान रूप से रोचक और उपयोगी हो। ईश्वर के रूप में राम और कृष्ण का चरित्र अंकित करने से एक हानि भी हुई है। 'रामचरित मानस' या 'सूरसागर' का पाठक ईश्वररूप राम और कृष्ण का अनुकरण करने का कभी प्रयास नहीं करता क्योंकि वह मान बैठा है कि राम और कृष्ण ईश्वर थे अतएव उनके कृत्य भी अतिमानवीय थे और उन कृत्यों का अनुकरण करना मनुष्य के लिए असम्भव है। वाल्मीकि और व्यास की भाँति राम और कृष्ण को महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करके द्विवेदी-युग ने हिन्दी-जनता के समक्ष अनुकरणीय चरित्र का आदर्श उपस्थित किया।

द्विवेदी-युग के कवियों की दृष्टि अवतार तक ही सीमित नहीं रही। उन्होंने विश्व-कल्याण और लोकसेवा को भी ईश्वर का आदेश और उसकी प्राप्ति का साधन समझा। इस रूप के प्रतिष्ठापक कवियों ने यह अनुभव किया कि भगवान् का दर्शन विलास और वैभव की आनन्दभूमि में रहकर नहीं किया जासकता, वह तो दीन दुखियों के प्रति सहानुभूति और उनके दुःख-निवारण में ही मिल सकता है, यथा—

मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के सदन में॥
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में भजन में॥
मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥[2]

---

१. उदाहरणार्थ 'प्रियप्रवास' की भूमिका में हरिऔध जी ने कृष्ण को महापुरुष माना है, ईश्वर का अवतार नहीं। 'साकेत' के आरम्भ में मैथिलीशरण गुप्त भी कहते हैं—

'राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?

२. 'अन्वेषण'—रामनरेश त्रिपाठी

माधुरी भाग १ खंड १ संख्या १ पृ० ३१

दार्शनिक कवियों ने ईश्वर को किसी मन्दिर या अवतार में न देखकर और भावना के संकुचित घेरे से निकाल कर विराट् रूप में उसका दर्शन किया—

जिस मंदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है।
जिस मंदिर में रंक नरेश समान रहा है॥
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा।
जिस मंदिर के दीप इंदु, दिनकर औ तारा॥
उस मंदिर के नाथ को निरुपम निर्मम स्वस्थ को।
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गृहस्थ को॥[1]

अवतारों और देवी-देवताओं, राजाओं तथा अन्य ऐतिहासिक महापुरुषों, कल्पित नायक-नायिकाओं और प्रेम-कथाओं आदि का वर्णन करते २ हिन्दी-कवि थक गए थे। इसी समय आचार्य द्विवेदी जी ने उन्हें विषय-परिवर्तन का आदेश किया। उनके युग के कवियों की दृष्टि परम्परागत स्थान पर ही केन्द्रित न रह सकी और उन्होंने असाधारण मानवता तथा देवता से आगे बढ़कर सामान्य मानव समाज को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया। भारतेन्दु-युग ने भी सामाजिक कुरीतियों पर आक्षेप किया था और कहीं कहीं दलितों के प्रति सहानुभूति भी दिखाई थी। किन्तु वह प्रगति अपेक्षाकृत नगण्य थी। कवि द्विवेदी की भाँति उनके युग के कवियों की सामाजिक भावनाएं भी चार रूपों में व्यक्त हुईं समाज के सन्तप्त वर्ग के प्रति सहानुभूति, समाज को कुरीतियों से बचने और सन्मार्ग पर चलने का स्पष्ट उपदेश, उसकी बुराइयों का व्यंग्यात्मक उपहास तथा पतनोन्मुख समाज की, उसकी बुराइयों के कारण, कठोर भर्त्सना।

सहानुभूति के प्रधानपात्र अछूत, किसान, मजदूर, अशिक्षित नारियां, विधवा, भिक्षुक आदि हुए।[2] किसान और मजदूर की ओर विशेष ध्यान दिया। द्विवेदी जी ने 'अवध

---

१. 'नमस्कार'—जयशंकर प्रसाद,
इंदु कला ४, खंड २, पृ० १।

२. उदाहरणार्थ—

(क) खपाया किए जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर।
उड़ाते माल धनिक भर पूर, मलाई लड्डू मोतीचूर॥
सुधरने में है जा के देर, अभी है बहुत बड़ा अंधेर॥
अन्नदाता है धीर किसान, सिपाही दिखलाते हैं शान।
डराते उन्हें तमाचा तान, तुम्हें क्या सूझी हे भगवान!
आवले खट्टे मीठे बेर! किया है क्यों ऐसा अन्धेर?

सनेही मयंक भाग १५ संख्या ५ पृष्ठ ४६

क किसाना को बरबादी का भक्त पुस्तक में जमींदार द्वारा किसानों पर किए गए अत्याचारों का चित्रण किया था, परन्तु वह पुस्तक गद्य में थी। कविता के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त के 'किसान' (१९१५ ई०), गयाप्रसाद शुक्ल सनेही के 'कृषक क्रन्दन' (१९१६ ई०) और सियारामशरण गुप्त के 'अनाथ' (१९१७ ई०) में किसान और श्रमजीवी के प्रति जमींदार, महाजन और पुलिस आदि के द्वारा किए गए घोर अत्याचारों का निरूपण हुआ। द्विवेदी-युग में की गई इस प्रकार की कविताएं आगामी प्रगतिशील काव्य की भित्ति के रूप में प्रस्तुत हुईं।

कवियों की उपदेश-प्रवृत्ति मुख्यतः धर्मप्रचारकों की देन थी। ईसाइयों, ब्राह्मसमाजियों, आर्यसमाजियों, सनातनधर्मियों आदि ने अपने अपने मतों का प्रचार करने के लिए देश के विभिन्न स्थानों में घूम घूम कर धार्मिक उपदेश दिए। उनकी सफलता से प्रभावित हिन्दी साहित्यकारों ने भी इस शैली को अपनाया। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'भारतभारती' में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को उनके धर्म कर्म की हीनदशा का परिचय कराते हुए उन्नत होने के लिए विशेष उपदेश दिया। इस उपदेश के पात्र कवि आदि भी हुए।[1]

सामाजिक अभिव्यक्ति का तीसरा रूप—व्यंग्यात्मक उपहास—तीन प्रकार के विषयों को लेकर उपस्थित किया गया। कहीं तो नई सभ्यता संस्कृति और नए आचार-विचार को अपनाने वाले नवशिक्षित बाबुओं की हंसी उड़ाई गई,[2] कहीं अपरिवर्तनवादी धार्मिक कट्टरपंथियों के समयविरुद्ध धर्माडम्बर पर हास्य मिश्रित व्यंग्य किया गया।[3] और कहीं

(ख) आज अविद्या मूर्ति सी हैं सब श्रीमतियाँ यहा।
दृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतियाँ यहा॥
गोपालशरणसिंह—सर०, भाग, २६, संख्या ६।

(ग) निराला जी की 'विधवा' और 'भिक्षुक' [पश्चिमी में संकलित]

१. यथा:—... ... ...
केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।
....
मैथिलीशरण गुप्त—'इन्दु', कला ५, किरण १, पृष्ठ ६५।
छठे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, पृष्ठ ४३, ४४।

२ यथा:—१९०८ ई० की 'सरस्वती' में प्रकाशित लाजूराम शर्मा की 'पंचपुकार'।

३ लोग उतना ही बनाते हैं तुम्हें रंग जितने ही बुरे हों चढ़ गए
पर तिलक इस बात का साक्षी नहीं इस तरह तुम धर्म पर बढ़ गए या बढ़ गए

अपनी ही बात को आप्त एवं प्रधान मानने वाले साहित्यिकों, समालोचकों, सम्पादकों आदि पर आक्षेप।[1]

भर्त्सनामय अभिव्यक्ति समाज के उन दिग्गजों के प्रति थी जो बार बार समझाने पर भी, समाज के अत्यन्त पतित होजाने पर भी, आखें खोलने को प्रस्तुत न थे और अपनी हठधर्मी के कारण अशुभ पथ पर चल रहे थे। यह अभिव्यक्ति कहीं तो वाच्यप्रधान थी जिसमे सीधे शब्दो द्वारा समाज को फटकार बताई गई थी, यथा—

यह सुन मेरी विकट बोलिया चौक पड़े चंद्रकुल।
पर जो हिन्दू बात कहेगा हिन्दी के प्रतिकूल॥
उसे घर घर धिक्कारूंगा।
किसी से कभी न हारूंगा॥[2]

और कहीं व्यंग्यप्रधान थी जिसमें काकु आदि के सहारे हठधर्मियों पर तीव्र आक्षेप किया गया, यथा—

सुने स्वर्ग मे लौ लगाते रहो, पुनर्जन्म के गीत गाते रहो।
डरो कर्म प्रारब्ध के योग से, करो मुक्ति की कामना भोग मे।
नई ज्योति की ओर जाना नहीं, पुराने दिये को बुझाना नहीं॥[3]

समाज की आलोचना रूप मे प्रस्तुत इन कविताओं की अन्तःसमीक्षा करने पर कुछ बातें स्पष्ट होजाती है। उन कवियो का उद्देश समाज-सुधार था। वे चाहते थे कि समाज अपनी सभ्यता, संस्कृति और वातावरण के अनकूल केंचुल को छोड़ दे और मातृभाषा का सम्मान करे। साहित्यकारों के विषय मे उनका मत था कि वे व्यर्थ की हठधर्मी और

इस तरह के हैं कई ठीके बने, जो कि तन के रोग को देते भगा।
जो न मन के रोग का टीकाबना, तो हुआ क्या लाभ यह टीका लगा।
हरिऔध—'सरस्वती', भाग १६, संख्या २।

१. यथा:— कोकिल, तू क्यों 'कुऊ' 'कुऊ' रटता रहता है?
करके उसमे सन्धि न क्यों कू-क्ऊ कहता है?
आलोचक जी, रीति मुझे भी यह जँचती है।
बात वही है और एक मात्रा बचती है।
सुनिए वह घुग्घू यह विषय कैसा अच्छा जानता।
है 'घु-ऊ' 'घु-ऊ' कहकर न जो 'घू-घू' मात्र बखानता।
मैथिलीशरण गुप्त—'माधुरी', भाग १, खंड १, सं० ४ पृष्ठ ३३।

२ 'सरस्वती', १६०८ ई० पृष्ठ २१४

३ सरस्वती, भाग ८ सख्या १।

मदन-मदन मे दूर रहकर सच्चे ज्ञान का प्रसार करें इस उद्देश की पूर्ति कवियों के लिए एक जटिल समस्या थी। समाज के धर्म के ठेकेदार पंडित लोग थे। शिक्षा और दंडविधान आदि सरकार के हाथ मे था जो जनसाधारण को कूपमंडूक ही बनाए रखना चाहती थी। कवियों के पास केवल शब्द का बल था और बिना भय के प्रीति असम्भव थी। पीड़ितों के प्रति सहानुभूति और असन्मार्गियों को दिया गया नग्न उपदेश समाज को विशेष प्रभावित करने और सुधारने मे अपर्याप्त था। इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कवियों ने हास्य और व्यंग्य का सहारा लिया। जब कोई मार्गभ्रष्ट उपदेश और आदेशसे नही सुधरता तब कभी कभी उसका कठोर उपहास ही उसे सत्पथ पर लाने मे समर्थ होता है। तत्कालीन समाज का संस्कार और रुचि इतनी गिर चुकी थी कि उसे जागृत करने के लिए कवियो को लट्ठमार-पद्धित का अवलम्बन करना पड़ा।

द्विवेदी-युग के कवियों की राजनैतिक भावना मुख्यतः तीन रूपों मे व्यक्त हुई। नई पद्धति पर दी गई ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा, भारतीयों के विदेश गमन और विदेशियों के भारत में आगमन, विदेशी शासको द्वारा देश के आर्थिक शोषण आदि ने कवियों को तुलनात्मक दृष्टि से आत्मसमीक्षा करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप उन्होंने देश की वर्तमान अधोगति के प्रति ग्लानि और क्षोभ का अनुभव किया। यह उनकी राजनैतिक भावना का पहला रूप था। इसकी अभिव्यक्ति तीन प्रकार से हुई। कहीं तो देश की दीनदशा का चित्राकन करते हुए उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की गई,[1] कही परिपीडक शासकों आदि के अत्याचारो का निरूपण किया गया[2] और कहीं पतित तथा दीन अवस्था

१ उदाहरणार्थः—

अन्न नहीं अब विपुल देश मे काल पड़ा है।
पापी यामर प्लेग पसारे पाव पड़ा है।
दिन दिन नई विपत्ति मर्म सब काट रही है।
उदरानल की लपट कलेजा चाट रही है॥

'सरस्वती' भाग १४, संख्या १२।

२. यथाः—

नौकरोंकी शाही सभ्यता का गला काटती है,
गांधी के संगाती आंखियों मे खटकत हैं।
भारत को लूट कूटनीति को उजाड़ रही,
न्याय के भिखारी ठौर ठौर भटकत हैं।
जेलों मे स्वदेशभक्त हिंसाहीन सज्जनों को,
पेटपाल, पातकी, पिशाच पटकत हैं।
कौन को पुकारें अब शंकर बचालो हमें,
गोरे और गोरों के गुलाम अटकत हैं॥

नाथूराम शर्मा मर्यादा, भाग २२ सं० ३ पृ० १३४

से मुक्ति पाने का प्रयास न करने वाले देशवासियों की भर्त्सना की गई।[1]

अन्धकारमय वर्तमान के कलंक दृश्य दिखाकर ही पीड़ित जाति को संतोष नहीं हुआ। क्षुब्ध मन को आश्वासन देने तथा कल्पित आनन्द लेने के लिए द्विवेदी युग के कवियों ने भारत का प्रेम पुरस्सर गौरव-गान किया। यह राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप था। इस रूप के चार प्रधान प्रकार थे। कहीं तो भारत के अतीत वैभव और महिमा के उज्ज्वल चित्र अंकित किए गए,[2] कहीं देवी-देवता के रूप में उसकी प्रतिष्ठा की गई,[3] कहीं देश के प्राकृतिक मनोहर दृश्यों का चित्रण किया गया[4] और कहीं सीधे शब्दों में देश के प्रति अतिशय प्रेम का प्रदर्शन हुआ।[5]

---

१. ज्ञान में, मान में, शक्ति में हीन हो,
दान में, ध्यान में, भक्ति से हीन हो;
आलसी भी महामूढ़ प्राचीन हो,
सोच देखो सभी में तुम्हीं दीन हो।
अंग को आसुओं में भिगोते रहो,
क्यों जगोगे अभी देश सोते रहो॥
रामचरित उपाध्याय—सर०, मार्च, १९१६ ई०, पृ० १९०।

२. जगत ने जिसके पद थे छुए, सकल देश ऋणी जिसके हुए।
ललित लाभ कला सब थी जहाँ, अब हरे वह भारत है कहाँ?
मैथिलीशरण गुप्त—सर०, भाग ११, संख्या १।

३ यथा:— नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नादिया प्रेमप्रवाह फूल तारे मंडन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द शेषफन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥
मैथिलीशरण गुप्त—'भारत-गीत'।

४. यथा:— जिसके तीनों ओर महोदधि रत्नाकर है।
उत्तर में हिमराशि रूप सर्वोच्च शिखर है॥
जिसमें प्रकृति विकास रम्य ऋतुक्रम उत्तम है।
जीव जन्तु फलफूल शस्य अद्भुत अनुपम है॥
पृथ्वी पर कोई देश भी इसके नहीं समान है।
इस दिव्य देश में जन्म का हमें बहुत अभिमान है॥
रामनरेश त्रिपाठी—सर० भाग १५, संख्या १।

५. यथा:— पुण्य भूमि है, स्वर्गभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं
पादेय—सर० भाग १४ सं० ६

समय और अतीत के सर्वांग्य चित्र अंकित कर लेना ही भविष्य को लिए आत्म न था। कवियों ने अपने मन में भली भाति विचार करके सपनेहुँ सुख नाहीं'। इनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा ने राजनैतिक क का तीखा रूप धारण किया यह अभिव्यक्ति साधारणतया पांच प्रकार पना दुःख रो रोकर उससे मुक्त करने के लिए शासकों से प्रार्थना की यत्रणा का अन्त करने के लिए देवी-देवताओं और आदर्श मानवों की कहीं गिरी हुई दशा से ऊपर उठने के लिए देशवासियों को विनम्र ा,[3] कहीं अवनति से उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए मेल जोल की कहीं बाहुबल से क्रान्ति कर देने का सन्देश सुनाया गया।[4] भारत के दीनहीन वर्तमान और आशापूर्ण भविष्य का सुन्दरतम चित्राकन की 'भारत-भारती' में हुआ। वह स्वगत राष्ट्र भावना के कारण ही प्रियतम रचना हो सकी।

युग की तुलना में द्विवेदी-युग की राजनैतिक या राष्ट्रीय कविता अतीत

फरियाद लगाने जाएंगे, दुख दर्द सुनाने जाएंगे।
हम अपना धर्म निभाएंगे तुम अपना काम करो न करो॥
सम्पूर्णानन्द—प्रभा, भाग २, संख्या १, पृष्ठ १६६।

सत्याग्रह से अनुशासन की, असहयोग से दुःशासन की।
साम्यवाद से सिंहासन की, स्वतंत्रता से आश्वासन की॥
छिड़ी हुई है, कर्मक्षेत्र में शुचि संग्राम मचाने आवें।
यदि मानव होवें भूतल पर मानवता दिखलाने आवें॥
एक राष्ट्रीय आत्मा—प्रभा, वर्ष २, खंड १, पृष्ठ ३५, ३६।

कहते हैं सब लोग हमें हम दीन हीन हैं भिक्षुक हैं।
कुछ भी हो हम लोग अभी अच्छे बनने के इच्छुक हैं॥
रूपनारायण पांडेय—'सरस्वती', भाग १४, सं० ६।

हम कौन थे क्या हो गए अब और क्या होंगे अभी—
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।
मैथिलीशरण गुप्त—'भारत-भारती'।

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई
कोटिकंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई भाई॥
रूपनारायण पांडेय—'सरस्वती', भाग १४, सं० ६।

काव्य के संदर्भ के उद्धृत राय कृष्णदास की 'चेतावनी', रामसिंह की
का मूल्य आदि गद्यकाव्य तथा चतुर्वेदी, सुमद्रा
मारी आदि की कविताएं

से वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, उपदेश से कर्म, पर-प्रार्थना से स्वावलम्बन, निराशा तथा अविश्वास से आशा तथा विश्वास और दीनतापूर्ण नम्रता से क्रान्तिपूर्ण उद्‌गार की ओर अग्रसर होती गई है। उस युग के पूर्वार्द्ध में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पांडेय आदि का स्वर नम्रतापूर्ण रहा किन्तु उत्तरार्द्ध में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, 'एक राष्ट्रीय आत्मा' आदि स्वतंत्रता-आन्दोलन के अनुभवी कार्यकर्ता कवियों का स्वर क्रान्तिकारी उद्‌गारों से भरा हुआ है।

द्विवेदी-युग में प्रकृति पर लिखित कविताओं का पांच दृष्टियों से वर्गीकरण किया जा सकता है। भाव की दृष्टि से प्रकृति का वर्णन दो रूपों में किया गया एक तो भाव चित्रण और दूसरा रूप चित्रण। भावांकन ज्ञानतत्वप्रधान था। प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और दृश्यांकन द्वारा कवि ने एक दार्शनिक की भांति उसके रहस्यों का उद्‌घाटन किया, यथा:—

वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती—जीवन है भार।
आह! पावस नद के उद्‌गार
काल के बनते चिन्ह कराल,
प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल।[1]

रूप चित्रण में कलातत्व की प्रधानता थी। इसमें कवि ने चित्रकार की भाँति प्रकृति के ऐन्द्रिक दृश्यांकन द्वारा उसका बिम्ब ग्रहण कराने का प्रयास किया यथा:—

अचल के शिखरों पर जा चढ़ी
किरण पादप शीश विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला
गगनमंडल मध्य शनैः शनैः॥[2]

सौन्दर्य की दृष्टि से प्रकृति के मुख्यतया दो रूप अंकित किए गए, एक तो उसकी मधुरता और कोमलता का दूसरा उसकी भयंकरता और उग्रता का। इन दोनों चित्रों की भिन्नता का

१. 'अनित्य जग'—सुमित्रानन्दन पंत, १९२४ ई०।
'आधुनिक कवि' पृष्ठ ३३
२ 'प्रियप्रवास' सर्ग १ पद ५

आधार कवि या उसके वर्णित पात्र के स्थायी भाव की भिन्नता ही है जहां कवि या उसके कल्पित पात्र के हृदय में मृदु भाव की प्रधानता रही है वहां उसने प्रकृति के रमणीय रूपों का ही निरूपण किया है, उदाहरणार्थ—

किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन ?[1]

जहां कवि या उसके कल्पित पात्र का कोमल सौन्दर्यस्वप्न टूट गया है और उसने कठोर तर्क द्वारा प्रकृति की नाशकारी क्रान्ति का भावन किया है, जहां उसके हृदय में रति के स्थान पर घृणा, भय या क्रोध का उदय हुआ है, वहां उसने प्रकृति के उग्र और भयंकर रूप का ही निरूपण किया है, उदाहरणार्थ पंत का 'निष्ठुर परिवर्तन'।[2] विभाव की दृष्टि से प्रकृति चित्रण के दो रूप थे—उद्दीपन और आलम्बन। उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किसी रस या भाव की अनुकूल भूमिका के निर्माण के लिए किया गया, जैसे मैथिलीशरण गुप्त की 'पंचवटी' के आरम्भ में लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा के स्थायी भाव रति की सम्यक् अभिव्यंजना करने के लिए तदनुकूल उद्दीपन विभाव का चित्रण अपेक्षित था। यदि किसी साधारण परिस्थिति में ही लक्ष्मण अपने काम-संयम का परिचय देते तो उसमें उनका कोई विशेष गौरव न होता। व्यभिचार की प्रत्येक सुविधा होते हुए भी उन्होंने इन्द्रियनिग्रह किया यह उनके चरित्र की महिमा थी। इन्हीं भावों की सुन्दरतर मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया गया। जहाँ कवि या कवि-कल्पित पात्र ने प्रकृति को तटस्थ भाव से देखा है, वहां उसका चित्रण आलम्बन-रूप में किया है, जैसे 'पथिक' का आरम्भिक पद।

निरूपित और निरूपयिता के सम्बन्ध की दृष्टि से भी प्रकृति-चित्रण दो प्रकार से हुआ—दृश्य-दर्शक-सम्बन्ध-सूचक और तादात्म्य-सूचक। जहां वस्तूपस्थापन-पद्धति पर चलते हुए कवि या उसके कल्पित पात्र ने अपने को प्रकृति से भिन्न मान कर उसका रूपाकन किया है, वहां दृश्यदर्शक-सम्बन्ध की व्यंजना हुई है, यथा:—

---

१. 'किरण', जयशंकरप्रसाद
'झरना', पृष्ठ १४।

२ आधुनिक कवि २

कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम, ग्रहस्थ निवास बने थे
छपरेलों में कद्दू करेलों की बेल के खूब तनाव तने हुए थे ॥
जल शीतल अन्न जहाँ पर पाकर पक्षी घरों में घने हुए थे,
सब ओर स्वदेश, स्वजाति, समाज भलाई के ठान ठने हुए थे ॥[1]

जहा बाह्य जगत को अन्तर्जगत् का प्रतिबिम्ब मानकर कवि या कवि कल्पित पात्र ने प्रकृति की अभिव्यक्ति मे अपने हृदय की अभिव्यक्ति का दर्शन किया है, वहा तादात्म्य-सम्बन्ध की व्यंजना हुई है यथा:—

चातक की चकित पुकारे श्यामा ध्वनि तरल रसीली ।
मेरी करुणार्द्र कथा की टुकडी आसू से गीली ॥[2]

विधान की दृष्टि से द्विवेदी-युग की कविता मे प्रकृति चित्रण प्रस्तुत और अप्रस्तुत दो रूपो मे हुआ । प्रस्तुत विधान की विशेषता यह थी कि उसमें प्रकृति चित्रण कवि का निश्चित उद्देश था । जहाँ प्रकृति आलम्बन रूप में अंकित की गई वहां तो वह वर्ण्य विषय थी ही किन्तु जहा वह उद्दीपन रूप में अंकित हुई वहा भी वास्तविक वर्ण्य विषय उपस्थित था ।[3] अप्रस्तुत-विधान की विशेषता यह थी कि उसमें प्रकृति-चित्रण कवि का उद्देश नहीं था । प्रकृति-चित्रण व्यंजक और उपस्थित मुख्य विषय व्यग्य था । लक्षणा, उपमा, रूपक आदि की सहायता से प्रस्तुत विषय में रमणीयता लाने के लिए ही उसकी योजना की गई, उदाहरणार्थ—

देखा बौने जलनिधि का शशि छूने को ललचाना ।
वह हाहाकार मचाना फिर उठ उठ कर गिर जाना ॥[4]

रीतिकालीन शृंगारिक कविताएं प्रायः परप्रसन्नता-साधक, वस्तुवर्णनात्मक, वासनाप्रधान, सीमित और नखशिख-वर्णन नायक-नायिकाभेद आदि के रूप मे लिखी गई थीं । उनका यह प्रवाह भारतेन्दु-युग तक चलता रहा । द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन ने रतिव्यंजना की इस धारा को सहसा रोक दिया । परन्तु मानव-मन की सहज प्रेम-प्रवृत्ति को रोकना असम्भव था । द्विवेदी युग के कवियो की प्रेम भावना परिवर्तित और संस्कृत रूप मे व्यक्त हुई । यह द्विवेदी जी के आदर्श का प्रभाव था । उनके युग की प्रेम प्रधान कविताओ में घोर शृंगारिकता, असंयम, व्यक्तिगतत्व, वासना आदि के स्थान पर शिष्टता, संयम, व्यापकता,

---

१ रूपनारायण पांडेय—'प्रभा', भाग १, पृष्ठ ३३७ ।
२ जयशंकर प्रसाद—'आंसू' ।
३ यथा शुक्ल का हृदय का मधुर भार और प्रियप्रवास का प्रकृति-वर्णन
४ आंसू प्रसाद

बीच में उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिए उन्हें सम्बुद्ध भी करता चलता है किन्तु कला की दृष्टि से आधुनिक कहानियों में इनका कोई स्थान नहीं है। कथात्मक पद्धित का दूसरा प्रकार–तटस्थ वर्णन–कहानी की एक प्रधान प्रणाली है। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती',[1] मास्टर भगवान दीन की 'प्लेग की चुड़ैल',[2] द्विवेदी जी की 'तीन देवता',[3] रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय',[4] आदि कहानियों में इस प्रणाली का अविकसित और अकलात्मक रूप दिखाई पड़ता है। प्रारम्भिक कथावर्णन की शैली अलौकिक, दैवी, आश्चर्यजनक, असम्भव आदि तत्वों से आकीर्ण है, यथा 'भूतोंवाली हवेली',[5] एक अलौकिक-घटना',[6] 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान',[7] 'भुतही कोठरी'[8] आदि। तटस्थवर्णन पद्धति की जिन कहानियों में दैवयोग, अतिप्राकृत तथा अद्भुत तत्वों का परित्याग और यथार्थता, विश्लेषण, मनोविज्ञान, नाटकीयता आदि का सम्मिश्रण हुआ उनमें आधुनिक कहानी का कलात्मक सुन्दर रूप व्यक्त हुआ, उदाहरणार्थ 'दुलाई वाली'[9] 'ताई'[10] 'सौत'[11] आदि।

कथात्मक शैली के तृतीय प्रकार–आत्मचरित–का प्रयोग तीन प्रकार से हुआ। पहला प्रकार कल्पनाप्रधान वर्णन का है जिसमें मानवीकरण, कविकल्पना आदि के सहारे कहानी सौन्दर्य की सृष्टि की गई है, यथा 'इत्यादि की आत्मकहानी',[12] एक 'अशरफी की आत्मकहानी'[13] आदि। दूसरा प्रकार यथार्थ घटनावर्णन का है जिसमें वास्तविक भ्रमण, शिकार आदि स्वानुभव तथा परानुभव की घटनाओं का वर्णन हुआ है, उदाहरणार्थ 'एक शिकारी की सच्ची कहानी',[14] 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा'[15] आदि। इन कहानियों में घटनाओं

१. सरस्वती, जून, १९०३ ई०।
२. सरस्वती, १९०२ ई०।
३. सरस्वती, १९०३ ई०, पृष्ठ १२३।
४. सरस्वती, १९०३ ई०, पृ० ३०८।
५. लाला पार्वती नन्दन, सरस्वती १९०३ ई० पृ० २३५।
६. राजा पृथ्वीपाल सिंह सरस्वती, १९०४ ई०, पृ० ३१९।
७. सूर्य नारायण दीक्षित सरस्वती, १९०६ ई०, पृ० २०४।
८. मधुमंगल मिश्र, सरस्वती, १९०८ ई०, पृ० ४८८।
९. श्रीमती बंगमहिला, 'सरस्वती', १९०७ ई०, पृ० २७८।
१०. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, 'सरस्वती', १९२० ई०, पृ० ३१।
११. प्रेमचन्द, 'सरस्वती', १९१५ ई०, पृ० ३५३।
१२. यशोदानन्दन अखौरी, 'सरस्वती', भाग ५, पृ० ४४०।
१३. वेंकटेश नारायण तिवारी, 'सरस्वती', भाग ७, पृ० ३९९।
१४. श्री निज़ामशाह, 'सरस्वती', १९०५ ई०; पृ० २९९।
१५ श्रीलाल 'सरस्वती', १९०९ ई० पृ० ४०

का बाहुल्य और मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा अध्यात्मिक विश्लेषण का अभाव होने के कारण कहानी की आत्मचरित शैली का साहित्यिक और बलात्मक प्रयोग इन दोनों रूपों में नहीं हो सका है। आत्मचरित प्रणाली का तीसरा प्रकार विश्लेषणात्मक है। विश्लेषणात्मक कहानियों में लेखक ने कहानी के पात्र के मुख से ही वस्तु विन्यास कराया है और मानव जीवन के किसी न किसी पक्ष की व्याख्या की है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'अंधेरी दुनिया' और 'कवि की स्त्री' तथा प्रेमचन्द की 'शान्ति' आदि कहानियाँ इसी कोटि की हैं।

कथात्मक प्रणाली के दो अप्रचलित रूप और भी हैं—पत्र पद्धति और दैनन्दिनी-पद्धति उदाहरणार्थ क्रमशः 'देवदासी' (जयशंकरप्रसाद) और 'विमाता का हृदय'।[1] कहानीकला की दृष्टि से ये दोनों ही रूप अवाछनीय हैं। संवेदना की तीव्रता न होने के कारण इस प्रकार की कहानियाँ प्रभावोत्पादक नहीं हो पातीं और उनका उद्देश ही अधूरा रह जाता है।

द्विवेदी-युग के कहानी साहित्य की दूसरी व्यापक शैली काव्यात्मक है। इसके प्रायः दो प्रकार परिलक्षित होते हैं—वस्तु चमत्कार प्रधान और भाषा-चमत्कार प्रधान। पहले प्रकार की कहानियों के पात्र प्रायः नवयुवक, कल्पनायुक्त, भावुक, आशावादी और प्रेम-पीड़ित होते हैं। घटनाओं का अधिकांश कल्पनाजन्य और सारा वातावरण ही काव्यमय होता है। भाषा कवित्वपूर्ण होते हुए भी निरलंकार है। 'रसिया बालम',[2] 'कानोंमें कंगना'[3] 'दिनों का फेर',[4] 'चित्रकार'[5] 'सच्चा कवि'[6] आदि भावात्मक कहानियाँ इसी काव्यात्मक शैली की हैं। भाषा चमत्कारप्रधान काव्यात्मक कहानियों के लेखकों ने वस्तु-चमत्कार योजनाके साथ ही भाषा को अलंकृत करने और कवित्वपूर्ण बनाने का विशेष प्रयास किया। हिन्दी-कथा-साहित्य के बाणभट्ट चण्डीप्रसाद हृदयेश इस शैली के प्रमुख कहानीकार हैं। उनकी 'सुधा', 'शान्ति निकेतन' आदि कहानियों में भाव की अपेक्षा भाषा की रमणीयता ही अधिक आकर्षक है। इस काव्यात्मक पद्धति पर कभी कभी रूपक-प्रणाली का आश्रय लेकर छोटी छोटी मार्मिक कहानियों की रचना की गई, उदाहरणार्थ अज्ञेय की 'अमर बल्लरी' सुदर्शन की 'कमल की बेटी', रायकृष्णदास की 'परदे का प्रारम्भ' आदि। इन

---

१. आधुनिक हिन्दी 'कहानियां' में संकलित।
२. प्रसाद, 'इन्दु', एप्रिल, १९१२ ई०।
३. राधिकारमण प्रसाद सिंह, 'इन्दु', कला ४, खंड २, किरण ५।
४. रायकृष्णदास, 'प्रभा', वर्ष २, खंड २।
५. कृष्णानन्द गुप्त, 'प्रभा', वर्ष ३, खंड १।
६. शर्मा कौशिक' 'माधुरी' वर्ष ३ खंड १

कहानियों की विशेषता यह है। अचेतन वस्तु में चैतन्य का आरोप करके उसी की दृष्टि से सारी कहानी कही गई है। पात्र वातावरण आदि अपरिचित हैं, हम जिन रूपों में उन्हें नित्यप्रति देखते हैं उन रूपों में उनका चित्रण नहीं किया गया है।

द्विवेदी-युग की कहानियों की तीसरी व्यापक शैली नाटकीय है। वस्तुतः सभी सुन्दर कहानियों में नाटकीयता का कुछ न कुछ समावेश हुआ है। इसका कारण स्पष्ट है। मानव जीवन की प्रत्येक संवेदनीय घटना अभिनयात्मक है और कहानी उसी घटना का चित्रोपस्थापन या रहस्योद्घाटन करती है। स्थूल रूप से नाटकीय शैली भी काव्यात्मक शैली के ही अन्तर्गत मानी जा सकती है क्योंकि नाटक स्वयं ही काव्य है। उस युग की कहानियों के अधिक विस्तृत अध्ययन के लिए इस सूक्ष्म वर्गीकरण की आवश्यकता हुई है। इन दोनों शैलियों में मुख्य अन्तर यह है कि काव्यात्मक कहानी सामान्य काव्यगत मनोहर कवि-कल्पना और अलंकारिकता में विशिष्ट है और नाटकीय शैली की कहानी नाटकोचित कथोपकथन एवं घात-प्रतिघात से। इस शैली के मुख्यतः तीन प्रकार दिखाई देते हैं—संलाप-प्रधान, संघर्ष-प्रधान और उभय-प्रधान। संलाप-प्रधान कहानियों में कहानी का सौन्दर्य पात्रों के स्वाभाविक और नाटकीय कथोपकथन पर विशेष आधारित है, उदाहरणार्थ 'महात्मा जी की करतूत'।[1] संघर्ष-प्रधान कहानियों में दो पक्षों के संघर्ष, कभी हार कभी जीत और अन्त में घटना के नाटकीय अवसान का उपस्थापन है, यथा 'शतरंज के खिलाड़ी'[2] इस पद्धति का सुन्दरतम रूप उन कहानियों में व्यक्त हुआ है जिनमें लेखक ने नाटकीय संलाप और संघर्ष दोनों का सामंजस सन्निवेश किया है, उदाहरणार्थ जयशंकरप्रसाद लिखित 'आकाशदीप'।

उस युग की कहानियों की चौथी व्यापक शैली विश्लेषणात्मक है। इस पद्धति की कहानियों में पूर्वोक्त तीनों पद्धतियों में से किसी एक का या अनेक का प्रयोग अवश्य हुआ है किन्तु पात्र या पात्रों के अन्तर्गत या वाह्य जगत का विश्लेषण ही कहानी की मुख्य विशेषता है। विश्लेषणात्मक कहानियों की भूमिका दो रूपों में अंकित की गई है। चण्डीप्रसाद हृदयेश और जयशंकरप्रसाद ने प्रायः सभी भावात्मक कहानियों में पात्रों के भावपक्ष का विश्लेषण प्रकृति की भूमिका में किया है। प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि की अधिकांश विश्लेषणात्मक कहानियों में मानव-मन के रहस्यों और घात-प्रतिघात की विवेचना समाज की भूमिका में की गई है, उदाहरणार्थ 'पंचपरमेश्वर', 'मुक्तिमार्ग' आदि।

---

१ राय कृष्णदास 'प्रभा' वर्ष २ खंड २ पृ० २३१।
२ माधुरी वर्ष ३ खंड १ सं० ३ पृ० २१०

मनोवैज्ञानिक फ्रायड के सिद्धान्तों का युग अभी नहीं आया था अतएव द्विवेदी युग की कहानियों में मानव-मस्तिष्क की विशेष चीर-फाड नहीं हुई।

संवेदना की दृष्टि से द्विवेदी-युग की कहानियों के चार प्रधान वर्ग हैं—घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, भाव-प्रधान और चित्र-प्रधान। प्रथम वर्ग की कहानियाँ घटनाओं की शृंखलामात्र हैं। किसी कल्पित, सुनी, पढी या देखी हुई घटना अथवा घटनाओं से अति-प्रभावित कहानीकार उसे व्यक्त किए बिना नही रह सका है। उस युग की आरम्भिक घटना प्रधान कहानियो मे अद्भुत तत्व की अधिकता है, यथा पूर्वोक्त 'भूतों वाली हवेली', 'भुतही कोठरी' आदि। किन्तु आगे चलकर कलात्मक घटना प्रधान कहानियों की रचना साधारण जीवन की आकर्षण घटनाओ को लेकर की गई है, उदाहरणार्थ प्रेमचन्द की 'सुहाग की साडी',[1] 'भूत'[2] आदि। इस वर्ग की कहानियों में चरित, भाव आदि के विवेचन के कारण आधुनिक कहानी कला के विकास के साथ ही घटनात्मकता का ह्रास होता गया है।

कहानीकला का सुन्दर रूप उस युग की चरित्र-प्रधान कहानियों मे व्यक्त हुआ। ये कहानियाँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं। पहला प्रकार उन कहानियो का है जिसके पात्रों में किसी कारणवश कोई आकस्मिक परिवर्तन हो गया है और कहानी वहीं समाप्त हो गई है। आरम्भ से लेकर परिवर्तन के पहले तक पात्रों का एक रूप मे चरित्र-चित्रण हुआ है और तत्पश्चात् उसका दूसरा रूप व्यक्त हुआ है, यथा 'आत्मराम' (प्रेमचन्द), 'ताई'[3] आदि। दूसरे प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियों का सौन्दर्य चरित्र के आकस्मिक विकास में न हो कर उसकी दृढ़ता असामान्यता और प्रभावोत्पादकता मे है, यथा 'उसने कहा था',[4] 'खूनी',[5] 'बूढी काकी' (प्रेमचन्द), 'भिखारिन' (प्रसाद) आदि। इन कहानियो मे आरम्भ से लेकर अन्त तक चरित्र ही कहानी की घटनाओं का मुख्य केन्द्र रहा है और उसके किसी एक पक्ष का उसका उद्घाटन करके कहानी समाप्त हो गई है। नायक या नायिका को ऐसी परिस्थितियो में इस कलात्मक रूप से चित्रित किया गया है कि उसकी अन्तर्हित विशेषताएँ आलोकित हो गई हैं। चरित्र को आकर्षक बनाने के लिये लेखक ने उसे भावुकता और मनोविज्ञान की दृष्टि मे देखा है।

संवेदना के अनुसार द्विवेदी-युग की कहानियो की तीसरी प्रमुख कोटि भाव-प्रधान है।

---

१ 'प्रभा', वर्ष ३, खंड १, पृष्ठ ३१।
२. 'माधुरी', वर्ष ३, खंड १, सं १ पृष्ठ ६।
३. कौशिक, 'सरस्वती', वर्ष २१, खंड २ पृष्ठ ३१।
४. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, 'सरस्वती', भाग १६, खंड १, पृष्ठ ३१४।
५. चतुरसेन शास्त्री, 'प्रभा' अनवरी १९२४ ई०

चरित्र प्रधान कहानी न भाव प्रधान कहानी का मुख्य विशेषता यह है कि भाव प्रधान कहानी लेखक कहानीकार के समान ही और कहीं कहीं उससे बढ़कर कवि भी है। यही कारण है कि यह भावुकतावश घटना, चरित्र या रूप की अपेक्षा पात्रों के भावों का ही विशेष भावन और अभिव्यंजन करता है। गद्य के माध्यम द्वारा घटना, चरित्र आदि पर आधारित जीवन के किसी अंग का शब्द चित्र होने के कारण ही ये रचनाएँ कहानी कहलाती हैं, कविता नहीं। इन भाव-प्रधान कहानियों में प्रेम, त्याग, वीरता, कृपणता आदि भावों का काव्यात्मकी उद्घाटन किया गया है, यथा 'कानों में कंगना' (राधिकारमणप्रसाद सिंह), 'उन्माद (चंडीप्रसाद हृदयेश), 'आकाश दीप' (जयशंकर प्रसाद) आदि।

चौथा वर्ग चित्र-प्रधान कहानियों का है। भाव-प्रधान और चित्र-प्रधान दोनों ही प्रकार की कहानियां काव्यात्मक हैं। उनमें प्रमुख अन्तर यह है कि भाव प्रधान कहानी में कहानीकार का उद्देश पात्रों के भावों का ग्रहण करना रहता है किन्तु चित्र प्रधान कहानी में वह पात्रों के वातावरण का बिम्ब-ग्रहण कराने का प्रयास करता है। 'आकाश दीप' सभी श्रेष्ठ कहानियों में तो भाव और बिम्ब दोनों ही का सुन्दर चित्रण हुआ है। अंकित चित्रों की काल्पनिकता या यथार्थता के अनुसार चित्र-प्रधान कहानियाँ दो प्रकार की हैं। एक तो वे हैं जिनका प्रधान सौन्दर्य उनके कवित्वपूर्ण कल्पनामंडित और अतिरंजित वातावरण के चित्रों में निहित है, यथा 'प्रतिध्वनि' (प्रसाद), 'योगिनी' (हृदयेश), 'मिलनमुहूर्त' (गोविन्दवल्लभ पंत) 'कामनातरु' (प्रेमचन्द) आदि। दूसरा प्रकार उन कहानियों का है जिनके चित्र वास्तविक जगत और दैनिक जीवन से लिए गए हैं। बेचन शर्मा उग्र और चतुरसेन शास्त्री इस प्रकार के प्रतिनिधि लेखक हैं।

द्विवेदी-युग में जब कि उपन्यास-कला-शैली का विकास हो रहा था तभी उस युग के कहानी-लेखक अमर कहानियों की रचना कर रहे थे। 'कानों में कंगना', 'पंचपरमेश्वर', 'उसने कहा था', 'मुक्ति मार्ग', 'आत्माराम', 'मिलनमुहूर्त', 'आकाशदीप', 'खूनी', 'ताई', 'चित्रकार', 'बलिदान' आदि सुन्दर कहानियाँ उसी युग में लिखी गईं। ज्ञान-विज्ञान की उन्नति, कहानी कला के विकास और द्विवेदी जी की आदर्शोदात्ता, सुधार तथा प्रोत्साहन से प्रभावित होने के कारण द्विवेदी-युग के कहानीकारों ने तिलस्मी, जासूसी, ऐयारी और भूत प्रेत के जगत से ऊपर उठकर मानव-मानस तथा समाज और जीवन तक आने में अद्भुत प्रगति दिखाई। सुन्दरतम हिन्दी कहानियों के किसी भी संकलन में द्विवेदी-युग की कहानियों का स्थान अपेक्षाकृत बहुत ऊँचा है।

निबन्ध

द्विवेदी-युग में गद्यविकास के साथ ही निबन्ध-साहित्य का अच्छा विकास हुआ। द्विवेदी जी के निबन्धों की भाँति उस युग के निबन्ध भी चार रूपों में प्रस्तुत किए गए। पहला रूप पत्रिकाओं के लिए लिखित लेखों का था। बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि लेखकों के अधिकांश निबन्ध पत्रिकाओं के लेख रूप में ही प्रकाशित हुए और आगे चलकर उन्हें संग्रह-पुस्तक का रूप दिया गया। दूसरा रूप ग्रन्थों की भूमिकाओं का था। इस दिशा में 'जायसी-ग्रन्थावली', 'तुलसी ग्रन्थावली' [द्वितीय भाग] और 'भ्रमरगीतसार' की भूमिकाएँ विशेष महत्व की हैं। तीसरा रूप भाषणों का था। द्विवेदी-युग में दिए गए हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापतियों के महत्वपूर्ण भाषण इसी रूप के अन्तर्गत हैं। उस युग के निबन्धों का चौथा रूप पुस्तकों या पुस्तकों के आकार में दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ—द्विवेदी जी का 'नाट्यशास्त्र' या जयशंकर प्रसाद का 'चन्द्रगुप्त मौर्य।'

द्विवेदी-युग ने वर्णनात्मक, भावात्मक और चिन्तनात्मक सभी वर्ग के निबन्धों की रचना की। वर्णनात्मक निबन्धों के मुख्य चार प्रकार थे - वस्तुवर्णनात्मक, कथात्मक, आत्मकथात्मक और चरितात्मक। वर्णनात्मक निबन्धों में निबन्धकार ने तटस्थ भाव से अपने या दूसरों के शब्दों में अभीष्ट विषय का वर्णन किया। उसमें उसने हृदय या मस्तिष्क को अभिभूत कर देने वाली भावविचार व्यंजना नहीं की। वस्तुवर्णनात्मक निबन्धों में किसी जड़ या चेतन पदार्थ का परिचयात्मक निरूपण किया गया, उदाहरणार्थ 'इंगलैंड की जातीय चित्रशाला',[1] सोना निकालनेवाली चींटियां[2] आदि। कथात्मक निबन्धों में लेखक ने श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने वाले व्यास जी की भांति निबन्ध पाठकों का मनोरंजन करने का प्रयास किया है, यथा 'स्वर्ग की झलक',[3] 'एक अलौकिक घटना'[4] आदि। इन कथात्मक निबन्धों और आधुनिक वर्णनात्मक लघु कहानियों में अन्तर यह है कि कहानियों में कहानीकार ने कहानी की सीमा के अन्तर्गत रहकर विश्लेषण और वस्तु-विन्यास की ओर विशेष ध्यान दिया है किन्तु निबन्धकार आद्योपान्त ही स्वच्छन्द गति से चला है। इन दोनों के विकास के आरम्भिक रूपों में एकता है और एक ही रचना दोनों कोटियों में रखी जासकती है यथा इत्यादि की 'आत्मकहानी'। आत्मकथात्मक निबन्ध भी द्विवेदी-युग के साहित्य की मनोहर देन है। इन निबन्धों में वर्ण्य

---

१. काशीप्रसाद जायसवाल, 'सरस्वती', भाग ८, पृष्ठ ४६६।
२. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी 'सरस्वती' भाग १६, खंड २, पृष्ठ १३४।
३. महावीरप्रसाद, सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ ८२।
४ राजा पृथ्वीपालसिंह, 'सरस्वती' भाग ५ पृष्ठ ३३५

विषय को ही वक्ता बनाकर निबन्धकार ने उसी के मुख से उत्तम पुरुष में उसकी परिचयात्मक कहानी कही है।, यथा उपर्युक्त 'इत्यादि की आत्मकहानी',[1] 'एक अशरफी की आत्म-कहानी,[2] 'मुद्गरानन्द-चरितावली'[3] आदि। ये निबन्ध मनोरंजन की दृष्टि से विशेष आकर्षक हैं। चरितात्मक निबन्धों में ऐतिहासिक, साहित्यिक धार्मिक, राजनैतिक आदि महान् पुरुषों या स्त्रियों के जीवनचरित अंकित किए गए हैं। कुछ जीवनचरित अपने स्वामी, श्रद्धापात्र या प्रेममाजन को सस्ती ख्याति देने के लिए भी लेखकों ने अवश्य लिखे किन्तु अधिकांश का उद्देश आदर्शचरित्रों के चित्रण द्वारा पाठकों के ज्ञान और चरित्र का विकास करना ही था। इस क्षेत्र में द्विवेदी जी के अतिरिक्त वेणीप्रसाद, काशीप्रसाद, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किया। सैकड़ों जीवनचरित द्विवेदी-सम्पादित 'सरस्वती' में समय समय पर प्रकाशित हुए।

भावात्मक निबन्ध सहृदय निबन्धकार के हृदयोद्गार और पाठक के हृदय को अभिभूत कर देने वाले प्रभावाभिव्यंजक वस्तुपस्थापन हैं। द्विवेदी-युग के भावात्मक निबन्धों की तीन कोटियां हैं। एक तो साधारण भावात्मक निबन्ध हैं जिनमें चिन्तन और मर्मस्पर्शी कवित्व दोनों ही की अपेक्षाकृत न्यूनता है, उदाहरणार्थ 'कवित्व'[4] आदि। दूसरे विचारगर्भित भावात्मक निबन्ध हैं जिसमें काव्य की रमणीयता के साथ ही साथ चिन्तनीय सामग्री भी है, यथा आचरण की सभ्यता',[5] 'मजदूरी और प्रेम'[6] आदि और तीसरे गद्य-कविताओं के रूप में लिखे गए वे काव्यमय भावात्मक निबन्ध हैं जिनकी समीक्षा ऊपर कविता के प्रसंग में हो चुकी है।

चिन्तनात्मक निबन्धों में पाठकों के बौद्धिक विकास की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत की गई। बीच २ में कहीं कहीं वर्णनात्मकता या भावात्मकता का पुट होने पर भी चिन्तनात्मक निबन्धकार उनके प्रवाह में बहा नहीं है और अपनी विचार-व्यंजना के प्रति सदैव सावधान रहा है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि ने हिन्दी साहित्य के इस अंग की सुन्दर पूर्ति की। द्विवेदी-युग के चिन्तनात्मक निबन्ध तीन श्रेणियों में रखे जासकते हैं—व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक और

---

१. 'सरस्वती', भाग ५ पृष्ठ १६२।
२. 'सरस्वती' भाग ७, पृष्ठ ३६६।
३. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग १७ और १८ की अनेक संख्याओं में प्रकाशित।
४ चतुर्भुज औदीच्य, 'सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ १८।
५ पूर्णसिंह सरस्वती भाग १३, पृष्ठ १०१ और १११
६ पूर्णसिंह सरस्वती भाग १३ पृष्ठ ४१८

तार्किक। उस युग के पाठकों की बौद्धिक इयत्ता सीमित होने के कारण उस समय चिन्तनीय विषयों की व्याख्या की नितान्त आवश्यकता थी। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति'[१], और 'नागरी अंकों की उत्पत्ति'[२] आदि रोचक, विचारयुक्त और ठोस निबन्ध लिखे। रामचन्द्र शुक्ल के 'साहित्य',[३] 'कविता क्या है',[४] 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य',[५] आदि निबन्ध भी व्याख्यात्मक कोटि के हैं। नागरी प्रचारिणीपत्रिका के सत्रहवें, अठारहवें, उन्नीसवें तथा तेईसवें भागों में प्रकाशित शुक्लजी के 'क्रोध', 'भ्रम', 'निद्रारहस्य', 'घृणा', 'करुणा', 'ईर्ष्या', 'उत्साह', 'श्रद्धाभक्ति', 'लज्जा और ग्लानि' तथा 'लोभ या प्रेम आदि मनोवैज्ञानिक निबन्ध विशेष सारगर्भित और विश्लेषणात्मक हैं। श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन' [सम्वत् १९७९] और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का 'विश्वसाहित्य' [१९८१ ई०] आदि व्याख्याप्रधान चिन्तनात्मक निबन्धों के ही संग्रह हैं जिनमें कविता, उपन्यास, नाटक आदि का विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

आलोचनात्मक निबन्ध साहित्यिक रचनाओं या रचनाकारों की समीक्षा के रूप में उपस्थित किए गए। मिश्रबन्धु का 'वर्तमानकालिक हिन्दी साहित्य के गुण दोष',[६] रामचन्द्र शुक्ल-लिखित जायसी, तुलसी और सूर की भूमिकाएं आदि निबन्ध की उसी कोटि में हैं। तार्किक निबन्धों में निबन्धकारों ने अपने सारगर्भित विचारों को युक्तियुक्त ढंग से व्यक्त किया। चिन्तनात्मक निबन्ध के इस प्रकार की विशेषता विषय के न्यायानुकूल सप्रमाण प्रतिपादन में है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जयशंकर प्रसाद आदि के गवेषणात्मक और गुलाबराय के दार्शनिक निबन्धों का इस दिशा में महत्वपूर्ण स्थान है, उदाहरणार्थ उल्लुलुध्वनि [गुलेरी], 'चन्द्रगुप्त मौर्य' [प्रसाद] आदि।

भारतेन्दु युग के निबन्ध कहे जाने वाले लेखों में विषय या विचार की एकतानता न थी। एक ही निबन्ध में अनिबद्ध रूप से सबकुछ कह डालने का प्रयास किया गया था। द्विवेदी जी ने हिन्दी के निबन्ध को निबन्धता दी। उस युग के महान् निबन्धकारों के ललाट पर यशस्तिलक द्विवेदी जी के ही कृपालुकरों ने लगा। बेणीप्रसाद, काशीप्रसाद, रामचन्द्रशुक्ल, लक्ष्मीधर वाजपेयी, चतुर्भुज औदीच्य, यशोदानन्दन अखौरी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह,

---

१. प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, पृष्ठ १९।
२. 'द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्यविवरण', पृष्ठ २३।
३. 'सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ १५४ और १८९।
४. 'सरस्वती', भाग, १०, पृष्ठ १५५।
५. 'माधुरी'. भाग १, खंड, २ संख्या ५ और ६. पृष्ठ क्रमशः ४७३ और ६०३।
६ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १८ संख्या ३ ४ पृष्ठ ६३

सयुक्त महाशक्ति का उदय या पञ्चमहाभूतों का पुनर्जन्म आदि के निबन्धों की आद्योपान्त काटछाँट, संशोधन और परिवर्द्धन करके द्विवेदी जी ने उन्हें पठनीय और ठोस बनाया। उदाहरणार्थ 'इत्यादि की आत्मकहानी' के लेखक यशोदानन्दन अखौरी ने भाषा-त्रुटियों के अतिरिक्त वस्तु के संग्रह और त्याग में भी अकुशलता दिखलाई थी जिसके कारण रचना का निबन्ध-सौन्दर्य नष्ट होगया था। द्विवेदी जी ने अन्य संशोधनों के साथ उसकी उपमा में लिखित पूरे अवच्छेद को ही निकाल दिया। वेंकटेश नारायण तिवारी की 'एक अशरफी की आत्मकहानी', सत्यदेव के राजनीति-विज्ञान'[1], पूर्णसिंह के 'आचरण की सभ्यता' तथा 'मजदूरी और प्रेम,' रामचन्द्र शुक्ल के 'कविता क्या है ?' और 'साहित्य' आदि निबन्धों में अत्यन्त शिथिलता होने के कारण उनके निबन्धत्व में दोष आ गया था। द्विवेदी जी ने उनका संस्कार और परिष्कार करके उन्हें निबन्ध का आदर्शरूप दिया।[2]

रीति और शैली

लेखक की भाषा की रीति और शैली का वास्तविक दर्शन उसके निबन्धों में ही होता है। क्योंकि नाटक, उपन्यास, कहानी आदि की अपेक्षा वह निबन्धों में अधिक स्वच्छन्दता पूर्वक लेखनी चलाकर अपने व्यक्तित्व और प्रवृत्ति की निबन्ध अभिव्यंजना कर सकता है। द्विवेदी-युग की भाषा और शैली का रूप भी इन्हीं निबन्धों में विशेष निखरा। द्विवेदी जी ने गद्यभाषा का परिष्कार और संस्कार भी इन्हीं निबन्धों के द्वारा किया। यह बात नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियों से स्पष्ट प्रमाणित है। 'भाषा और भाषा-सुधार' अध्याय में द्विवेदी जी की भाषा की रीति और शैली की विवेचना करते समय यह कहा गया था कि उनकी प्रौढ़ रचनाओं में आद्योपान्त कोई एक ही रीति या शैली नहीं है। उनमें सभी रीतियों और शैलियों के बीज विद्यमान थे जो आगे चलकर उनके युग के गद्य-लेखकों की कृतियों में विकसित हुए। द्विवेदी जी ने अपने युग के लेखकों की रीति और शैली का भी परिमार्जन किया था। निम्नांकित उद्धरण उनके शैली-सुधार-कार्य को और भी स्पष्ट कर देंगे :-

	मूल	संशोधित
(क)	गेरुए वस्त्र की पूजा छोड़ो। गिरजे की घन्टी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पाँच वक्त की निमाज किस काम की ? दोनों	गेरुये वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो ? गिरजे की घंटी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पाँच वक्त की नमाज क्यों पढ़ते हो, त्रिकाल सन्ध्या क्यों करते

१. 'सरस्वती', १९०६ ई०
२. द्विवेदी जी द्वारा संशोधित उपर्युक्त तथा अन्य निबन्ध काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन में रक्षित सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियों में देखे जा सकते हैं

मूल	संशोधित
वक्तों की मध्या से क्या लाभ ? मजदूर के अनाथ नैनों, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। दिनरात का साधारण जीवन एक ईश्वरीय रूप-भजन हो जायगा ।	हो ! मजदूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो । फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो जायगा ।
मजदूरी तो मनुष्य का व्यष्टी रूप समष्टी रूप का परिणाम है ।[1]	मजदूरी तो मनुष्य के समष्टि रूप का व्यष्टि रूप परिणाम है ।
(ख) स्वर्णमुद्रा की आत्मकहानी गत सोमवार को मैं पं० शिव जी के सहित, कलकत्ते गया था । घूमते २ हम दोनों अद्भुतालय अजायबघर की तरफ जा निकले । (अजायबघर) की बात ही क्या ! वहा की सर्व संग्रहीत वस्तु अजीब हैं । वहा देश देशान्तर के सुन्दर, भयानक, छोटे, बडे जीवजन्तु देखने में आते हैं यहाँ पर रंग बिरंगी चिड़ियाँ हैं, वहाँ पर नानाप्रकार की मछलियां हैं । कहीं शेर कटघरे में बन्द इस बात को बताते हैं कि 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य', और कहीं अजगरों को देखकर जगत्पिता की करुणा याद आती है ।[2]	एक अशरफी की आत्मकहानी एक दफा मैं पंडित जी के साथ कलकत्ते गया । घूमते घामते हम दोनों अजायबघर की तरफ जा निकले । अजायबघर की बात ही क्या ? वहाँ की सभी चीजें अजीब हैं । कहीं देश देशान्तर के अद्भुत २ जीव जन्तु हैं, कहीं पर रंग बिरंगी चिड़िया है, कहीं नाना प्रकार की मछलियां हैं, कहीं शेर कटघरे में बन्द इस बात को बतलाते हैं कि बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, और कहीं अजगरों को देखकर हिन्दुस्तान की अजगर-वृत्ति का स्मरण होता है ।

---

१. 'पूर्णसिंह', मजदुरी और प्रेम, 'सरस्वती', १९११ ई०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कक्षा भवन में रक्षित सरस्वती' की

(ग) कविता मनुष्यता की संरक्षिणी है कविता सृष्टि के किसी पदार्थ वा व्यापार के उन अंशों को छाट कर प्रत्यक्ष करती है जिनकी उत्तमता वा बुराई मनुष्यमात्र की कल्पना में इतनी प्रत्यक्ष हो जाती है कि बुद्धि को अपनी विवेचन क्रिया से छुट्टी मिल जाती है और हमारे मनोवेगों के प्रवाह के लिए स्थान मिल जाता है। तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उभाड़ने की एक युक्ति है।[1]

कविता से भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है मानो वे पदार्थ या व्यापार विशेष नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। वे मूर्तिमान् दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता या अनुत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की जरूरत ही नहीं। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों के प्रवाह जोर से बहने लगते हैं तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है।

द्विवेदी-युग की गद्य भाषा में मुख्यतः चार रीतियाँ दिखाई देती है :- संस्कृत-पदावली, उर्दूए-मुअल्ला, ठेठ हिन्दी और हिन्दुस्तानी। गोविन्द नारायण मिश्र, श्यामसुन्दरदास चंडीप्रसाद हृदयेश आदि ने संस्कृत-गर्भित हिन्दी का प्रयोग किया है और अन्य भाषाओं के शब्दों को दूध की मक्खी की भाति निकाल फेंका है। वस्तुत हिन्दी का कोई लेखक उर्दूए-मुअल्ला का एकान्त लेखक नहीं हुआ। यदि वह ऐसा करता तो हिन्दी का लेखक ही न रह जाता। बालमुकुन्द गुप्त, पद्मसिंह शर्मा, प्रेमचन्द आदि ने यत्र तत्र अरबी-फारसी- प्रधान भाषा का प्रयोग किया है, यथा 'सेवासदन' में म्यूनिसिपल बोर्ड की बैठक के अवसर पर। ठेठ हिन्दी का वास्तविक दर्शन हरिऔध जी के 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' में मिलता है। प्रेम चन्द, जी. पी० श्रीवास्तव आदि ने भी अपने देहाती पात्रों के मुख से ठेठ हिन्दी बुलवाई है। हिन्दुस्तानी [वर्तमान रेडिओ की हिन्दुस्तानी कही जाने वाली उर्दूए-मुअल्ला नहीं] का सुन्दर रूप देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द तथा कृष्णानन्द गुप्त आदि की भाषा में भी हिन्दी उर्दू के समिश्रण से हिन्दुस्तानी का प्रयोग हुआ है। संस्कृत की परुषा, उपनागरिका और कोमला वृत्तियों की दृष्टि से भी हम द्विवेदी-युग के गद्य की समीक्षा कर सकते हैं। गोविन्द नारायण मिश्र श्यामसुन्दरदास आदि की भाषा में कर्णकटु शब्दों के बहुत प्रयोग के कारण परुषा, रायकृष्ण दास, वियोगी हरि आदि के गद्यकाव्यों में कोमलकान्त पदावली का समावेश होने के कारण कोमला और रामचन्द्र शुक्ल,

१ १९०३ ई० की सरस्वती की उपर्युक्त प्रतियों में रामचन्द्र शुक्ल लिखित कविता

सत्यदेव आदि की रचनाओं में उपर्युक्त दोनों वृत्तियों का समन्वय इन के कारण अपनाई गई वृत्ति का प्रयोग हुआ है।

द्विवेदी-युग की भाषा-शैली के निम्नांकित सात वर्ग किए जा सकते हैं:— वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक, वक्तृतात्मक, संलापात्मक, विवेचनात्मक और भावात्मक। राम नारायण मिश्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सत्यदेव आदि के भौगोलिक लेखों, काशी-प्रसाद जायसवाल, रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि के द्वारा लिखित जीवनचरित्रों प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा आदि की अधिकांश कहानियों, यशोदा नन्दन अखौरी, वेंकटेश नारायण तिवारी, रामावतार पाण्डेय आदि के कथात्मक निबन्धों और मिश्रबन्धु आदि की परिचयात्मक आलोचनाओं की भाषा-शैली वर्णनात्मक है। इस शैली की विशेषता यह है कि लेखकों ने शब्द-चयन में किसी एक ही भाषा के शब्द-ग्रहण और अन्य भाषाओं के शब्दों के बहिष्कार का आग्रह नहीं किया है। आवश्यकतानुसार उन्होंने किसी भी भाषा के शब्द को निस्संकोच भाव से अपनाया है। भावव्यंजना अत्यन्त सरल और सुबोध हुई है। किसी भी प्रकार की क्लिष्टता या जटिलता अर्थ ग्रहण में बाधक नहीं है।

व्यंग्यात्मक शैली द्विवेदी-युग की भाषा की प्रमुख विशेषता है। द्विवेदी-युग के सम्पादकों और आलोचकों—बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्द नारायण मिश्र, लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि—के अतिरिक्त धर्म प्रचारकों ने भी इस शैली का अतिशय अवलम्बन किया। द्विवेदी-सम्बन्धित अनेक वाद-विवादों की चर्चा प्रस्तुत ग्रन्थ के 'साहित्यिक संस्मरण' अध्याय में हो चुकी है। उन वाद-विवादों और शास्त्रार्थ-पद्धति पर की गई आलोचनाओं में व्यंग्यात्मक शैली का पूरा विकास हुआ है। इस शैली की विशेषता यह है कि लेखकों ने किसी बात को सीधे सादे स्पष्ट शब्दों में न कहकर उसे घुमा फिराकर लक्षणा और व्यंजना के द्वारा व्यक्त किया है। यह शैली कहीं तो आक्षेप-प्रक्षेप में पूर्ण है, यथा उपर्युक्त विवादों में और कहीं काव्योपयुक्त ध्वनि के रूप में प्रयुक्त हुई है यथा गद्य काव्यों, नाटकों आदि में। भावना की गहनता और कोमलता के अनुसार ही विवादों में अन्य भाषाओं के भी चुभते हुए शब्दों का लट्ठमार प्रयोग किया गया है किन्तु दूसरे प्रकार की रचनाओं में संस्कृत की भावपूर्ण और कदावली का ही प्राय व्यवहार हुआ है

है इस शैली के द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि लेखक गद्यकाव्यकार हृदयेश हैं उनका प्रत्येक कृति इस शैली में विशिष्ट है। जयशंकरप्रसाद की कहानियों, रायकृष्णदास के गद्य-काव्यों, पूर्णसिंह के भावात्मक निबन्धों आदि में भी स्थान स्थान पर इस शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली के लेखकों ने संस्कृत की कोमलकान्त पदावली के प्रति विशेष आग्रह किया है।

धार्मिक, राजनैतिक आदि आन्दोलनों, उनके वक्ताओं और उपदेशकों ने वक्तृतात्मक शैली को विशेष प्रोत्साहन दिया। हिन्दी के प्रायः सभी पाठकों को सब कुछ सिखाने की आवश्यकता थी। परिस्थितियों ने द्विवेदी-युग के साहित्यकार को स्वभावतः उपदेशक और वक्ता बना दिया। फलस्वरूप लेखकों ने वक्तृतात्मक शैली का प्रयोग किया। इस शैली की विशेषता यह है कि लेखक सभा-मंच पर खड़े होकर भाषण करने वाले वक्ता की भांति धारावाहिक और ओजपूर्ण भाषा में अपना वक्तव्य देता हुआ चला जाता है। पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करने के लिए वह बीच बीच में संबोधन-शब्दों के प्रयोग, वाक्यों और काव्यांशों की पुनरावृत्ति, प्रश्नों की योजना, विरोध और विरोधाभास, चमत्कारपूर्ण विशेषणों आदि की सहायता भी लेता है। द्विवेदी-युग के साहित्यकारों में श्यामसुन्दरदास और चतुरसेन शास्त्री इस शैली के श्रेष्ठ लेखक हैं। पद्मसिंह शर्मा पूर्णसिंह, सत्यदेव आदि की भाषा में भी इसका यथास्थान समावेश हुआ है। इस शैली की रचनाओं की भाषा-गति लेखकों के इच्छानुसार विभिन्न प्रकार की है। उदाहरणार्थ, श्यामसुन्दरदास की भाषा शुद्ध संस्कृत-प्रधान और चतुरसेन शास्त्री की संस्कृत-पदावली यत्र-तत्र उर्दू शब्दों से गुम्फित है।

संलापात्मक शैली का लेखक पाठक से एक घनिष्ठ सम्बन्ध सा स्थापित कर लेता है। वह अपने वक्तव्य को इस घरेलू ढंग से उपस्थित करता है कि मानो पाठक से समालाप कर रहा हो। वक्तृतात्मक और संलापात्मक शैलियों का मुख्य अन्तर यह है कि पहली में ओज की प्रधानता रहती है और दूसरी में माधुर्य की। द्विवेदी-युग में संलापात्मक शैली का सिद्ध लेखक कोई नहीं हुआ। नाटकों या संलाप रचनाओं[1] की भाषा शैली को संलापात्मक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वहाँ लेखक की प्रवृत्ति और व्यक्तित्व की कोई व्यंजना नहीं होती। वह तो लेखक-सन्निवेशित पात्रों के कथोपकथन की अनिवार्य प्रणाली है। कहानियों और उपन्यासों के पात्रों के कथोपकथन में लेखकों की संलापात्मक प्रवृत्ति अवश्य दिखाई देती है। लाला पार्वतीनन्दन के 'तुम हमारे कौन हो',[2] श्रीमती बंग महिला के 'चन्द्रदेव से

---

१ राय कृष्णदास का 'संलाप' आदि।

२ सरस्वती १९०४ ई० पृष्ठ ११८

मेरी बातें'[1] आदि निबन्धों में भी सलापात्मक शैली का सुन्दर रूप व्यक्त हुआ है इस शैली के लेखों में हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी का स्वच्छन्द प्रयोग हुआ है। राय कृष्णदास वियोगी हरि आदि के अनेक गद्यगीत भी इस शैली से विशिष्ट हैं।

ठोस ज्ञान की अभिव्यंजन की दृष्टि से विवेचनात्मक शैली का साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इस शैली का लेखक अपने निश्चित विचारों को निश्चित शब्दावली के द्वारा सारगर्भित ढंग से व्यक्त करता है। अन्य शैलियों से इस शैली की मुख्य विशिष्टता यह है कि इसमें विशेष विवेचन की सूक्ष्मता और विचारों की गहराई अपेक्षाकृत अधिक होती है। अन्य शैलियों में संवेदनात्मकता का भी बहुत कुछ पुट रहता है किन्तु विवेचनात्मक शैली हृदय संवादी न होकर मस्तिष्क प्रधान ही है। श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि के चिन्तनात्मक लेखों में इस शैली का अच्छा विकास हुआ है। रामचन्द्र शुक्ल के चिन्तनात्मक निबन्ध उन्हें निर्विवाद रूप से शैली का महत्तम द्विवेदी-युगीन लेखक सिद्ध करते हैं। द्विवेदी-युग के विवेचनात्मक शैली के लेखकों की भाषा प्रायः संस्कृत-प्रधान ही है। अपनी विचार-व्यंजना को असमर्थ समझकर पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने कहीं कहीं कोष्टक और कहीं कहीं वाक्यक्रम में ही अँग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।[2]

भावात्मक शैली की विशेषता काव्यमयी भावव्यंजना है। इस शैली के लेखकों ने भावों की कोमलता के कारण तर्कसंगत शब्दावली के स्थान पर हृदयहारी कोमल कान्त पदावली के सन्निवेश पर ही विशेष ध्यान दिया है। इसके दो प्रधान रूप परिलक्षित होते हैं। पहला रूप 'कादम्बरी' आदि संस्कृत गद्यकाव्यों से प्रभावित चंडीप्रसाद हृदयेश, गोविन्द नारायण मिश्र आदि की आलंकारिक शैली है जिसमें उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों की योजना द्वारा चमत्कार-प्रदर्शन का प्रयास किया गया है। इस का उत्कृष्टतम रूप हृदयेश जी की रचनाओं में ही है। कुछ लेखकों ने कहीं कहीं बरबस और अतिशय अलंकार-योजना के द्वारा भाषा और भाव के सौन्दर्य का नाश कर दिया है, यथा जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'अनुप्रास का अन्वेषण'[3] लेख में। इस शैली का दूसरा रूप पूर्णसिंह, रायकृष्णदास, वियोगीहरि, चतुरसेन शास्त्री आदि की निरलंकार या यत्र तत्र अनायास ही अलंकृत, प्रसाद, माधुर्यमयी मार्मिक भाव व्यंजना में मिलता है। 'मजदूरी और प्रेम', 'साधना', 'अन्तर्नाद', 'अन्तस्तल' आदि रचनाएँ इस शैली की दृष्टि से विशेष उदाहरणीय हैं।

---

१. 'सरस्वती' १९०४ ई०, पृष्ठ ४४० ।
२. उदाहरणार्थ 'विश्व-साहित्य', और 'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका।
३ छटे हिन्दी का भाग २ पृ० १६

आलोचना

भारतेन्दु-युग ने काव्य, नाटककार, कथाकार, निबन्धकार आदि के पद में जीवन का सर्वतोमुखी आलोचना की और कारयित्रीप्रतिभा ही उन समीक्षाओं का कारण रही। किन्तु उस युग का कोई भी साहित्यकार भावयित्रीप्रतिभा के आधार पर साहित्य का गणमान्य समालोचक नहीं हुआ। समीक्षा-सिद्धान्त के क्षेत्र में भारतेन्दु ने 'नाटक' नाम की पुस्तिका तो लिखी भी परन्तु रचनाओं की आलोचना में कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया। १८९७ ई० की नागरी प्रचारिणी पत्रिका [पृष्ट १५ से ४७] में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना' निबन्ध प्रकाशित हुआ। उसमें समालोचना के गुणों—मूल ग्रन्थ का ज्ञान, सत्यप्रीति, शान्त स्वभाव और सहृदयता—का परिचयात्मक शैली में वर्णन किया गया, आलोचना के तत्वों का ठोस और सूक्ष्म विवेचन नहीं। उसी पत्रिका [पृष्ठ ८८ से ११६] में जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'समालोचनादर्श' लिखा। वह लेखक के स्वतंत्र चिन्तन का फल न होकर अँग्रेजी साहित्यकार पोप के 'एसे ऑन क्रिटिसिज्म' का अनुवाद था। उसी पत्रिका के अन्तिम ५३ पृष्ठों में अम्बिकादत्त व्यास का 'गद्यकाव्य-मीमांसा' लेख छपा। उस लेख में आलोचक ने आधुनिक गद्यकाव्य की मौलिक समीक्षा न करके संस्कृत आचार्यों, विशेष कर साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ, के अनुसार संस्कृत की कथा और आख्यायिका का सांगोपांग वर्णन किया है। १९०१ ई० की 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने 'नायिकाभेद' [पृष्ठ १९५] और 'कविकर्त्तव्य' [पृष्ठ २३२] लेख लिखे। इन लेखों में उन्होंने कवियों को युग-परिवर्तन करने की चेतावनी दी। नायिकाभेद-विषयक पुस्तकों के लेखन और प्रचार को रोकने के लिए उन्होंने आचार्य के साहित्यकार स्वर में कहा—

"इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुँचेगी, उल्टा लाभ होगा। इनके न होने ही में समाज का कल्याण है। इनके न होने ही में नवयवस्क युवाजनों का कल्याण है। इनके न होने ही में इनके बनाने और बेचनेवालों का कल्याण है।[१]"

उन्होंने संहारात्मक सिद्धान्तों का केवल उपदेश ही नहीं दिया, कवियों के समक्ष निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम भी उपस्थित किया—

"आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्त्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रख कर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि पढ़े लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ साथ नई कविता पढ़ने का

उसी वर्ष की सरस्वती [पृष्ठ ३२ म सठ न हैयालाल पोद्दार का पि और व्य लेख छपा जिसमे उन्होने संस्कृत आचार्यों के मतानुसार कवि और काव्य का स्वरूप का चित्र खीचा। जैसा ऊपर कहा जा चुका है १९०३ ई० से द्विवेदी-युग आरम्भ हुआ उसमें सभी विषयों पर सैद्धान्तिक आलोचनाएँ लिखी गई। भारतेन्दु-युग ने अपने को छन्द, अलंकार आदि के बन्धन से मुक्त करने का प्रयास किया था परन्तु वह अधूरा ही रहा। उन रीतिकालीन बन्धनों का प्रभाव द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध मे भी बना रहा। परिवर्तनशील परिस्थितियाँ और द्विवेदी जी की आदर्श भावनाओं के परिणामस्वरूप द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में उनका प्रभाव नष्ट होगया।

संस्कृत-आचार्यों के अनुकरण पर पिंगल, रस, अलंकार और नायक-नायिका भेद पर सामयिक पत्रों मे प्रकाशित लेखों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थो की रचना हुई। हरदेवप्रसाद ने 'पिंगल वा छन्दपयोनिधि भाषा' (सं० १९८३), कन्हैयालाल मिश्र ने 'पिंगलसार' (द्वितीय सं० १९११ ई०), जगन्नाथप्रसाद भानु ने 'काव्यप्रभाकर' (सं० १९६६), और 'छन्दः सारावली' (१९१७ ई०), बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'रसमालंकार' (१९६७', बाबूराम शर्मा ने 'काव्य प्रदीपिका' (सं० १९६७), सालीलाल गुप्त ने 'भाषा पिंगल' (स० १९६७) रामनरेश त्रिपाठी ने 'पद्य प्रबोध' (१९१३ ई०) और 'हिन्दी पद्य रचना' (१९७४ वि०) विनायकराव ने 'काव्य-कुसुमाकर',[1] पुत्तनलाल विद्यार्थी ने 'सरल पिंगल' और वियोगी हरि ने 'वृत्तचन्द्रिका' (१९७९ वि०) नामक पुस्तकें लिखी। इन पुस्तकों में छन्दःशास्त्र के नियमों का संक्षिप्त निरूपण किया गया। रस और अलंकार के क्षेत्र में 'रस वाटिका',[2] 'समास-विवरण',[3] 'काव्यप्रवेश',[4] 'अलंकार-प्रबोध',[5] 'अलंकार प्रश्नोत्तरी',[6] 'हिन्दी-काव्यालंकार',[7] 'प्रथमालंकार-निरूपण',[8] 'नवरस',[9] 'अनूदित साहित्य दर्पण',[10] 'साहित्य-

---

१. प्रथम भाग, सं० १९७३ और द्वि० भाग १९१९ ई०।
२. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, सं० १९६०।
३. अध्यापक रामरत्न।
४. अध्यापक रामरत्न, सं० १९७१।
५. अध्यापक रामरत्न सं० १९७४।
६. जगन्नाथ प्रसाद साहित्याचार्य, १९१८ ई०।
७. जगन्नाथ प्रसाद साहित्याचार्य, १९१८ ई०।
८. चन्द्रशेखर शास्त्री, १९७६ वि०।
९ स० १९७०
१० ए शास्त्री स० १९७८

परिचय, और भाषा-भूषण,[२] नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। द्विवदी जी के कठोर अनुशासन के कारण नायक-नायिका भेद और नख शिख-वर्णन पर अधिक ग्रन्थ-रचना नहीं हुई। आरम्भ में विद्याधर त्रिपाठी ने 'नवोढादर्श' (१९०४ ई०) और माधवदास सोनी ने 'नखशिख' (सं० १९६२) लिखे। आगे चलकर केवल जगन्नाथप्रसाद भानु की 'रस-रत्नाकर' १९०९ ई० और 'नायिका भेद-शकावली' (१९२५ ई०) को छोड़कर इस विषय पर कोई अन्य उल्लेखनीय रचना नहीं हुई।

द्विवेदी-युग में लिखित अधिकांश साहित्य शास्त्र-समीक्षाएँ ठोस और गम्भीर नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि कुछ ही लेखकों ने साहित्य सिद्धान्तों का सूक्ष्म और विशद विवेचन किया। सुधाकर द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' लेख में संस्कृत की सहायता से साहित्य की व्याख्या की और साहित्य को सांगोपांग काव्य बतलाया। साहित्य के विविध पक्षों का विस्तृत विवेचन न करके उन्होंने उसके रूप का एक स्थूल लक्षण मात्र बताया—"काव्य के नाटक, अलंकार···जितने अंग हैं सबों के सहित होने से साहित्य कहा जाता है।"[३] अपने उसी लेख में उन्होंने राजशेखर, मम्मट आदि संस्कृत-आचार्यों का उद्धरण देते हुए काव्य की थोथी परिभाषा की—"जो देश की भाषा हो उसी में कुछ विशेष अर्थ दिखलाने को जिससे उस देश के सुनने वालों को एक रस मिल जाने में खुशी हो, काव्य कहते हैं।" काव्य को किसी देश-भाषा और उसी देश के सुनने वालों तक सीमित कर देने में अव्याप्ति है। 'रस', 'खुशी' आदि शब्दों का ढीले ढाले अर्थ में प्रयोग करने से वाक्य की गम्भीरता नष्ट हो गई है और वह अभीष्ट अर्थव्यंजना करने में असमर्थ हो गया है। गोविन्दनारायण मिश्र ने द्वितीय साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अपने सभापति के भाषण में लच्छेदार और आलंकारिक भाषा में साहित्य का काव्यमय चित्र खींचा।[४] उन्होंने उसकी कोई चिन्तनाजनक परिभाषा नहीं की। गोपालराम

---

१. रामशंकर त्रिपाठी सं० १९८१।

२ ब्रजरत्नदास।

३. प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, पृ० ३४।

४. पूरा उद्धरण निम्नांकित है:—

कोई कहते हैं कि साहित्य स्वर्ग की सुधा है, यह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं, रचयिता की भी निज की वस्तु नहीं, यह देवताओं की अमृतमयी रसीली वाणी है। कोई कहते हैं स्त्री पुरुषों की विचार-शक्ति को पुष्ट कर ज्ञान और विवेक बुद्धि का गठ जोड़ा बाध, सार्वजनिक कर्त्तव्य बुद्धि और सब सद्गुणों सहित शील सम्पन्न बनाने के साथ ही मनुष्यों के मन को सर्वोत्कृष्ट अपूर्व अलंकारों से अलंकृत कर अपूर्व रसास्वादन का आनन्द उपभोग कराने के अद्वितीय साधन का नाम ही साहित्य है मैं भी इन विद्वानों के स्वर में अपना

गहमरी ने अपने 'नाटक और उपन्यास' लेख में चुलबुली भाषा में नाटक में उपन्यास की भिन्नता को लेकर कुछ स्थूल बातें बतलाई उपन्यास के तत्वों की सूक्ष्म विवेचना नहीं की बदरी नारायण चौधरी ने रूपक का लक्षण बतलाया—रूप के आरोप को रूपक कहते हैं जो सामान्यतः चार प्रकार से अनुकरण किया जाता है।"[1] जगन्नाथदास विशारद ने नाटक की परिभाषा करते हुए लिखा—'नाटक उसको कहते हैं जिसमें नाट्य हो, 'अवस्थानुकृति नाट्यम्' अवस्था का अनुकरण करने का नाम नाट्य है।"[2] श्यामसुन्दरदास ने भी यही त्रुटि की है—"किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं।"[3] "इन समीक्षकों ने धनञ्जय और धनिक के कथन का अक्षरशः अनुवाद मात्र कर दिया है। उन्हें चाहिए था कि 'अवस्था' और 'अनुकृति' शब्दों की विशद् व्याख्या करके उनके अर्थ को स्पष्ट करते। दश रूपक में प्रयुक्त 'अवस्था' का अर्थ क्षुधावस्था, तुष्टावस्था बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, सम्पन्नावस्था, विपन्नावस्था आदि न होकर धीर, उदात्त आदि नायकों के स्थायी भाव की अवस्था है। इसका कारण संस्कृत नाटककार की दृष्टि की विशिष्टता है। उसका मानव जीवन के धर्म आदि पदार्थों में से किसी एक को पाने का प्रयास करता है और संघर्षों के पश्चात् उसे प्रतिनायक के विरोध पर विजय तथा अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति होती है। नाट्यकला के प्रभाव से संस्कृत-नाटक का पाठक या

स्वर मिलाकर यही कहता हूँ कि सरद् पूनो के समुदित पूरनचन्द की छिटकी जुन्हाई सकल मन भाई के भी मुँह मसि मल, पूजनीय अलौकिक पद नख चन्द्रिका की चमक के आगे तेजहीन मलीन औ कलंकित कर दरसाती, लजाती, सरस सुधा धवली, अलौकिक सुप्रभा फैलाती, अशेष मोह जड़ता प्रगाढ तमतोम सटकाती, मुकाती निज भक्त जन मन वांछित वराभय मुक्ति मुक्ति सुचारु चारों हाथों से मुक्ति लुटाती, सकल कलापालाप कलकलित सुललित सुरीली भीड गमक झनकार सुतार तार सुर ग्राम अभिराम लसित वीन प्रवीन पुस्तकाकलित मखमल से समधिक सुकोमल अतिसुन्दर सुविमल लाल प्रवाल से लाल कर पल्लव वल्लव सुहाती, विविध विद्या विज्ञान सुभ सौरभ सरसाते विकसे फूले सुमनप्रकाश हास वास बसे अनायास सुगंधित सित वसन लसन सोहा सुप्रभा विकसाती, मानसविहारी मुक्ताहारी नीर क्षीर विचार सुचतुर कवि कोविद राज राजहंस हिय सिंहासन निवासिनी मन्दहासिनी त्रिलोक प्रकासिनी सरस्वती माता के अति दुलारे प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम अनोखी अतुल बल वाली परम प्रभावशाली सुजन मनमोहनी नव रस भरी सरस सुखद विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।

द्वितीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग १, पृ० २६, ३०।

१. द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग १ पृष्ठ ४५।
२. द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, पृष्ठ २३८।
३ रूपक रहस्य पृ० ४७

प्रेम नारायण टंडन ८७, बदरीनाथ गीता-वाचस्पति ५० बदरीनाथ भट्ट २१२, २१६, २२१, २२२, २३४, २३६, २४१, २६६, २७८, ३०६, ३१३, ३१४, ३४८, ३५४, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन २, १४, १७, २१, २५, २६५, ३४०, बनारसी दास चतुर्वेदी ५३, ४५, बल्देव प्रसाद मिश्र १७, १४६, ३०६ बल्देव प्रसाद निगम ३३८, बाणभट्ट १२७, २८४, बाबूराव विष्णु पराडकर १६८, १७३, २१४, २३३, ३५१, ३६५, बालकृष्ण भट्ट १७, १६, २१, २२, २५, ३२, २७८, ३०८, ३१८, बालकृष्ण शर्मा नवीन ४२, २६७, २८१, बालकृष्ण शर्मा २७८, बालमुकुन्द गुप्त २, ४, ६, १० ११ १६, ४६, ६६, ६७, २११, २६५, ३२८, ३३३, ३३४, ३४७, ३६३, बिल्हण ८३, बिहारी लाल ३५०, बी० एन० शर्मा ४६, ६८, ६६, बेनी प्रसाद शुक्ल १६८, बेचन शर्मा उग्र ३०६, ३१४, ३१८, ३२२, बेटब १८०, बेवडक १८०, ब्रजरत्न दास ३३६, ब्रजवासी दास ६२, भगवतशरण उपाध्याय १६२, भगवती प्रसाद वाजपेयी २८२, भगवान दास केला १६२, भगवान दास हालना ६७, पं० भगवान दीन ६७, ६६, २५८, २७८, २८०, २८७, ३२१, ३२३, ३४३, ३५०, ३६३, भट्ट नायक १२६, भट्ट नारायण ८१, २०७, भट्ट लोल्लट १२६, भरत १२०, भर्तृ हरि ७८, १४०, भवभूति ८३, ६२, १४६, ३१२, भवानी दयाल सन्यासी २७२, २७७, भवानी प्रसाद ४४, भामह ६३, १२०, भारतेन्दु २, ५, ७, ८, ६, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १६, २२, २३, २५, २६, ३०, ३१, ३२, ३३, १०८, ११ २, १५१, १६०, १७३, १८५, १८७, १६२, २६४, २६५, २७७, २११, ३४५, भारवि ८१, ६४, भीमसेन शर्मा ७, ३२, २७७, भुजंग भूषण भट्टाचार्य १६७, भूप नारायण दीक्षित ३६१, भोला दत्त पाडेय १६८, २६८, मदनमोहन मालवीय ३०, ७४, ७७, २७३, मदिरादेवी ३०६, मधुमंगल मिश्र २२३, २३६, २४०, २४१, २४४, २६३, ३२३ मनु २६२, मनोहर लाल श्रीवास्तव ३१५, मन्नन द्विवेदी २६६, ३५४, मम्मट ६४, ११७, १२५, मलिक मुहम्मद जायसी ३४५, मल्लिनाथ १२३, भरेन्दुलाल गर्ग २६८, महादेव प्रसाद ३०७, महादेवी वर्मा १६२, २६७, महिमभट्ट १२५, महेश चन्द्र प्रसाद ३२४, महेश चन्द्र मौलवी ३६१ मागीलाल गुप्त ३३८, माखन लाल चतुर्वेदी २६७, २७८, २६३, ३०१, ३०२, ३०५, ३०६ ३०८, ३०६, माघ ८२, १३२, माधवप्रसाद मिश्र ६७, २७८, माधव दास ११, ३३६, मिश्रबन्धु २६, १३३, १४२, २१२, २१३, २१४, २१७, २१८, २२० २२३, २२६, २२७, २२६, २३४, २३५, २३७, २४२, २४४, २५०, २६६, ३०८, ३३०, ३३४, ३४५, ३४६, ३५१, ३६३, मुकुटधर पाडेय २६६, २८८ मुकुटधर शर्मा २६८ मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव २७८ मुग्धानलाचार्य १४६ मूलचन्द २७३, मैक्समूलर ३ मैथिलीशरण गुप्त ४५ ४६ ५२, ७६, ६१ ६२, १०४,

१२८ १४२ १६०, १९८ १९१ ११२ २ ८, २४५ २६१ २६७, २६८ २७८ २८०
२८१, २८६, २८७, २८८, २८९, २९२, २९३, २९४, २९५, २९७, २९८, ३००, ३०१.
३०२, ३०३, ३०५, ३०६, ३०८, ३१०, ३४८, ३६४, ३६५, यज्ञदत्त शुक्ल बी० ए० ८५,
यशोदा नन्दन अखौरी २६८, २७८, ३२३, ३३०, ३३१, ३३४, रघुवीर सिंह २०८, रतन
सिंह २६०, रविदत्त शुक्ल २९, रविवर्मा ५८, १७७, २९४, रवीन्द्र नाथ ४८. १४२, ३१२,
रहीम ३४५, राजशेखर १०३, ३६१, राधाकृष्ण दास २, १०, ११, १४, १७, १९, २९,
१५१, १६४, १८०, २७७, ३४५. राधाचरण गोस्वामी १०. ११, १४, १५, १७, १९, २९
राधिकारमण सिंह २८२, ३२७, ३२४, राधेश्याम कथावाचक, ३१२, रामकुमार खेमका
१६८, रामकृष्ण वर्मा १८, ३०, ३१७, रामचन्द्र त्रिपाठी ११. रामचन्द्र वर्मा १९, ३२०,
रामचन्द्र शुक्ल १३, ६७, ११२, ११८, १२४, १२७, १३७, १४२, १६८, २१४, २२०,
२२३, २२६, २२८, २३३, २३४, २३५, २३६, २३८, २३९, २४१, २४३, २५३, २६६,
२६८, २७७, २७८, २८१, ३०४, ३०७, ३१०, ३२३, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३३,
३३४, ३३६, ३३९, ३४१, ३४२, ३४४, ३४५, ३५६, ३५८, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५,
रामचरित उपाध्याय २१६, २२०, २६९, २८१, २८६, ३००, ३१९, रामदत्त २५५, राम-
दास गौड़ ३०९, रामदास जी वैश्य ३२०, रामदीन सिंह ३०, रामधारी सिंह दिनकर २६७,
रामनरेश त्रिपाठी २६८, २७८, २८०, २८८, २९५, ३००, ३०५ ३३८, ३५४, रामनाथ
सुमन ३०७, रामनारायण मिश्र २९, ७२, ३०८, ३३८, रामप्रसाद दीक्षित ७६, राममनोहर
दास ३१२, राममोहन राय ८, रामरख सिंह सहगल ४४, रामरत्न 'अध्यापक' ३३८, राम-
लाल ३२१, रामविलास शर्मा डा० १०, १४, रामशंकर त्रिपाठी ३३९, रामसिंह ३०१, रामानन्द
४९. रामावतार पांडेय ३३४ रामेश्वर प्रसाद वर्मा १७७, राहुल सांकृत्यायन १९२, रायकृष्ण
दास ५०, ५२, ५५, ६३. १०५, १२८, १६७, २६६, २६९, २८१, २८२, २८३, २८४,
२८८, ३०१, ३३४, ३३५, ३३६, रुद्रदत्तजी ६८. ६३. रूपनारायण पाण्डेय १६७, २६८
२७८, ३००, ३०१. ३०२ ३०४, ३०६. ३१२, लक्ष्मण नारायण गर्दे ३६५, लक्ष्मण सिंह
३१, ८१. १५१, २६४, लक्ष्मीधर वाजपेयी ४६, ५२, ७६, १६८, १७०, १७६, २२९,
२३२, २३७. २४२, २४३, २६२, २६८, ३२९, ३३०, ३३४ ३६१, ३६५, लक्ष्मीनारायण
मिश्र १९२, लक्ष्मी प्रसाद १४, लक्ष्मी शंकर मिश्र ३०, लाल कवि ३५४, लोकमान्य तिलक
३. लोचन प्रसाद पाण्डेय १६८, २६८. ३०८, ३१४, लज्जा राम मेहता ३१७, ३२१, ललित
कुमार बन्द्योपाध्याय ३५७, लली प्रसाद पांडेय २६८, लल्लू लाल १८, ३१, २६४, वंग-
महिला (देखिए श्रीमती···) बासन १२०, शंकर २७५, शारदातनय ११७ शालग्राम
शास्त्री २७ ४२ शान्तिप्रिय द्विवेदी २ ८५ शिवकुमार मिश्र २० शिवपूजन सहाय

७१, ८५, २७८, शिवसहाय चतुर्वेदी ३१६, शिव सिंह सेंगर २१ श्यामसुन्दर दास २६, ४३, ४६, ६४, ६६ ६६, ७० ७१, ७२, ७३, १५१, १५६, १६१, १६२, १८० २०८ २५३ २६६, २६६, २७७, ३२६, ३३३ ३३५, ३३६, ३३६, ३४०, ३४२, ३४४, ३४७, ३४८, ३५१, ३६४, श्रद्धाराम फुल्लौरी ७, श्रीकण्ठ पाठक एम० ए० १३१, १६८, २१० श्रीकृष्ण लाल ३२०, श्रीकृष्ण हसरत ३१२, श्रीधर पाठक २ ४, ११, १२, १३, १४, ६६ १०८, ११५, १२८, २६५, २८१, २८७, ३०२, श्रीनाथ सिंह ७६, २६६, श्रीनिवास दास १०, ११, १७, २१, ३२, ३१७, श्रीमती बंगमहिला १६० २१६, २१७, २२०, २२७, २२८ २६८, ३२३, ३३५, श्रीशंकुक १२६, श्रीहर्ष ८३, १५५, सत्यदेव १६८, १६०, २१३, २१४ २१६, २१७, २१८, २१६, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२६, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५ २३६, २३८ २३६ २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २६३, २६८, ३३०, ३३४, ३३५, ३६५, सत्यनारायण कविरत्न ५८, १४६, २६८, ३१२, सत्यशरण रतूड़ी १६६, १६० २८७, सदलमिश्र १८, ३१, सदासुखलाल ३०, सनेही २६६, सन्तनिहाल सिंह १६८, २३८, सन्तराम बी० ए० २७८, सबल सिंह चौहान २८७ सम्पूर्णानन्द २७८, ३०१, सॉड १८० 'सितारे हिन्द' १०, सियारामशरण गुप्त २८०, २८६, २६७, सी० वाई० चिन्तामणि ७७, सुदर्शन ३०६ सुधाकर द्विवेदी २६, सुन्दरलाल १६८, २७३, २७४, सुभद्राकुमारी चौहान १, २६७, २८१, २६३, ३०१, ३०६, सुमित्रानन्दन पन्त ११५, १६२, २६७, २८०, २८१, २८८, ३०२, ३०५, ३०६, ३०८ सुबन्धु १२२, १३६, सूदन ३४५, सूर १६२, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला २६७, २७८, २८१, ३०८, सूर्यनारायण दीक्षित ४३, ५४ ५१, २१० २१७, २२५, २३३, २३५, २३६, २३७, २४०, २४३, २५०, २६३, २६८, ३२३, सेठ कन्हैया लाल पोद्दार ३३८, सेठ गोविन्द दास १६२, सेवक श्याम ३०७, सैयद अमीर अली मीर ७७, स्वामीरामतीर्थ १७३, हरदेव प्रसाद ३३८, हरिऔध ६२, २८७, २८८, २६१ २६२, २६८, ३३३, हरिकृष्ण प्रेमी १६६, हरिप्रसाद द्विवेदी २८२, हरिभाऊ उपाध्याय ५२, ६०, हरिश्चन्द्र १६।

रचनाएँ और संस्थाएँ—

अंशुमती १६६, अँगरेज राज सुख साज सजे अति भारी १६, अँगरेजी फैशन में शराब की आदत ६, अँधेरी दुनिया ३२, अकबर के राजत्वकाल में हिन्दी १३२, ३५४, अकलमन्द १८, अग्रवाल २७४, अग्रवालोपकारक २५, अग्रसर २७५, अचलायतन ३१०, अजातशत्रु ३१०, ३१३, अजना ३०६ अंडमन द्वीप के निवासी १८८ अतीत-स्मृति ८४ ८६ १५० अत्याचार का परिणाम ३०८ अदालत ६ अदालत लिपि ३० अन्भत

आलाप ८४ ८६ १५१ अद्भुत इन्द्रजाल १५१ अधिवास २८६ २९३ अनाथ २९७, अनित्य जग ३०२, अनुप्रास का अन्वेषण ३३६, ३५०, अनुभूत योगमाला २७६, अनुमोदन का अन्त ५२, ५३, ७०, ७२, १५२, अन्तर्नाद २८२, अन्तस्तल २८२,३३६, अन्वेर नगरी २, १६ अन्योक्तिदशक २८७, अन्वेषण २९५, अपर प्राइमरी रीडर ८६, ८७, अबलाहित-कारक २७७, अभिनवभारती १३२, अभिनन्दनाक ५२, अभिमन्युवध ३०९, अभ्युदय २७३, २७४, अभ्युदय प्रेस ४४, अमर कोश ३५, अमरवल्लरी ३२४, अमर सिंह राठौर १७, अमला-वृत्तान्त-माला १९, अमृतलहरी ७९, ८६, ८७, १९२, २५२, अमेरिकन मिशन ६, अमेरिका की स्त्रिया २१४, २१८, २२१, २२३, २२९, २३३, २३९, २४३, २४४, २६३, अमेरिका के अखबार १६१, अमेरिका के खेतों पर मेरे कुछ दिन २२१, २२७, २२९, २३३, २४३,२४४, अमेरिका-भ्रमण २१६, २१९, २२२, २२३, २२४,२२५, २२६, २२७, २२८,२३०,२३२, २३४ २३६, २३८, २३९, २४०. २३१, २४१, अमेरिका में विद्यार्थी जीवन २१४, २१८, २२८, २३०, २३२, २३८, २३९, अयोध्याधिपस्य प्रशस्ति ५४, ६०, अरबी कविता और अरबीकविता का कालिदास ३६१, अर्जुन २७५, २९४, अर्थ का अनर्थ १३६, अलंकार प्रबोध ३३८,अलंकार-प्रश्नोत्तरी ३३८, अलबरूनी १६७, अलमोडा अखबार २७४, अवतार-मीमांसा ७, अवध के किसानों की बरबादी ८४, ८७, ८८, २९६, अवधवासी २७३, अश्रुधारा २८२, आँसू २६७, २८१, २८२, २९४, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, आकाशदीप ३२१, ३२५, ३२७, आख्यायिकासप्तक ८३, ८६, ८७, आचरण की सभ्यता ३२९,३३१, आचार्य २७४, आज ३०, १८७, २७३, २७५, २७७, आतिथ्य १७७, आत्मनिवेदन ८५, ८७, ८८, आत्मविद्या २७५, २७७, आत्मा १४९, १५३, आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण १४९, आत्माराम ३२६, ३२७, आत्माराम की टे टे ३४७, ३४८, आत्मोत्सर्ग २१६, २१९, २२५. २२७, २३१, २३३, २३४, आदर्श २७७, २८१, आदर्श दम्पति ३१७, आदर्श वर्ष २७८, आदर्श बहू ३१७, ३१९, आधुनिक कवि ११५, २८६, ३०२, ३०३, आधुनिक कविता १२०, १२१, १४२. आधुनिक हिन्दी कहानियाँ ३२४, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास ३२०, आध्यात्मिकी ८४, ८६, ८७, १५३, आनन्द २७३, २७४, आनन्दकादम्बिनी १५, २१, २२, २४, २५. २७, ३२, १४३, १५८, १७१, १८७, १८९, आप १५, आभीर समाचार २७६, आरोग्य जीवन २७४, आर्य २७६, २७७, आर्य-जगत २७५, आर्यदर्पण २४, २५, आर्यभाषापाठावली ४५, आर्यभूमि ११३, आर्यमहिला २७७, आर्यमित्र. ६८, ६९, ७६, आर्य शब्द की व्युत्पत्ति ६८, आर्यसमाज ६, आर्य-सिद्धान्त २५, आर्यावर्त्त २७५ आर्यों की जन्मभूमि १४८ १५५ आलोचनाजलि ८५ ८६ ८७, १२२ १२६ १३८ आल्हास्वड ३२० अ ११ आशा १६, ९५ आश्चर्यजनक घंटी

७५ कर्नेल्यान्नदर्गी १११ कपूरमञ्जरी १६ कवल २०६ कर्मयोगी २७२, २७४, कर्मवीर २७४, कलकत्ता विश्वविद्यालय २७२, कलकत्ता समाचार २७३, कलंक ३६०, कलवार केसरी २७६, कलवार मित्र २७४, कलवार क्षत्रिय मित्र २७६, कलासर्वज्ञ सम्पादक १३०, १७६, कलियुगसती ३०६, कलाकुशल २७७, कलिकाल-दर्पण १३, कलिकौतुक १०, १७, कलिप्रभाव नाटक १०, कलिराज की सभा ६, १५, १८, कलिराज की कथा ११, कलिविजय नाटक ३०८, कलाधन-मित्र २७६, कल्याणी ३२१, कल्याणीपरिणय ३१४ कवि २८२, कवि और कविता ६३, १२०, १४५, १४७, १५३, कवि और काव्य ३२८, कविकंठाभरण ६८, कविकर्तव्य १४४, १५३, १५५, २२०, २२१, २२२, २७६, ३३७, कवि की स्त्री ३२४, कवि कुल कंज दिवाकर २५, कविकुल कौमुदी सभा २६, कवि कौमुदी २७६, कविता ६३, १२०, १२१, १४५, १५३, कविता-कलाप ८६, ७६, ८७, ११४, २८५, २६२, २६४, ३०६, कविता के अच्छे नमूने १३८, कविता क्या है २१४, २२३, २२६, २२८, २३३, २३४, २३५, २३६, २३८, २३६, २४१, २४३, ३३०, ३३१, ३३३, ३४२, ३६३, कवितावर्द्धिनी-सभा २६, कवितावली २४८, कवित्व ३२६, कवि बनने के सापेक्ष साधन ६३, १२०, १२१, १४७, कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता १२०, १२६, १४२, १४५, १६१, कविवचन सुधा ६२, २३, २५, २६४, कविवर लछीराम १४६, कविसमाज २६, कविहृदयसुधाकर २३, कवीन्द्र वाटिका २७७, कस्यचित्कान्य-कुब्जस्य १६८, कहाँ जाते हो २८१, काग्रेस की जय ४, काग्रेस के कर्ता १४७, काककूजितम ६७, १८७, ११४, ११५, कादम्बरी १६, १५०, २८४, ३३६, कादम्बिनी २७, काननकुसुम ३०६, कानपुर गज़ट २७५, कानों में कँगना ३२४, ३२७, कान्फरन्स २७६, कान्यकुब्ज २७६, २७८, कान्यकुब्जअबला-विलाप ७६, १११, कान्यकुब्ज-प्रकाश २५, कान्यकुब्ज-मित्रम् ७८, कान्यकुब्जलीलामृतम् ६१, १११, कान्यकुब्ज हितकारी २७४, कामना ३१०, कामनातरु ३२७, कार्ल मार्क्स २६, कालिदास ५३, ८२, ८६, ८८, ६६, कालिदास और उनकी कविता ८४, ८८, १२०, १२२, १२३, १३६, १४०, १५३, ३६१, कालिदास और भवभूति ३५५, ३५६, कालिदास और शेक्सपियर ३५५, ३५६, ३६१, कालिदास का समय-निरूपण १५४, कालिदास का स्थिति-काल १५४, १५८, कालिदास की कविता में चित्र बनाने योग्य स्थल १२४, १४०, १५३, कालिदास की दिखाई हुई प्राचीन भारत की एक झलक १३६, कालिदास की निरंकुशता ५०, ८४, ८६, ८७, १३०, १३१, १३३, १३७, १३८, १५०, ३४७, कालिदास की निरंकुशता पर विद्वानों की सम्मतियाँ १२५ कालिदास की वैवाहिकी कविता १२४ १४०, कालिदास के मेघदूत का रहस्य १३२ १४ १४६ १५८ ३५५ कालिदास के ग्रन्थों की

२६१ कालिदास के समय का भारत १५३ ३५२ कालिन्दी ७७ काव्यकल्पद्रम ११८, काव्यकुसुमाकर ३३८, काव्यप्रकाश ९३, ९४, ११८, १२५, काव्यप्रदीपिका ३३८, काव्यप्रभाकर ३३८, काव्यप्रवेश ३३८, काव्यमंजूषा ७६, ८५, ८७, १०८, काव्य में उपेक्षिताएँ १४२, काव्य में प्राकृतिक दृश्य ३३०, ३४२, काव्यलता सभा २७०. काव्यादर्श ६४, काव्यालोक ११७, काव्यामृतवर्षिणी २५, काव्यालंकार ३३८, काव्योपवन २८७, २८८, काशी का साहित्य-वृक्ष १३०, १७६, काशी पत्रिका २४, १३५, २०३, काशी विश्वविद्यालय ५३, ५४, ६०, ७२, २७२, काश्मीरकुसुम २८, काश्मीरसुषमा १२८, किरण ३०३, किरातार्जुनीय ८१, ८६, ८७, ९४, १३२, १३३, १३६, १४६, १६३, १६६, १६७, १६६, २०२, २०६, किसान २८०, २६४, २६७, किसानोपकारक २७७. किस्सा तोता मैना १८, किस्सा साढे तीन यार १८, किस्सा हातिमताई १६, कीचक की नीचता २८०, कीर्तिकेतु १६, कुकुरमुत्ता २६७, कुछ आधुनिक आविष्कार १४८, कुछ प्राचीन भाषा कवियों का वर्णन ३४५, कुन्ती और कर्ण २८०, कुमारसम्भव ७८, ८०, ८६, ८७, ९६, १३६, १६३, १६७, १६८, १६६, २०२, २०८, २५१, २५२, कुमारसम्भवभाषा ८३, १३५, २०३, कुमारसम्भवसार ७८, ८५, ८७, ९४, १०६, २०८. कुमुदसुन्दरी १०५, ११४, कुम्भ में छोटी बहू १८८ कुलटा १६, कुसुम कुमारी १६, २०, ३२०, कूर्मि क्षत्रिय-हितैषी २७७, कृतज्ञता-ज्ञापन ४३ कृतज्ञता प्रकाश ११२, कृषक-क्रन्दन २६७, कृषिकारक २५, २७, कृषिसुधार २१४, २१७, २२६, २२७, २३२, २७७, कृष्णयशोदा १७७, कृष्णलीला नाटक ३०६, कृष्णार्जुनयुद्ध ३०६, ३१३, कृष्णसुदामा ३०६. केवलकोकिल १८३, १८४, कैलाश २४५ कोकिल ११५, २८६, २६०, कोयल १८१, २६१, कोविद-कीर्तन ८४, ८६, ८७, १२४, कौटिल्य कुठार ५२, ७१, ८४, ८६, १५४, २५६, कौमीतलवार ३१०, क्रन्दन १६, क्रिश्चियन वर्नाक्यूलर लिटरेचर सोसाइटी ६, क्रोध ३३०. क्रोधाष्टक २४५, क्षत्रियपत्रिका २४, २५, क्षत्रिय मित्र २७४. क्षत्रिय वीर २७६, क्षत्रिय समाचार २७४. क्षमा प्रार्थना ७४, क्षमा प्रार्थना का वितंडावाद ७४, क्षमायाचना २८२, २८५, क्षीरोद प्रसाद ३१२, खटकीरा युद्ध ३०७, खड़ीबोली का काव्य स्वतंत्रता ३६०, खड़ी बोली का पद्य १४, १७७, १७६, खड्गविलास प्रेस २७१, खालजड़ों ३१२, खूनी ३२६, ३२७, खेतों की बुरी दशा १४६, ख्रीष्ट चरितामृत पुस्तक १२, गंगालहरी २८५, गंगावतरण ३१८, गंगा लहरी ७८, ८५, ८७, ९६, १०७, १०८, ११०, गंगास्तवन ६३, ६६ गद्यकाव्य-मीमांसा २३७, गद्य-मीमांसा २१, गड़बड़झाला ३१४, गढ़कुंडार ३१८, गढ़वाली २७५, गरीब २७५, गरीब हिन्दुस्तान ३०६, ३१२, गर्दभकाव्य २८ १०५ १२८ गवाईवैश्यसंवाद २७६. गायकवाड़ की प्राच्यपुस्तक माला १२५, गीत और भजन १ गीत गोविन्द ७८ ८९ ९ १०६ १४७ १८१ गीत-संग्रह १२ गीता

की पुस्तक १२, गुप्त निबन्धावली २, गुरुत्वाकर्षण शक्ति ३७, गुलबदन उर्फ रज़िया बेगम ३२१, गुलेबकावली ११६, १२०, गृहलक्ष्मी २७४, २७६, २७७, गृहस्थ २७७, ३२१, गोपियों की भगवद्भक्ति १५०, गोपी-गीत २८७, गोरखपुर के कवि ३५४, गोरक्षा १६, गोवध निषेध १७, गोसंकट नाटक १०, १७, गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित ३४५, गौड़हितकारी २७४, ग्यारह वर्ष का समय २३८, ३२३, ग्रन्थकार-लक्षण ६७, १०६, १११, ११४, ग्रन्थि २८०, २८६, ३०५, ३०६, ३०७, ग्राम-पाठशाला १०, घंटा ३१७, घृणामयी ३२०, ३२२, घृणा ३३०, घूरे के लत्ता बीनैं, कनातन के डौल बाँधैं १५, चतुर सखी १६, २०, चना चबेना ३०७, चन्दहसीनांकेचतूत ३२०, चन्द्रकान्ता २०, ३१२, ३२०, चन्द्रकान्ता-सतति २०, ३१६, चन्द्रगुप्त १७५, ३१०, ३१३, चन्द्रगुप्त मौर्य ३२८, ३३०, चन्द्रदेव से मेरी बातें १८८, ३३५, चन्द्रप्रभा २७७, चन्द्रशेखर ७६, चन्द्रालोक ११८, चन्द्रावली १६, चन्द्रहास ३०८, चन्द्रहास का उपाख्यान २१२, २१७, २३३, २३५, २३६, २३७, २४०, ३२३, चन्द्रिका ११७, चरितचर्या ८५, ८६, ८७, १५१, चहार-दर्वेश १८, चरित-चित्रण ८५, ८६, ८८, १५१, चाँद ४४, १८५, १८६, २७४, २७७, २७८, चित्रकार ३२४, ३२७, चित्रमय जगत २७४, २७७, चित्रमीमांसा-खंडन १४३, चित्रशाला प्रेस १७६, चीन में तेरह मास २, चुंगी की उम्मेदवारी या मेम्बरी की धूम ३१४, चुभते चौपदे २८०, २६३, चेतावनी २८१, २८३, ३०१, चैतन्य-चन्द्रिका २७५, चौरचालीसा ३०७, चौखे चौपदे २६३, छत्तीसगढ़-मित्र २५, १७३, १७४, १८२, १८५, २७६, छद्मवियोगिनी नाटिका ३०६, छंद-संग्रह १२, छन्दः सारावली ३३८, छात्रोपकारिणी सभा २७१, छोटी-छोटी बातों पर तुक्काचीनी ६६, छोटी बहू ३२१, ज़ख्मी हिन्दू ३०६, जगत सचाई सार ११, १३, जगद्धरभट्ट की स्तुतिकुसुमाजलि १५५, १५६, १५८, जनकनन्दिनी ३०६, ३१२, जनकबाड़ा दर्शन ३०८, जनमेजय का नागयज्ञ ३१०, ३१३, जन्मभूमि १११, ११३, जन्मपत्री मिलाने की अशास्त्रता ६, जन्मभूमि से स्नेह और उसके सुधारने की आवश्यकता ६, जमा १६, जम्बुकी-न्याय ६८, १०५, ११४, १६७, १८१, जयदेव की जीवनी २८, जयद्रथ-वध २८०, २८७, २८६, २६२, २६३, ३०६, ३०७, जयसिंह काव्य ३५२, जयाजी प्रताप २७४, जर्मनी का कवि सम्राट गोथे ३६१, जल-चिकित्सा ८६, ८७, २५५, जॉगीड़ा-समाचार २७४, जापान की स्त्रियाँ १४८, जायसी ग्रन्थावली २६६, ३३६, ३५३, जासूस, २७४, २७७, २७८, जिला कानपुर का भूगोल ८४. ८६, ८७, जीवन बीमा २१२, २१३, २१७. २२६, २२७, २२६, २३७. २५०, जीर्ण जनपद १३, जुही की कली २६७, २८६, २६२, जैनगजट २७४ २७६ जैन-तत्व प्रकाश २७५ जैन महिला आदर्श २७७ जैन मित्र २७८ २७५ जैनशासन २७८ जैन सिद्धान्त २७५ जैन हितैषी २७८ ज्ञान १४६ १५, ज्ञान

शक्ति २७७ ज्योति २७७ ज्यातिष वेदाग १६१ ज्योतिषी की आमदनी २३ झाँसी की रानी २८१. झरना ३०३, ३०५, ३०६, टाल्स्टाय २६, टिर्बुदल २१२, २१७, २२५, २३५, २३७, २५०, २६३ टेसू की टाग ६२, १०५, १०६, ११४, १८१, टोडा जाति १८८, २२७. २२८, ठग-वृत्तान्त-माला १६, ठलुवा क्लब ३१८, ठहरौनी १११, ठाकुर गोपाल शरण सिंह की कविता १४२, ठेठ हिन्दी का ठाठ ३३३, तर्दाय समाज २६, तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण १०, १७, तपस्वी १८ तन्त्रामंवरण १६. १७, तरंगिणी २८२ तरुण राजस्थान २७५ तरुणी २८६, तरुणोपदेश ७३. ८३, ८८, ताई ३२१, ३२३, ३२६, तारा ३१७ ३२०, तारा बाई ३१२, तिजारत २७६, तिरहुत समाचार २७५, तिलोत्तमा ३०८. तीन देवता ३२३, तीन पतोहू ३१७, तुम और मैं ३०५, तुम वसन्त सदैव बने रहो २८७ तुम हमारे कौन हो २८१, ३३५. तुम्हें क्या २ १५ तुलसीदास की अद्भुद उपमाएँ २६०, तुलसी-स्मारक सभा २६, तृप्यन्ताम् ४, ११, २६, तेली समाचार २७४, त्राहि नाथ त्राहि १११, त्रिमूर्ति ३६१, त्रिवेणी १६, २६०, २८२, ३६२ ३६३, ३४२, थियोसोफिकल सोसाइटी ६, ७, दक्षिणी ध्रुव की यात्रा १४८, दगाबाजी का उद्योग ११, दण्डदेव का आत्मनिवेदन १५१. २६२, दमदार दावे २८६, दमयन्ती का चन्द्रोपालम्भ १५०, १५३, २६२, दयानन्द-पाण्डित्य-खण्डन ७ दयानन्द-लीला ३०७, दर्शन २८२, दलित कुसुम १६, दशकुमारचरित २८४ दशावतार कथा ३१७, दाऊदमाला १२. दान प्रतिदान १८८, दामिनी दूतिका ११ दिगम्बर जैन २७४., २७६, दिनेश-दशक २८८, दिनों का फेर ३२४, दिल दीवानी ३०७, दोष-निर्णय १६ दुःखिनी बाला १०, दुखी भारत ३०६, दुलाईवाली ३२० दुर्गावती ३१०. ३१३, दुर्गेश-नन्दिनी १६, दुर्गाशप्तशती ३५, दृश्यदर्शन ८५,८७,८८, १५०, दृष्टान्त प्रदीपिनी २०, देव और बिहारी १७५, ३४६, ३५६, ३५७, देवदासी ३२४, देवी द्रोपदी ३१६ देवनागर-वत्सर २७८, देवनागरी प्रचारिणी सभा २७०, देवयानी ३०६, देवान्तरचरित्र २६, देवीस्तुति शतक ७८, ८५ ८७, ६६, १०७. १०८, ११०, देश २७५, देशहितैषियों के ध्यान देने योग्य कुछ बातें २१४, २१८, २२१, २२८. २३६. २४३. २६३, देशदूत १८०, देशबन्धु २७६ देशहितैषी २४ देशी कपड़ा ४, देशोपालम्भ ११३, देहाती २७७, देहाती जीवन २७५, दो तरंगे २८०, द्रौपदी ३१७, द्रौपदी-वचन-वाणावली १०५, द्वापर ६२, द्विजराज २७६, द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ ५२, ५५, ५६, ६७, ६६, ७१, ७२, १६४ १६७. २६६. ३६४, द्विवेदी-काव्यमाला ७६, ६३ ६५. ६६, ६७, ६८. ६६, १००. १०१, १०२, १०३, १०५, १०६, १०८, १०६, ११०, १११, ११२, ११३, ११५, ११६, १६२, १६७, द्विवेदी-मीमांसा ४२, ४६. ४६, ५१, ५६, ५८, ८७, द्विवेदी- स्मृति-अंक ५२, धनञ्जयविजय १६ धर्मकुसुमाकर २७१ धर्मदिवाकर २५ धर्मप्रचारक २१ २७ धर्मरक्षक

२७६ धमवीर ७७ धमसार १२ धमाधम युद्ध २०६ २१२ धमालाप १७ धारा २६० धाराधरधावन १७४, धूर्त्त रसिक लाल १६, धोंगे का रट्टी ३२०, ध्वन्यालोक ६४, ११७ ११८, १२५, २८८, ध्वन्यालोकलोचन ११७, १३२, नखशिख ३३६, नन्द-विदा ३०६, नन्दोत्सव १७, नमस्कार २६६, नये बापू १६, नरेन्द्र मोहिनी २०, नव जीवन २७४, २७७, २८२, नवनीत २७४, २७७, नवरस ११८, ३३८, ३४२, नवोढा १७७, नवोढ़ादर्श ३३६, नशा ६, नशा-खंडन-चालीसा १७, नहुष १६, नाईब्राह्मण २१६ नाक में दम ३१४, नागरी ७८ नागरी अंकों की उत्पत्ति ३३०, नागरी तेरी यह दशा ६५, ११४, नागरी का विनयपत्र, ११४, नागरी दास का जीवनचरित २१, ३४५, नागरी-नाटक मण्डली ३११, नागरीनीरद २७, नागरी प्रचारक २७५, २७८, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका २१, २२, २८, १६०, १८६, २६६, २७६, २७७, २७८, ३१४, ३२६, ३४१, ३४४, ३४५, ३४८, ३५२, ३५४, ३३७, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी २१, २८, ३०, ४०, ४३, ४४, ४७, ५१, ५२, ५३, ५५, ६०, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ७१, ७२, ७३, ७८ ८४, ८८, ६७, १०४, १६०, १६३, १६४, १६५, १६७, १६६, १७६, १८०, १८२, १६६, २०४, २०५, २०८, २१२, २५०, २५१ २६८, २६६, २७०, २७१, २७७, २८६, २६०, २६१, २६२ ३३०, ३३१, ३३२, ३५१ ३६४ नाट्यशास्त्र ३३, ८३, ८६ ८७ ११६, १४७, १५३, १४६, २६१, ३०६, ३११, ३२८, ३४१, नॉर्थ इंडिया ऑक्झिलियरी बाइबिल सोसाइटी ६, नार्थ इंडिया क्रिश्चियन टेक्स्ट-एन्ड-बुक सोसाइटी ६, नाटक ३३७, नाटक और उपन्यास ३४०, नायिका-भेद १२०, १२२ १३१, १४७, ३३६, नायिका-भेद-शंकावली ३३६, नासिकेतोपाख्यान १८, निगमागमचन्द्रिका २७६, २७७, निर्णय-अद्वैत-सिद्धम् ११, निरंकुशता-निदर्शन ३४७, ३४६, निस्सार हिन्दू १६, २०, निद्रा-रहस्य ३२०, निकृष्ट नौकरी १७, निबन्धिनी ४४, ६२, निरीश्वर वाद १४६, निशीथ-चिन्ता २८१, निष्ठुर परिवर्तन २८६, ३०३, नीरवतार २८६ नीलगिरि पर्वत के निवासी टोडा लोग २१६, २१७, २६३, नील देवी १६, नूतन ब्रह्मचारी १६, नेत्रोन्मीलन ३०८, नेपाल १५७, नैषध-चरित ८३, ८६, १२४ १३३ १३६, १४०, १५३ १५५, नैषधचरित-चर्चा ३४, ८३, ८६, १३८, नैषधचरितचर्चा और सुदर्शन ४४, १२५, १५४, न्यू अल्फ्रेड ३११, न्याय और दया २१३, २१४, २१७, २१८, २३३, २३७, २३६, २३५, २४३, २४४, पढ़े-लिखे बेकार की नकल १८, पतिप्राणा अबला १६, पतिव्रता ३१२ पथिक २८०, २८६ ३०३, ३०५, पद्य-प्रबोध ३३८, पद्य में हिन्दी की उन्नति २६, पद्मावती १७, परदा २८२, परदे का प्रारम्भ ३२४ परमात्मा की परिभाषा २४६, परमार-बन्धु २७६, परिचय ३३६, परिमल २६७ परिवर्तन ११५ २८१, पहेली गूढ़ ३१७ परोपकारी ६८ ७७, ७८ पर्यालोचक १६०

पल्लव २६७, ३०६, पत्रावली २८०, पवनदूत २१६, २२०, पाटलिपुत्र २७४, पाताल देश के हबशी २३४, पाखंड-विडंबन १६, पाप का परिणाम ३०६, पायनियर ६६, पालीवाल ब्राह्मणोदय २७४, पार्वती-परिणय नाटक ३६१, पीयूष-प्रवाह २५, २७७, पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण १४६, पुरातत्व प्रसंग ८५, ८६, ८८, पुरानी समालोचना का एक नमूना १४२, पुरावृत्त ८५, ८६, ८७, पुलिस-वृत्तान्त-माला १६, पूना १७६, पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा १६, पूर्व भारत ३०८, पृथ्वीराजरासो २६६, पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य ३५२, पेरिस १४८, पंचपरमेश्वर ३२५, ३२७, पंचपुकार २६७, ३४८, पंचपुकार का उपसंहार २६३, पंचवटी २८०, २८६, २६५, ३०६, ३०३, ३०८, पंडित और पंडितानी २२७, २२८ पाचाल पंडिता २७७, पिंगल वा छन्द-पयोनिधिभाषा ३३८, पिंगलसार ३३८, प्रकृति-सौन्दर्य २८१, प्रचंड गोरक्षा १७, प्रजा-सेवक २७६ प्रणवीर २७५, प्रणयिनी-परिणय २०, प्रताप ४, ७६, २७४, २७७, प्रतिध्वनि ३२७ प्रतिभा १४६, १५३, १५८, २६१, २६२, २७७, २७८, प्रथमालंकार-निरूपण ३३८, प्रद्युम्न-विजय-व्यायोग १८, ३०८, प्रभा १८५, २७४, २७६, २७७, २७८ २८१, २८३, २८५, ३०१, ३०४, ३०५, ३१४, ३२५, ३२४, ३२६, ३४४, प्रभात-प्रभा २८७, प्रभात-मिलन ३०६, प्रभात वर्णनम् १०५, १०७, १०६, ११५, प्रमीला १६, २०, प्रयागरामगमन १७, प्रयाग-समाचार २५, ६६, प्रवीण पथिक २०, प्रलय २८१, प्रवासी १७६, १८३, १८४, १८५, २५६, प्रसाद ३०५, प्रसादजी के दो नाटक १२६, प्रह्लाद चरित्र १७, प्राचीन कविता १७७, प्राचीन कविता का अर्वाचीन अवतार १७७, प्राचीन कवियों के काव्यों में दोषोद् भावना १२७, १२६, १५०, प्राचीन चिन्ह ८५, ८६, ८७, १५०, प्राचीन तक्षण-कला के नमूने १७५, प्राचीन पंडित और कवि ८३, ८६, ८८, १२५, १४७, १५१, प्राचीन भारत की एक झलक १५५, प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय २२६, २३७, प्राचीन भारत में जहाज १४८, प्राचीन भारत में रसायन विद्या १४८, प्राचीन भारत में राज्याभिषेक २३०, २३३, २३४, २३६, प्रायश्चित्त ३१४, प्रार्थना ११४, प्रियप्रवास १०७, २६६, २८०, २८५, २८६ २८८, २८६, २६२, २६३, २६५, ३०२, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, प्रियम्वदा २७७, प्रेम २७५, ३०५, प्रेमजोगिनी १६, प्रेमदोहावली १२, प्रेमपथिक २६७, २८०, २८८, ३०५, ३०६, प्रेम-पुष्पावली ७, प्रेमलहरी २८२, प्रेमविलास २७७, प्रेमविलासिनी २४, प्रेमसागर १८, ३१, प्रेमाश्रम ३१७, ३१८, ३१६, ३२१, ३२२, प्लेग की चुड़ैल ३२३, प्लेग की भूतनी ११, प्लेगराजस्तव १८१, फिर २८२, फिर निराशा क्यों २८२, फूट और बैर ६, फौजी अखबार २७४, बड़ाभाई १६, बड़ी बहू ३१६, बनारस १५०, बनारस अखबार २२, बङ्गवासी चन्द्रिका २७६, बलिदान ३२७, बलीवर्द ६८, ११४, १२८ बहुजातित्व और बहुमक्षित्व ६ बादरन ७८ बागोबहार १८ बाणभट्ट की कादम्बरी

मानसपीयूष १२४, मारवाड़ी २७५, मारमार कर हकीम २१४, मारवाड़ी ब्राह्मण २७५, मारिशस इंडियन टाइम्स २७७, मार्जार मूषक २, १५, मालती १८, मालती-माधव ६२, ३१२, मालवमयूर २७६, मित्रसमाज २६, मित्र-विलास २४, २५, मिथिला मिहिर २७४, मिलन ३०५, मिलन मुहूर्त ३२७, मिश्रबन्धु-विनोद ३५४, मिश्र भ्राताओं के नवरत्न २६, मीराबाई और नन्ददिदा १७, मुक्तिमार्ग ३२५, ३२७, मुद्गरानन्द चरितावली ३२६, मुद्राराक्षस १६, मूर्तिपूजा ७, मृच्छकटिक और उसके रचनाकाल का हिन्दू-समाज ३५२, मृत्युंजय २८७, मेक्समूलर १२६, मेघदूत ८१, ८६, ८७, १३६, मेघदूत भाषा ८३, मेघदूत मे कालिदास का आत्मचरित ३५५, मेघदूत-रहस्य १३२, १५७, १६७, मेटून प्रेस ४७, मेरी कहानी ७२, मेरी रसीली पुस्तकें ७३, ७४, मेरे प्यारे हिन्दुस्तान १०७, मैकडानेल पुष्पाजलि २६, मोरध्वज ३०६, मोहिनी २७६, मोहनचन्द्रिका २३, मौर्य विजय २८०, ३०६, म्यूनिसिपैलिटी ध्यानम् ११ यमपुर की यात्रा १५, यमलोक की यात्रा २, १८, यमुनास्तोत्र ७६, याद २८६, यादवेन्द्र २७८, युगवाणी २६७, युगान्त २६७, युगान्तर २७६, युगुलागुलीय १६, यूरोपियन धर्मशीलास्त्रियों के चरित्र २८, युरोपीय के प्रति भारतीय के प्रश्न ६, १६, योगप्रचारक २७६, योगिनी ३२७, योधाबाई १८८, रंगीला २७१, रघुवंश २६, ८०, ८१, ८२, ८३, ८७, ६२, १३२, १३५, १३६, १३६, १४६, २०६, रगभूमि ३१८, ३१६, ३२१, ३२२, रंगीन छायाचित्र १४८, रजियाबेगम ३१७, रम्भा ११४, रसकलश ६२, ११६, रसगंगाधर ६४, रसज्ञरंजन ६३, ८४ ८६, ८८, ६१, ६३, ११६, १२१, १२२, १२६, १४१, १४२, १४५, १५१, १५३, १६८, २८०, २८५, २८७, २८८, २६०, २६१, ३३७, रसिकपंच २५, रसिक बाटिका १८१, १८५, १८७, २७७, ३३८, रसिक रहस्य १८५, १८७, २७७, रसिया बालम ३२४, रसों का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध ३४२, राखी बन्द भाई २१४, ११८, २२१, २२८, २३०, राजतरंगिणी २८, राज-धर्म २२०, २२१, २३४, राजनीति-विज्ञान २१७, २१८ २२५, २२८, २३०, २३२ २३८, २४३, २४४, ३३१, राजपूत २७४, राजपूतनी २१३, २२१, २२५, २२६, २३३, २३६, २४१, राजसिंह १६, राजाभोज का सपना १०, १५, १८, राजा युधिष्ठिर का समय १५४, राणाप्रताप का महत्व ३०६, राधाकान्त ३२०, राधारानी १६, रानी केतकी की कहानी १८, ३०, रामकहानी २१२, रामकहानी की समालोचना १३१, १६१, १६८, २१२, रामकृष्ण मिशन ६, ७, रामचरितमानस ६२, ११६, २४८, २६५, रामचन्द्रिका ३४३, रामायण २७६, रामलीला १७, रायगिर अथवा रायटेक २१२, राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर ६३, रुक्मिणी हरण १७ १८, २०८, रूपक-रहस्य ३४० ३४१

लक्ष्मी १७१ १७२ १८५, १८७, १८८ २७४ २७७ ५७८ ३५० लक्ष्मी सरस्वती सिम्बल १७, लज्जा और ग्लानि २३० लवकुश १६ लवणलता १६ ० लिखने के सा न ३६३, लीडर ७६, लैटिनी हिन्दी २१३, २१७, लोअर प्राइमरी रीडर ८४, ८६, ८७, लोकमान्य २७६, लोकोक्ति-शतक ११, लोभ या प्रेम २३०, वक्तव्य १५८, वक्तृत्वकला ८८, वंगदर्शन २६८, वंगविजेता १६, २१, वंगवासी २७२, वनवीर नाटक ३०६, वनिता-विलास ८४, ८६ ८८, १५१, १५२, वन्देमातरम् ५८, १०६, वरमाला ३०६, ३१३, वररुचि का समय २१४, २३३, ३५१, वर्तमानकालिक हिन्दी साहित्य के गुण ३३०, वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति ३३०, वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट ३, २४, वर्षा-वर्णन २८७, वसंत ७, ११५, वसंतमालती २०, वसंतसेना २६४, वह छवि २८०, वाग्विलास ८५, ८६, ८८, वारांगना-रहस्य महानाटक १७, ३२२, वासवदत्ता १२२, १३६, २८४, २८५, विक्रमाकदेवचरित-चर्चा ८३, ८६, ८७, ८६, १२४, १३८, १३६, १४०, १६४, विक्रमादित्य और उनके संवत् की एक नई कल्पना १४८, विचार करने योग्य बातें १०६, विचार-विमर्श ८५, ८६, ८८, ११६, १२१, १२८, १३०, १३३, १४१, १४२, १४८, १५६, २०२, २५५, २५६, २५७, विजयिनी-विजय-वैजयन्ती ११, विज-विनोद ८४, ८६, ८८, विज्ञान १६४, २७७, २७८, विज्ञान-प्रचारिणी सभा २६, विज्ञान-वार्ता ८५, ८६, ८८, विज्ञापनों की धूम २२०, २२७, विदेशी विद्वान ८४, ८६, विद्या के गुण और मूर्खता के दोष ११, विद्यार्थी २३, २७६, २७७, विद्या-प्रचारिणी सभा २७१, विद्या-विनोद १७३, २७७, ३१२, विद्यासुन्दर १६, विधवा २६७, विधवा-विपत्ति १६, विधि-विडंबन ६५, १०६, विनय-विनोद ७८, ८१, ८३, ६४, ६६, १०२, १०६, १०७, १०८, विपद कसौटी ३०६, विमाता का हृदय ३३४, वियोगिनी १७७, विराटा की पद्मिनी ३१८, विलाप २८२, विलायती समाचार पत्रों का इतिहास ३५४, विवाह-विडंबन १७, विवाह विषयक विचारव्यभिचार १५६, विवाह-संबन्धी कविताएं ११४, विशाख ३१०, ३१३, विशाल भारत ४५, १६८, विश्वमित्र २७३, ३०६, विश्वविद्या-प्रचारक २७७, विश्व-साहित्य ३३०, ३३६, ३४२, ३४६, ३६१, विषस्य-विषमौषधम् १६, विहार-पत्रिका २७५, विहार-बंधु २३, विहार वाटिका ८५, ८७, ६४, ६६, १००, १०२, १०५, १०७, १०८, वीणा १६८, २८२, वीर-पंचरत्न २८०, २८७, ३०६, वीर भारत २७४, वीरेन्द्र वीर २०, वृहश्रेष्ठ मूल कथा १२, वृत्तचन्द्रिका ३३८, वृद्ध १५, वेंकटेश्वर प्रेस २७१, वेंकटेश्वर-समाचार २५, ६६, ६८, १३५, २७३, २७४, वेंकटेश्वर प्रेस की पुस्तकें १२५, वेणीसंहार ८०, ८२, ८८, १६३, १६८, १६६, २०३, २०४, २०५, २५१, वैचित्र्य चित्रण ८४ ८६, — वैज्ञानिक कोष ८३, ८७ २६६, वैदिक देवता १५५,

१०६, १६७, १८१, सरलपिंगल २३२, सराय २८२, सहृदयानन्द ८६, साकेत ४५, ६२, १४२, २८०, २६५, ३०७, साँची के पुराने स्तूप १५०, साधना १२८, २८२, २८३, २८४, सारंग २६६, सारसुधानिधि २, १५, २४, सावधान २७६, साहित्य २७७, ३३१, ३३८, ३४१. ३६३, साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है १५, साहित्यदर्पण ६४, ३३७, ३३८, ३४१, साहित्यपत्रिका २७५, २७७, साहित्यवृत्त १३१, साहित्य-संदर्भ ८४, ८६, ८८, १४८, १५०, १५५, १५६, साहित्य-संदेश ३४, ६२, ६४, ८८, १६३, १६४, १७३, ३६५, साहित्यसम्मेलन-पत्रिका २७२, ३१२, साहित्य-सीकर ८८, साहित्य-सुधानिधि २५, साहित्यालाप ८६, ८८, साहित्यिक संस्मरण ३३४, सिंहासन-बत्तीसी १८, सिन्ध देश की राजकुमारियां १७, सिन्धु समाचार २७५, सीता-स्वयंवर नाटक ३०६, सुकवि-संकीर्तन ८४, ८८, १२५, १४७, सुखमार्ग २७६, सुगृहिणी २५, सुदर्शनप्रवर्तक २७४, सुदर्शन २५, ६६, ६७, २७८, ३२४, सुदामा १७, १७०, सुन्दर-सरोजिनी २०, सुधा ३२४, सुधानिधि २७४, सुधावर्षण २७३, सुबोध पत्रिका १२, सुभद्रा नाटक ३०६ सुमन ७६, ६१, सुहाग की साड़ी ३२६, सूरसागर २६५, सूर्य २७५, सूर्यग्रहण १०५, ११५, सृष्टिविचार १४६, सेंट्रल हिन्दू स्कूल ५३, सेवासदन ३१७,३१६,३२१, ३२२, ३३३, सैनिक २७४, सोहागरात ७३, ७४, ७८, ८६, ६४, सौ अजान और एक सुजान १६,२०६, ३१८, सोत ३२३, सौन्दरानन्द १२५, सौन्दर्योपासक २८२, ३२०, सोमनाथ के मंदिर की प्राचीनता १४८, स्त्रीदर्पण २७४,२७७, स्त्रीधर्म शिक्षा २७७, स्त्री-धर्मशिक्षक २७४, स्त्रियों के विषय में अत्यल्प निवेदन १६७, १६८, स्नेहमाला २५, ८७, ६४, १००, १०२, १०५, १०७, १०८, स्फुट कविता ४, ११०, स्वतंत्र २७३, स्वतंत्रता का मूल्य २८३, स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी १६, स्वदेश २७४, २७५, स्वदेश-प्रेम ३१७, स्वदेश बान्धव २७५, स्वदेशी आंदोलन ४, स्वप्न ११४, स्वराज्य २७४, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन १०, १५, १८, स्वर्गीय कुसुम २०, स्वर्णलता १६, स्वाधीनता ३३, ६०, ६३, ८०, ८६, ८७, १४६, २४७, २५२, २६१ स्वार्थ २७७, २७८, स्नेह २८६, हंस ५२, ८५, १६४. १७१, २८४, हंस का दुस्तर दूत-कार्य १५१, हंस का नीर-क्षीर-विवेक १५७,२६१, हंस-सन्देश १५१, हन्टर कमीशन ३१,हम पंचन के ट्वाला मा ६०,हमारा उत्तम भारत देश ४,हमारा वैद्यकशास्त्र २२६, २३२, २३७, २४२, २४३, २६३, हमारा सम्वत् २२६, हमारी दिनचर्या १५, हमारी-मसहरी १५, हरमिट १४, हरिदास कम्पनी २७१, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका १५, १८, २३, हरिश्चन्द्र मेगज़ीन ६, १६, २३, २७, हर्षचरित १२७, २८४, २८५, हलवाई वैश्य संरक्षक २७६, हितकारिणी २७४, २७७. हिन्दी २७७, ३५४, हिन्दी कालिदास—३३, १२२ १३५, १३७, हिन्दी कालिदास की —८३, ८६ ८७ ६४, ६६, १३० १३१, १४० १४४

१६३ १६५ १६८, १६६, २०० २०३ २०८ २०६, २१० २५३ २५६ हिन्दी-व्याकरण २१६, २२४, हिन्दी-काव्यालंकार ३३८, हिन्दी-केसरी २७३, २७४, २७५, हिन्दी समाचार-पत्र १४२, हिन्दी-गल्प-माला २७६, २७७, हिन्दी जिज्ञास्य सभा नेशनल सोसाइटी २७२, हिन्दी नवरत्न १२१, १२३, १२६, १३०, १३१, १३३, १४०, १४७, १४६, २११, ३४६, हिन्दू नाटक १४७, हिन्दी नाइट स्कूल २७२, हिन्दी पद्यरचना ३३८, हिन्दी पुस्तकालय २७२, हिन्दी-प्रचारक २७६, २७७, हिन्दी-प्रचारिणी सभा २७१, २७२, हिन्दी-प्रदीप १५, १८, २१, २४, २५, २७, १५८, १७१, १७३, १७७, १८६, २७८, हिन्दी फुटबाल-क्लब २७२, हिन्दी बालसभा २७२, हिन्दी भाषा और उसका साहित्य ६६, ८३, ८६, ८७, १४६, १५४, १५८, १६१, हिन्दी महाभारत ८०, ८६, ८७, हिन्दी बंगवासी ७, २५, ६६, २७४, हिन्दी विद्यालय ७२, हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग २०६, हिन्दी शिक्षावली तृतीय-रीडर ६४ हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना ५६, ५७, ८३, ८६, १३१, १३७, १४०, १४१, १५८, १६२, १६३, १६४, १६५, १६८, २०१, २०५, २०८, २४७, २५१, २५३, २५६, २५७, हिन्दी सभा २७१, हिन्दी साहित्य १२६, १७७, १७६, ३३६ हिन्दी-साहित्य का इतिहास १३, ११८, १३७, ३४५, हिन्दी साहित्य परिषद् २७१, हिन्दी साहित्य-समिति २७१, हिन्दी साहित्य सम्मेलन ५०, ५३, ५६, ६७, ७६, ७८, १२१, २६६, ३३०, ३३६, ३४०, ३४१, ३४२, ३५०, हिन्दू ३०६, ३२४, हिन्दोस्थान २५, १३५, २०३, हेकविते ११४, १३१, २८७, हेमन्त १७०, २६०, होली २, १५, होली की नकल १३।

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
त्रपठ	पत्रपठन	१८१	१५
पढेगा',	'पढ़ैगा'	१९२	१८
विज्ञानो'	'विज्ञानी'	२११	१६
त्यन्त	प्रत्यय	२१२	१२
गुरु	गुरु	२५१	१
··· त्यत्र	···त्पन्न	२५१	१४
नक्तयेव	भक्त्यैव	२५४	२
प्रख्यार्पितगुणैः	प्रख्यार्पितैर्गुणैः	२५५	७
भिखारिण	भिखारिणी	२६२	१६
कबरिहा	बकरिहा	२६७	२७
वाङ्मय	वाङ्मय	२६८	६
के	मे	२७३	८
तेंलीस	तेली	२७४	२६
मूर्त	मूर्त्त	२७६	१७
हर्षचरित्र	हर्षचरित	२८४	१२
कर	शर	२८६	७
जा	जग	२९६	२७
ज्ञान	शान	२९६	२८
अन्धेरा	अन्धेर	२९६	३०
घर घर	घर घर	२९८	६
के	मे	३०१	२१
क्रान्तितारी	क्रान्तिकारी	३०२	६
ग्रहस्थ···बने थे	गृहस्थ··· बने हुए थे	३०४	१
मगरे	मगटे	३०७	१६
दर्शना	दर्शन	३०८	२५
विभिन्न	विपन्न	३१३	३
सहित्यिक	साहित्यिक	३१३	३
कथोद्धात	कथोद्घात	३१३	१३
'कृष्णार्जुन'	'कृष्णार्जुनयुद्ध'	३१३	२७
चुँगी	चुंगी	३१४	१५
गीत	गीति	३१५	६
प्रकार	प्रकारक	३१६	१४
रायकृष्ण	रामकृष्ण	३१७	८
पेरणा	प्रेरणा	३१७	१०
जात	जगत	३१६	१३
नाटकी	नाटकीय	३२०	११
दैनन्दनी	दैनन्दिनी	३२०	१४
योग	प्रयोग	३२०	१
शर्मा	वर्मा	३२०	११
उर्वमी	उर्वशी	३२१	८
प्रसस्त	प्रशस्त	३२२	१५
आर्श्य	आश्चर्य	३२३	७
वलात्मक	कलात्मक	३२४	२
चैतन्य	चेतन	३२५	१
अरोप	आरोप	३२५	१
सामंजस	समंजस	३२५	१८
अर्न्तगत	अन्तर्जगत	३२५	२२
आकर्षण	आकर्षक	३२६	६
'आत्मराम'	'आत्माराम'	३२६	१६
काउसका	का	३२६	२१
काव्यात्मकी	काव्यात्मक	३२७	६
मरीच्य	मरीच्वी	३२७	१२
उप	उपधा	३३१	५
निबन्ध	निर्बन्ध	३३१	१३
अक्षेप	आक्षेप	३३४	२२
शैली	इस शैली	३३६	१३
कोष्टक	कोष्ठक	३३६	१४
१६ ई०	१६०१ ई०	३३७	१५
साहित्यकार	साधिकार	३३७	१८
चिन्तनाजनक	चिन्तनात्मक	३३६	२१
''इन	इन	३४०	८
उसका	उसका नायक	३४०	१६
भीड़	भीड	३४०	२०
दसरूपक	दशरूपक	३४१	१२
काव्यमय	काव्य मे	३४२	४
भी	भाव	३४२	२७
सो	सा	३४३	२६
पद्म कोषा	पद्मकोषा	४	२७